भगवान् महावीरके २५००वें निर्वाण महोत्सवके अवसरपर प्रकाशित
ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला : अपभ्रंश ग्रन्थांक १३

महाकवि पुष्पदन्त विरचित

वीरजिणिंदचरिउ

सम्पादन-अनुवाद
डॉ. हीरालाल जैन, एम. ए., एल-एल. बी., डी. लिट्.,
भूतपूर्व संस्कृत प्राध्यापक मध्यप्रान्त शिक्षा विभाग, संस्थापक-निदेशक : प्राकृत, जैनधर्म और अहिंसा शोध-संस्थान, वैशाली (बिहार), प्राध्यापक व विभागाध्यक्ष :
संस्कृत-पालि-प्राकृत विभाग, इंस्टीटयूट ऑफ लैंग्वेजेज एंड रिसर्च,
जबलपुर विश्वविद्यालय (म प्र.)

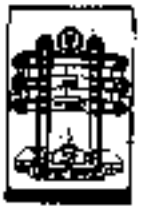

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

वीर निर्वाण संवत् २५००, विक्रम संवत् २०३१, सन् १९७४ ईस्वी
प्रथम संस्करण—मूल्य : दस रुपये

प्रस्तावना

१. महावीरके तीर्थंकरत्वकी पृष्ठभूमि

भगवान् महावीर जैनधर्मके तीर्थंकर थे। किन्तु जैन ऐतिहासिक परम्परानुसार न तो वे जैनधर्मके आदि प्रवर्तक थे और न सदैवके लिए अन्तिम तीर्थंकर।

अनादि कालसे धर्मके तीर्थंकर होते रहे हैं और आगे भी होते रहेंगे। उनके द्वारा उपदिष्ट धर्ममें अपने-अपने युगानुसार विशेषताएँ भी रहती हैं, और उनके मौलिक स्वरूपमें तालमेल भी बना रहता है। वर्तमान युगके आदि तीर्थंकर ऋषभनाथ माने गये हैं जिनका उल्लेख न केवल समस्त जैन पुराणोंमें अनिवार्य रूपसे आता है, किन्तु भारतके प्राचीनतम धर्म-ग्रन्थों, जैसे ऋग्वेद आदिमें भी नाना प्रसंगोंमें आया है।[1] उनसे लेकर महावीर तक हुए चौबीस तीर्थंकरोंके चरित्र जैन पुराणोंमें विधिवत् वर्णित पाये जाते हैं[2]। धार्मिक, सैद्धान्तिक व दार्शनिक आदि दृष्टियोंसे मानो उनमें एकरूपता तथा एक ही आत्माकी व्याप्ति प्रकट करनेके लिए महावीरके पूर्व-जन्मकी परम्परा ऋषभदेवसे जोड़ी गयी है। ऋषभदेवके पुत्र हुए प्रथम चक्रवर्ती भरत जिनके नामसे इस देशका नाम भी भारतवर्ष पड़ा। यह बात समस्त वैदिक पुराणोंमें भी प्रायः एकमतसे स्वीकार की गयी है[3]। इन्हीं भरतके एक पुत्र थे मरीचि। यह मरीचि भी पूर्व-जन्मसे आये

---

१. ऋग्वेद १०, १०२, ६; १०, १३६; १०, १६६; २, ३३। भाग. पुराण ५, ६। विष्णु-पुराण ३, १८ आदि। इनमें वृषभ, केशी व वातरशन दिगम्बर मुनियों के उल्लेख ध्यान देने योग्य हैं।

२. समवायांग सूत्र २४६ आदि। कल्पसूत्र। हेमचन्द्र-कृत त्रिषष्टि-शलाका-पुरुष-चरित। तिलोय-पण्णत्ति—महाधिकार ४। जिनसेन-कृत आदिपुराण। गुणभद्र-कृत उत्तरपुराण। पुष्पदन्त-कृत महापुराण (अपभ्रंश)।

३. भागवत-पुराण ५,४,९; ११, २। विष्णु-पुराण २,१,३१। वायु-पुराण ३३, ५२। अग्नि-पुराण १०७,११-१२। ब्रह्माण्ड-पु. १४, ५, ६२। लिङ्ग-पुराण १, ४७, २३। स्कन्द-पुराण कौमार-खण्ड ३७, ५७। मार्कण्डेय-पुराण ५०, ४१। इनमें स्पष्टतः उल्लेख है कि ऋषभ-पुत्र भरतके नामसे ही इस देशका नाम भारतवर्ष पड़ा।

हुए एक शबर का जीव था जिसने अपने सामान्य जीवनकी प्रवृत्ति प्राणि-हिंसाको त्यागकर अहिंसा-व्रत ग्रहण किया था । [illegible] भगवान् ऋषभदेवके चरण-कमलोंमें दीक्षा ली थी । किन्तु उससे उन आदि तीर्थंकर द्वारा निर्दिष्ट कठोर मुनिव्रतोंका पालन न हो सका और वह मुनिपदसे भ्रष्ट हो गया । तथापि उसमें धार्मिक बीज पड़ चुका था और संस्कार भी उत्पन्न हो गये थे । अतएव देव और मनुष्य लोकमें भ्रमण करते हुए अन्ततः उसने महावीर तीर्थंकर का जन्म धारण किया । इस प्रकार यह सहज ही देखा जा सकता है कि इन अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीरकी अध्यात्म-परम्परा आदि-तीर्थंकर ऋषभदेवसे जुड़ी हुई प्रतिष्ठित पायी जाती है[1] ।

किन्तु महावीरके साथ भी तीर्थंकर-परम्परा टूटती नहीं । उनके एक शिष्य थे उस समयके भारत-नरेश श्रेणिक-बिम्बसार । उनमें भगवान् महावीर द्वारा धर्मका बीज आरोपित किया गया । यद्यपि वे अपने पूर्व दुष्कृत्योंके कारण नरक-गामी हुए, तथापि उनमें भी मरीचिके समान धार्मिक संस्कार प्रबलतासे स्थापित हो चुका है, जिसके फलस्वरूप वे अपने अगले जन्ममें एक नयी तीर्थंकर-परम्पराके आदि-प्रवर्तक होंगे । अर्थात् वे भावी चौबीस तीर्थंकरोंमें महापद्म नामक प्रथम तीर्थंकर होंगे । इस प्रकार समग्र दृष्टिसे विचार किया जाये तो जैन परम्परामें यह बात दृढ़तासे स्थापित की गयी है कि जिस प्रकार महावीर पूर्व-पौराणिक परम्परामें ऐतिहासिक रूपसे अन्तिम तीर्थंकर हैं, उसी प्रकार वे एक नयी तीर्थंकर-परम्पराके जन्मदाता भी हैं[2] ।

२. महावीर-जीवन, जन्म व कुमारकाल

महावीर तीर्थंकरका जो चरित्र जैन साहित्यमें पाया जाता है वह संक्षेपमें इस प्रकार है । महावीरका जन्म एक क्षत्रिय राज-परिवारमें हुआ । उनके पिता-का नाम सिद्धार्थ और माताका प्रियकारिणी अथवा त्रिशलादेवी था । सिद्धार्थका गोत्र काश्यप और त्रिशलाका पैत्रिक गोत्र वशिष्ठका भी उल्लेख पाया जाता है । त्रिशलादेवी उस समयके वैशालीनरेश चेटककी ज्येष्ठ पुत्री, अथवा मतान्तरसे चेटककी बहन थी । महावीरका शैशव व कुमारकाल उसी प्रकार लालन-पालन एवं शिक्षण में व्यतीत हुआ जैसा उस कालके राजभवनोंमें प्रचलित था । उनकी बालक्रीडाका एक यह आख्यान भी पाया जाता है कि उन्होंने एक भीषण सर्पका

१. महापुराण (संस्कृत) पर्व ७४ । महापुराण (अपभ्रंश) सन्धि ९५ ।
२. महापुराण (संस्कृत) ७६, ४७१-७७ ।

दमन किया था, और इसी वीरताके कारण देवने उन्हें महावीर व वीरनाथकी उपाधि प्रदान की। यह आख्यान हमें कृष्ण द्वारा कालियनागके दमनका स्मरण कराता है[1]।

३. तप

अपनी तीस वर्षकी अवस्थामें महावीरने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। उनकी प्रव्रज्याका स्वरूप यह था कि वे गृह त्यागकर कुण्डपुरके समीपवर्ती ज्ञातृषण्डवनमें चले गये और उन्होंने अपने समस्त भूषण-वस्त्र त्याग दिये। अपने हाथसे उन्होंने अपने केशोंको उखाड़ फेंका और वे तीन दिनका उपवास लेकर ध्यानस्थ हो गये। तत्पश्चात् वे बाहर देश-देशान्तरका भ्रमण करने लगे। वे निवास तो करते थे वनोपवनमें ही, किन्तु अपने व्रतों और उपवासोंके नियमानुसार दिनमें एक बार नगर या ग्राममें प्रवेश कर भिक्षा ग्रहण करते थे। वे ध्यान और आत्म-चिन्तन तथा समता-भावकी साधना या तो पद्मासन लगाकर करते थे अथवा खड्गासनसे खड़े हुए ही नासाग्र दृष्टि रखकर। लेशमात्र हिंसा नहीं करना, तृणमात्र परायी वस्तुका अपहरण नहीं करना, लेशमात्र भी असत्य वचन नहीं बोलना, मैथुनकी कामनाको मनमें भी स्थान नहीं देना तथा किसी प्रकारकी धन-सम्पत्ति रूप परिग्रह नहीं रखना—ये ही पांच उनके महाव्रत थे। इन निषेधात्मक यमों या व्रतोंके साथ-साथ वे उन शारीरिक और मानसिक पीड़ाओंको भी शान्ति और धैर्यपूर्वक सहन करनेका अभ्यास करते थे जो गृहहीन, निराश्रय, वस्त्रहीन व धनधान्य-हीन त्यागीके लिए प्रकृतितः उत्पन्न होती हैं, जैसे भूख-प्यास, शीत-उष्ण, डांस-मच्छर आदिकी बाधाएँ जो परीषह कहलाती हैं।

४. केवलज्ञान

इन तपस्याओंका अभ्यास करते हुए उन्होंने अपनी प्रव्रज्याके बारह वर्ष व्यतीत कर दिये। फिर एक दिन जब वे ऋजुकूला नदीके तीरपर जृम्भक ग्रामके समीप ध्यानमग्न थे तभी उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। इस केवलज्ञानका स्वरूप यदि हम सरलतासे समझनेका प्रयत्न करें तो यह था कि जीवन और सृष्टिके सम्बन्धमें जो समस्याएँ व प्रश्न सामान्य जिज्ञासु चिन्तक के हृदयमें उठा करते हैं

---

१. महापुराण (सं.) ७४, २८८-९५। महापुराण (अपभ्रंश) ९६, १०, १०-१५। भागवत-पुराण, दशम स्कन्ध।

उसका उन्हें सन्तोषजनक रीतिसे समाधान मिल गया। यह समाधान था वे छह द्रव्य तथा सात तत्त्व जिनके द्वारा त्रैलोक्य की समस्त वस्तुओं व घटनाओंका स्वरूप समझमें आ जाता है। वे छह द्रव्य इस प्रकार हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। और वे सात तत्त्व इस प्रकार हैं—जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। जीवनका मूलाधार वह जीव या आत्मतत्त्व है जो जड़ पदार्थोंसे भिन्न है, आत्म-संवेदन तथा पर-पदार्थ-बोध रूप लक्षणोंसे युक्त है एवं अमूर्त और शाश्वत है। तथापि वह जड़ तत्त्वोंसे संगठित शरीरमें व्याप्त होकर नाना रूप-रूपान्तरों व जन्म-जन्मान्तरोंमें गमन करता है। जितने मूर्तिमान् इन्द्रियग्राह्य पदार्थ परमाणुसे लेकर महास्कन्ध तक हमें दिखाई पड़ते हैं वे सब अजीव पुद्गल द्रव्यके रूप-रूपान्तर हैं। धर्म और अधर्म ऐसे सूक्ष्म अदृश्य अमूर्त तत्त्व हैं जो लोकाकाशमें व्याप्त हैं और जो जीव व पुद्गल पदार्थोंको गमन करने अथवा स्थिर होनेके हेतु-भूत माध्यम हैं। आकाश वह तत्त्व है जो अन्य सब द्रव्योंको स्थान व अवकाश देता है, और काल द्रव्य वस्तुओंके बने रहने, परिवर्तित होने तथा पूर्व और पश्चात्की बुद्धि उत्पन्न करनेमें सहायक होता है। यह तो सृष्टिके तत्त्वों व तथ्यों की व्याख्या हुई। किन्तु जीवको सुख-दुःखात्मक सांसारिक अवस्थाको समझने और उसकी ग्रन्थिको सुलझाकर आत्म-तत्त्वके शुद्ध-बुद्ध-प्रमुक्त स्वरूपके विकास हेतु अन्य सात तत्त्वोंको समझनेकी आवश्यकता है। जीव और अजीव तो सृष्टिके मूल तत्त्व हैं ही। इनका परस्पर सम्पर्क होना यही आस्रव है। इस सम्पर्क या आस्रवसे ऐसे बन्धका उत्पन्न होना जिससे आत्माका शुद्ध स्वरूप ढक जाये और उसके ज्ञान-दर्शनात्मक गुण कुण्ठित हो जायें, उसे बन्ध या कर्म-बन्ध कहते हैं। जिन संयमरूप क्रियाओं व साधनाओं द्वारा इस जीव व अजीवके सम्पर्कको रोका जाता है उसे संवर कहते हैं। तथा जिन व्रत और तपरूप क्रियाओं द्वारा संचित कर्म-बन्धको जर्जरित और विनष्ट किया जाता है उन्हें निर्जरा कहते हैं। जब यह कर्म-निर्जराकी प्रक्रिया पूर्ण रूपसे सम्पन्न हो जाती है तब जीव अपने शुद्ध स्वरूपको प्राप्त कर लेता है, वह मुक्त हो जाता है, उसे निर्वाण मिल जाता है। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि उक्त जीव और अजीवकी पूर्ण व्याख्यामें सृष्टिका पदार्थ-विज्ञान या भौतिक-शास्त्र आ जाता है। आस्रव व बन्धमें मनोविज्ञानका विश्लेषण आ जाता है। संवर और निर्जरा तत्त्वोंके व्याख्यानमें समस्त नीति व आचार शास्त्रका समावेश हो जाता है, और मोक्षके स्वरूपमें जीवनके उच्चतम आदर्श ध्येय व विकासका प्रतिपादन हो जाता है। केवलज्ञानमें इसी समस्त बोध-प्रबोधका पूर्णतः व्यापक व सूक्ष्मतम स्वरूप समाविष्ट है।

५. धर्मोपदेश

इस केवलज्ञानको प्राप्त कर भगवान् महावीर मगधकी राजधानी राजगृहमें आकर विपुलाचल पर्वतपर विराजमान हुए। उनके समवसरण व सभामण्डपकी रचना हुई, धर्म व्याख्यान सुननेके इच्छुक राजा व प्रजागण वहाँ एकत्र हुए और भगवान्‌ने उन्हें अपने पूर्वोक्त तत्त्वोंका स्वरूप समझाया, तथा जीवनके सुखमय आदर्श प्राप्त करने हेतु गृहस्थोंको अणुव्रतोंका एवं त्यागियोंको महाव्रतोंका उपदेश दिया।

६. महावीर-वाणीपर आश्रित साहित्य

भगवान् महावीरके इन्द्रभूति, गौतम, सुधर्म, जम्बू आदि प्रधान ग्यारह शिष्य थे जिन्हें गणधर कहा जाता है। उन्होंने महावीरके समस्त उपदेशोंको बारह अंगोंमें ग्रन्थारूढ़ किया जो इस प्रकार थे—

१. आचारांग—इसमें मुनियोंके नियमोपनियमोंका वर्णन किया गया। इसका स्थान वैसा ही समझना चाहिए जैसा बौद्ध धर्ममें विनय पिटकका है।

२. सूत्रकृतांग—इसमें जैन दर्शनके सिद्धान्तों तथा क्रियावाद, अक्रियावाद, नियतिवाद आदि उस समय प्रचलित मतमतान्तरोंका निरूपण व विवेचन किया।

३. स्थानांग—इसमें संख्यानुसार क्रमशः वस्तुओंके भेदोपभेदोंका विवरण था। जैसे दर्शन एक, चरित्र एक, समय एक, प्रदेश एक, परमाणु एक, आदि। क्रिया दो प्रकार की जैसे—जीव-क्रिया और अजीव-क्रिया। जीव-क्रिया पुनः दो प्रकार की—सम्यक्त्व-क्रिया और मिथ्यात्व-क्रिया। इसी प्रकार अजीव-क्रिया भी दो प्रकार की ईर्यापथिक और साम्परायिक इत्यादि।

४. समवायांग—इसमें पदार्थोंका निरूपण उनके भेदोपभेदोंकी संख्याके अनुसार किया गया है जैसा कि स्थानांग में। किन्तु यहाँ वस्तुओंकी संख्या स्थानांग के समान दश तक ही सीमित नहीं रही, किन्तु शत तथा शत-सहस्र पर भी पहुँच गया है। इस प्रकार इन दो अंगों का स्वरूप त्रिपिटकके अंगोत्तर-निकायके समान है।

५. व्याख्या प्रज्ञप्ति—इसमें प्रश्नोत्तर रूपसे जैन दर्शन व आचारविषयक बातोंका विवेचन था।

६. नाथाधम्मकहा—इसका संस्कृत रूप सामान्यतः ज्ञातृ-धर्म-कथा किया जाता है और उसका यह अभिप्राय बतलाया जाता है कि उसमें ज्ञातृ-पुत्र महावीर के द्वारा उपदिष्ट धार्मिक कथाओंका समावेश था। किन्तु सम्भवतया ग्रन्थके उक्त

प्राकृत नाम का संस्कृत रूपान्तर न्यायधर्म-कथा रहा हो और उसमें न्यायों अर्थात् ज्ञान व नीतिसम्बन्धी संक्षिप्त कहावतोंको दृष्टान्त स्वरूप कथाओं द्वारा समझाने-का प्रयत्न किया गया हो तो आश्चर्य नहीं।

७. उपासकाध्ययन—इसमें उपासकों अर्थात् धर्मानुयायी गृहस्थों व श्रावकों के व्रतोंको उनके पालनेवाले पुरुषोंके चारित्रकी कथाओं द्वारा समझानेका प्रयत्न किया गया था। इस प्रकार यह अंग मुनि आचारको प्रकट करनेवाले प्रथम ग्रन्थ आचारांग का परिपूरक कहा जा सकता है।

८. अन्तकृद्दश—जैन परम्परामें उन मुनियोंको अन्तकृत् कहा गया है जिन्होंने उग्र तपस्या करके घोर उपसर्ग सहते हुए अपने जन्म-मरण रूपी संसारका अन्त करके निर्वाण प्राप्त किया। इस प्रकारके दश मुनियोंका इस अंगमें वर्णन किया गया प्रतीत होता है।

९. अनुत्तरौपपातिकदश—अनुत्तर उन उच्च स्वर्गोंको कहा जाता है जिनमें बहुत पुण्यशाली जीव उत्पन्न होते हैं और वहाँसे च्युत होकर केवल एक बार पुनः मनुष्य योनिमें आते और अपनी धार्मिक वृत्ति द्वारा उसी भवसे मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। इस अंगमें ऐसे ही दश महामुनियों व अनुत्तर-स्वर्गवासियोंके चारित्रका विवरण उपस्थित किया गया था।

१०. प्रश्नव्याकरण—इसमें उसके नामानुसार मत-मतान्तरों व सिद्धान्तों सम्बन्धी प्रश्नोत्तरोंका समावेश था और इस प्रकार यह अंग व्याख्याप्रज्ञप्तिका परिपूरक रहा प्रतीत होता है।

११. विपाकसूत्र—विपाकका अर्थ है कर्मफल। कर्मसिद्धान्तके अनुसार सत्-कर्मोंका फल सुख-भोग और दुष्कृत्योंका फल दुःख होता है। इसी बातको इस अंगमें दृष्टान्तों द्वारा समझाया गया।

१२. दृष्टिवाद—इसके पाँच भेद थे—परिकर्म, सूत्र, पूर्वगत, अनुयोग और चूलिका। परिकर्ममें गणितशास्त्रका तथा सूत्रमें मतों और सिद्धान्तोंका समावेश था। पूर्वगतके चौदह प्रभेद गिनाये गये हैं जिनके नाम हैं: १. उत्पादपूर्व, २. अग्रायणीय, ३. वीर्यानुवाद, ४. अस्तिनास्तिप्रवाद, ५. ज्ञानप्रवाद, ६. सत्यप्रवाद, ७. आत्म-प्रवाद, ८. कर्म-प्रवाद, ९. प्रत्याख्यान, १०. विद्यानुवाद, ११. कल्याण-वाद, १२. प्राणवाद, १३. क्रियाविशाल, और १४. लोकबिन्दुसार। इनमें अपने-अपने नामानुसार सिद्धान्तों व तत्त्वोंका विवेचन किया गया था। इनमें आठवें पूर्व कर्मप्रवादका विशेष महत्त्व है क्योंकि वही जैनधर्मके प्राणभूत कर्म-सिद्धान्तका मूल स्रोत रहा पाया जाता है और उत्तरकालीन कर्म-सम्बन्धी समस्त रचनाएँ उसके ही आधारसे की गयी प्रतीत होती हैं। इन समस्त रचनाओंको पूर्वगत

कहनेका यही अर्थ सिद्ध होता है कि उनके विषयोंकी परम्परा महावीरसे भी पूर्वकालीन है। हाँ, उनमें महावीर द्वारा अपने सिद्धान्तानुसार संशोधन किया गया होगा।

दृष्टिवादके चौथे भेद अनुयोगका भी जैन साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसे प्रथमानुयोग भी कहा जाता है और समस्त पौराणिक वृत्तान्तों, धार्मिक चरित्रों एवं आख्यानात्मक कथाओं आदिको प्रथमानुयोगके अन्तर्गत ही माना जाता है। षट्खण्डागम सूत्र १,१,२ की धवला टीकाके अनुसार प्रथमानुयोगके अन्तर्गत पुराण के बारह भेद थे जिनमें क्रमशः अरहन्तों, चक्रवर्तियों, विद्याधरों, वासुदेवों, चारणों, प्रज्ञाश्रमणों तथा कुरु, हरि, इक्ष्वाकु, काश्यपों, आदियों एवं नाथ वंशोंका वर्णन था।

दृष्टिवादके पाँचवें भेद चूलिकाके पाँच प्रभेद गिनाये गये हैं—जलगत, स्थलगत, मायागत, रूपगत और आकाशगत। इन नामों परसे प्रतीत होता है कि उनमें जल-थल आदि विषयोंका भौगोलिक व तात्त्विक विवेचन किया गया होगा और सम्भवतः उनपर अधिकार प्राप्त करने की मान्त्रिक-तान्त्रिक ऋद्धि-सिद्धि साधनात्मक क्रियाओंका विधान रहा हो।

दिगम्बर परम्परानुसार उक्त समस्त अंगसाहित्य क्रमशः अपने मूल रूपमें विलुप्त हो गया। महावीर-निर्वाण के पश्चात् १६२ वर्षोंमें हुए आठ मुनियोंको ही इन अंगोंका सम्पूर्ण ज्ञान था। इनमें अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु कहे गये हैं। तत्पश्चात् क्रमशः सभी अंगों और पूर्वोंके ज्ञानमें उत्तरोत्तर ह्रास होता गया और निर्वाणसे सातवीं शतीमें ऐसी अवस्था उत्पन्न हो गयी कि केवल कुछ महामुनियोंको ही इन अंगों व पूर्वोंका आंशिक ज्ञानमात्र शेष रहा जिसके आधारसे समस्त जैन शास्त्रों व पुराणों की स्वतन्त्र रूपसे नयी शैलीमें विभिन्न देश-कालानुसार प्रचलित प्राकृतादि भाषाओंमें रचना की गयी।

श्वेताम्बर परम्पराके अनुसार वीर-निर्वाणकी दशवीं शती में मुनियोंकी एक महासभा गुजरात प्रान्तीय वल्लभी (आधुनिक वाला) नामक नगरमें की गयी और वहाँ क्षमाश्रमण देवर्द्धि गणि की अध्यक्षतामें उक्त अंगोंमें से ग्यारह अंगोंका संकलन किया गया जो अब भी उपलब्ध हैं। यद्यपि ये संकलन पूर्णतः अपने मौलिक रूपको सुरक्षित रखते हुए नहीं पाये जाते। विषयकी दृष्टिसे इनमें हीनाधिकता स्पष्ट दिखाई देती है। भाषा भी उनकी वह अर्द्धमागधी नहीं है जो महावीर भगवान्के समयमें प्रचलित थी। उसमें उनके कालसे एक सहस्र वर्ष पश्चात् उत्पन्न हुई भाषात्मक विशेषताओंका समावेश भी पाया जाता है। तथापि सामान्यतया वे प्राचीनतम विषयों व प्रतिपादन-शैलीका बोध करानेके लिए पर्याप्त

हैं। उनका प्राचीनतम बौद्ध साहित्यसे भी मेल खाता है। जिस प्रकार बौद्ध साहित्य त्रिपिटक कहलाता है उसी प्रकार यह जैन साहित्य गणिपिटकके नामसे उल्लिखित पाया जाता है।

यह समस्त साहित्य अंगप्रविष्ट कहा गया है। इसके अतिरिक्त मुनियोंके आचार व क्रियाकलापका विस्तारसे वर्णन अंगबाह्य नामक चौदह प्रकारकी रचनाओंमें पाया जाता है जो इस प्रकार हैं—

१. सामायिक, २. चतुर्विंशतिस्तव, ३. वन्दना, ४. प्रतिक्रमण, ५. वैनयिक, ६. कृतिकर्म, ७. दशवैकालिक, ८. उत्तराध्ययन, ९. कल्पव्यवहार, १०. कल्पाकल्प, ११. महाकल्प, १२. पुण्डरीक, १३. महापुण्डरीक, १४. निषिद्धिका।

इन नामोंसे ही स्पष्ट है कि इन रचनाओंका विषय धार्मिक साधनाओं और विशेषतः मुनियोंकी क्रियाओंसे सम्बन्ध रखता है। यद्यपि ये चौदह रचनाएँ अपने प्राचीन रूपमें अलग-अलग नहीं पायी जातीं, तथापि इनका नाना ग्रन्थोंमें समावेश है और वे मुनियों द्वारा अब भी उपयोगमें लायी जाती हैं।

वल्लभीपुरमें मुनि-संघ द्वारा जो साहित्य-संकलन किया गया उसमें उक्त प्रथम ग्यारह अंगोंके अतिरिक्त औपपातिक, राजप्रश्नीय आदि १२ उपांग; निशीथ, महानिशीथ आदि ६ छेदसूत्र; उत्तराध्ययन, आवश्यक आदि ४ मूलसूत्र; चतुःशरण, आतुर-प्रत्याख्यान आदि दश प्रकीर्णक, तथा अनुयोगद्वार और नन्दी ये दो चूलिका-सूत्र भी सम्मिलित हो गये जिससे समस्त अर्द्धमागधी आगम-ग्रन्थोंकी संख्या ४५ हो गयी जिसे श्वेताम्बर सम्प्रदाय द्वारा धार्मिक मान्यता प्राप्त है। यह समस्त साहित्य अपनी भाषा व शैली तथा दार्शनिक व ऐतिहासिक सामग्रीके लिए पालि साहित्यके समान ही महत्त्वपूर्ण है[1]।

७. महावीर-निर्वाण-काल

भगवान् महावीरका निर्वाण कब हुआ इसके सम्बन्ध में यह तो स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है कि यह घटना कार्तिक कृष्णपक्ष चतुर्दशीकी रात्रिके अन्तिम चरणमें अर्थात् अमावस्याके प्रातःकालसे पूर्व घटित हुई और उनके निर्वाणोत्सवको देवों तथा मनुष्योंने दीपावलीके रूपमें मनाया। तदनुसार आजतक कार्तिककी दीपावली-

---

१. समवायांग सूत्र २११-२२७। षट्खण्डागम १, १, २; टीका भाग १, पृष्ठ ९६ आदि। विंटरनित्ज : इंडियन लिटरेचर भाग २ जैन लिटरेचर। कापडिया : हिस्ट्री ऑफ दि जैन कैनानिकल लिटरेचर। जगदीशचन्द्र : प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ३३ आदि। हीरालाल जैन : भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान, पृष्ठ ५५ आदि। नेमिचन्द्र शास्त्री : प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ १५७ आदि।

से उनका निर्वाण संवत् माना जाता है जिसका इस समय सन् १९७१-७२ में चौबीस सौ अन्ठानबे (२४९८) वां वर्ष प्रचलित है तथा दो वर्ष पश्चात् पूरे पच्चीस सौ वर्ष होनेपर एक महामहोत्सव मनानेकी योजना चल रही है। किन्तु इस संवत्सरका प्रचलन अपेक्षाकृत बहुत प्राचीन नहीं और महावीरके समयमें तथा उसके दीर्घकाल पश्चात् तक किसी सन्-संवत्के उल्लेखका प्रचार नहीं था। पश्चात्कालीन ग्रन्थोंमें जो कालसम्बन्धी उल्लेख पाये जाते हैं उनमें कहीं-कहीं परस्पर कुछ विरोध पाया जाता है और कहीं अन्य साहित्यिक उल्लेखों तथा ऐतिहासिक घटनाओंसे मेल नहीं खाता। इससे निर्वाण कालके सम्बन्धमें आधुनिक विद्वानोंके बीच बहुत-सा मतभेद उत्पन्न हो गया है। एक ओर जर्मन विद्वान् डॉ. याकोबीने महावीर निर्वाण का समय ई. पू. चार सौ सतहत्तर (४७७) माना है। इसका आधार यह है कि मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्तका राज्याभिषेक ई. पू. ३२२ (तीन सौ बाईस) में हुआ और हेमचन्द्र-कृत परिशिष्ट पर्व (८-३३९) के अनुसार यह अभिषेक महावीरके निर्वाणसे १५५ (एक सौ पचपन) वर्ष पश्चात् हुआ था। इस प्रकार महावीर निर्वाण ३२२ + १५५ = ४७७ वर्ष पूर्व सिद्ध हुआ। किन्तु दूसरी ओर डॉ. काशीप्रसाद जायसवालका मत है कि बौद्धोंकी सिंहल-देशीय परम्परामें बुद्धका निर्वाण ई. पू. ५४४ माना गया है। तथा मज्झिमनिकायके साम-गाम सुत्तमें व त्रिपिटकमें अन्यत्र भी इस बातका उल्लेख है कि भगवान् बुद्धको अपने एक अनुयायी द्वारा यह समाचार मिला था कि पावामें महावीरका निर्वाण हो गया। ऐसी भी धारणा रही है कि इसके दो वर्ष पश्चात् बुद्धका निर्वाण हुआ। अतएव यह सिद्ध हुआ कि महावीर-निर्वाणका काल ई. पू. ५४६ है। किन्तु विचार करनेसे ये दोनों अभिमत प्रमाणित नहीं होते। जैन साहित्यिक तथा ऐतिहासिक एक शुद्ध और प्राचीन परम्परा है जो वीर-निर्वाण को विक्रम संवत् से ४७० (चार सौ सत्तर) वर्ष पूर्व तथा शक संवत् से ६०५ (छह सौ पाँच) वर्ष पूर्व हुआ मानती है। इस परम्परा का ऐतिहासिक क्रम इस प्रकार है: जिस रात्रिको वीर भगवान्का निर्वाण हुआ उसी रात्रिको उज्जैनके पालक राजाका अभिषेक हुआ। पालकने ६० वर्ष राज्य किया। तत्पश्चात् नन्दवंशीय राजाओंने १५५ वर्ष, मौर्यवंशने १०८ वर्ष, पुष्यमित्रने ३० वर्ष, बलमित्र और भानुमित्रने ६० वर्ष, नहपान (नहवान नरवाहन या नहसेन) ने ४० वर्ष, गर्दभिल्लने १३ वर्ष और एक राजाने ४ वर्ष राज्य किया, और तत्पश्चात् विक्रम-काल प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार वीरनिर्वाणसे ६० + १५५ + १०८ + ३० + ६० + ४० + १३ + ४ = ४७० वर्ष विक्रम संवत्के प्रारम्भ तक सिद्ध हुए। डॉ. याकोबीने हेमचन्द्र आचार्यके जिस मतके आधारपर वीर-निर्वाण

और चन्द्रगुप्त मौर्यके बीच १५५ वर्षका अन्तर माना है वह वस्तुतः ठीक नहीं है। डॉ. याकोबीने हेमचन्द्रके परिशिष्ट पर्वका सम्पादन किया है और उन्होंने अपना यह मत भी प्रकट किया है कि उक्त कृति की रचनामें शीघ्रताके कारण अनेक भूलें रह गयी हैं। इन भूलोंमें एक यह भी है कि वीर-निर्वाण और चन्द्रगुप्तका काल अंकित करते समय वे पालक राजाका ६० वर्षका काल भूल गये जिसे जोड़नेसे वह अन्तर १५५ वर्ष नहीं किन्तु २१५ वर्षका हो जाता है। इस भूलका प्रमाण स्वयं हेमचन्द्र द्वारा उल्लिखित राजा कुमारपालके कालमें पाया जाता है। उनके द्वारा रचित त्रिषष्टि-शलाका-पुरुष-चरित (पर्व १०, सर्ग १२, श्लोक ४५-४६) में कहा गया है कि वीर निर्वाणसे १६६९ वर्ष पश्चात् कुमारपाल राजा हुए। अन्य प्रमाणोंसे सिद्ध है कि कुमारपालका राज्याभिषेक ११४२ ई. में हुआ था। अतएव इसके अनुसार वीर-निर्वाणका काल १६६९ – ११४२ = ५२७ ई. पू. सिद्ध हुआ।

डॉ. जायसवालने जो बुद्ध निर्वाणका काल सिंहलीय परम्पराके आधारसे ई. पू. ५४४ मान लिया है वह भी अन्य प्रमाणोंसे सिद्ध नहीं होता। उससे अधिक प्राचीन सिंहलीय परम्पराके अनुसार मौर्य सम्राट् अशोकका राज्याभिषेक बुद्ध-निर्वाणसे २१८ वर्ष पश्चात् हुआ था। अनेक ऐतिहासिक प्रमाणोंसे सिद्ध हो चुका है कि अशोकका अभिषेक ई. पू. २६९ वर्षमें अथवा उसके लगभग हुआ था। अतएव बुद्ध-निर्वाणका काल २१८ + २६९ = ४८७ ई. पू. सिद्ध हुआ। इसकी पुष्टि एक चीनी परम्परासे भी होती है। चीनके कैन्टन नामक नगरमें बुद्ध-निर्वाणके वर्षका स्मरण बिन्दुओं द्वारा सुरक्षित रखनेका प्रयत्न किया गया है। प्रति वर्ष एक बिन्दु जोड़ दिया जाता था। इन बिन्दुओंकी संख्या निरन्तर ई. सन् ४८९ तक चलती रही और तब तकके बिन्दुओंकी संख्या ९७५ पायी जाती है। इसके अनुसार बुद्ध-निर्वाणका काल ९७५ – ४८९ = ४८६ ई. पू. सिद्ध हुआ। इस प्रकार सिंहल और चीनी परम्परामें पूरा सामञ्जस्य पाया जाता है। अतएव बुद्ध-निर्वाण का यही काल स्वीकार करने योग्य है।

स्वयं पालि त्रिपिटकमें इस बातके प्रचुर प्रमाण पाये जाते हैं कि महावीर आयुमें और तपस्यामें बुद्धसे ज्येष्ठ थे, और उनका निर्वाण भी बुद्धके जीवन-काल में ही हो गया था। दीघनिकायके सामञ्ञ-फल-सुत्त, संयुत्त-निकायके दहर-सुत्त तथा सुत्त-निपातके सभिय-सुत्तमें बुद्धसे पूर्ववर्ती छह तीर्थंकरोंका उल्लेख आया है। उनके नाम हैं पूरण कस्सप, मक्खलिगोसाल, निगंठ नातपुत्त (महावीर), संजय वेलट्ठिपुत्त, प्रबुद्ध कच्चायन और अजितकेश-कंबलि। इन सभीको बहुत लोगों द्वारा सम्मानित, अनुभवी, चिरप्रव्रजित व वयोवृद्ध कहा गया है, किन्तु बुद्धको ये

विशेषण नहीं लगाये गये। इसके विपरीत उन्हें उक्त छहकी अपेक्षा जन्मसे अल्पवयस्क व प्रव्रज्यामें नया कहा गया है। इससे सिद्ध है कि महावीर बुद्धसे ज्येष्ठ थे और उनसे पहले ही प्रव्रजित हो चुके थे।

मज्झिमनिकायके सामगाम सुत्तमें वर्णन आया है कि जब भगवान् बुद्ध सामगाममें विहार कर रहे थे तब उनके पास चुन्द नामक श्रमणोद्देश आया और उन्हें यह सन्देश दिया कि अभी-अभी पावामें निगंठ नातपुत्त (महावीर) की मृत्यु हुई है, और उनके अनुयायियोंमें कलह उत्पन्न हो गया है। बुद्धके पट्ट शिष्य आनन्दको इस समाचारसे सन्देह उत्पन्न हुआ कि कहीं बुद्ध भगवान्के पश्चात् उनके संघमें भी ऐसा ही विवाद उत्पन्न न हो जाये। अपने इस संदेहकी चर्चा उन्होंने बुद्ध भगवान्से भी की। यही वृत्तान्त दीघ-निकायके पासादिक-सुत्तमें भी पाया जाता है। इसी निकायके संगीतिपरियाय-सुत्तमें भी बुद्धके संघमें महावीर-निर्वाणका वही समाचार पहुँचता है और उसपर बुद्धके शिष्य सारिपुत्तने भिक्षुओंको आमन्त्रित कर वह समाचार सुनाया तथा भगवान् बुद्धके निर्वाण होनेपर विवादकी स्थिति उत्पन्न न होने देनेके लिए उन्हें सतर्क किया। इसपर स्वयं बुद्धने कहा—साधु, साधु, सारिपुत्र, तुमने भिक्षुओंको अच्छा उपदेश दिया। ये प्रकरण निस्सन्देह रूपसे प्रमाणित करते हैं कि महावीरका निर्वाण बुद्धके जीवन-कालमें ही हो गया था। यही नहीं, किन्तु इससे उनके अनुयायियोंमें कुछ विवाद भी उत्पन्न हुआ था जिसके समाचारसे बुद्धके संघमें कुछ चिन्ता भी उत्पन्न हुई थी, और उसके समाधान का भी प्रयत्न किया गया था। इस प्रकार बुद्धसे महावीरकी वरिष्ठता और पूर्व-निर्वाण निस्सन्देह रूपसे सिद्ध हो जाता है और उनका दोनोंकी उक्त परम्परागत निर्वाण-तिथियोंसे भी मेल बैठ जाता है।[1]

८. महावीर-जन्मस्थान

प्रस्तुत ग्रन्थ संधि १ कडवक ६-७ में कहा गया है कि जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें स्थित कुण्डपुरके राजा सिद्धार्थ और रानी प्रियकारिणीके चौबीसवें जिनेन्द्र महावीरका जन्म होगा। इस परसे इतना तो स्पष्ट हो गया कि भगवान्का जन्म-स्थान कुण्डपुर था। किन्तु वहाँ उसके भारतमें स्थित होनेके अतिरिक्त और अन्य

---

१. महावीर और बुद्धके निर्वाण कालसम्बन्धी उल्लेखों व ऊहापोहके लिए देखिए विंटरनिट्ज : हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर भाग २ अपेण्डिक्स १ बुद्ध-निर्वाण व अपेण्डिक्स ६ महावीर-निर्वाण। मुनि नगराज कृत आगम और त्रिपिटक : एक अनुशीलन, पृष्ठ ४७-१२८।

कोई प्रदेश आदिकी सूचना नहीं दी गयी। तथापि अन्य ऐसे उल्लेख प्राप्त हैं जिनसे स्पष्ट हो जाता है कि यह कुण्डपुर विदेह प्रदेशमें स्थित था। उदाहरणार्थ पूज्यपाद स्वामी कृत निर्वाण-भक्तिमें कहा गया है कि :—

"सिद्धार्थ-नृपति-तनयो भारतवास्ये विदेह-कुण्डपुरे।" अर्थात् राजा सिद्धार्थ के पुत्र महावीरका जन्म भारतवर्षके विदेह प्रदेशमें स्थित कुण्डपुरमें हुआ। इसी प्रकार जिनसेन कृत हरिवंश पुराण (सर्ग २ श्लोक १ से ५) में कहा गया है कि :

अथ देशोऽस्ति विस्तारो जम्बूद्वीपस्य भारते।
विदेह इति विख्यातः स्वर्गखण्डसमः श्रिया॥
तत्राखण्डलनेत्रालीपथिनीखण्डमण्डनम्।
सुखाम्भःकुण्डमाभाति नाम्ना कुण्डपुरं पुरम्॥

अर्थात् जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें विशाल, विख्यात व समृद्धिमें स्वर्गके समान जो विदेह देश है उसमें कुण्डपुर नामका नगर ऐसा शोभायमान दिखाई देता है जैसे मानो वह सुखरूपी जलका कुण्ड ही हो, तथा जो इन्द्रके सहस्र नेत्रोंकी पंक्तिरूपी कमलनी-खण्डसे मण्डित हो। गुणभद्रकृत उत्तरपुराण (पर्व ७४ श्लोक २५१-२५२) में भी पाया जाता है कि :

भरतेऽस्मिन्विदेहाख्ये विषये भवनाङ्गणे।
राज्ञः कुण्डपुरेशस्य वसुधारापतत्पृथुः॥

अर्थात् इसी भरत क्षेत्रके विदेह नामक देशमें कुण्डपुर-नरेशके प्रासादके प्रांगणमें विशाल धनकी धारा बरसी।

अर्द्धमागधी आगमके आचाराङ्ग सूत्र (२, १५) तथा कल्पसूत्र (११०) में भी कहा गया है कि :

समणे भगवं महावीरे णाए णायपुत्ते णायकुलणिव्वत्ते विदेहे विदेहदिन्ने विदेहजच्चे विदेहसुकुमाले तीसं वासाइं विदेहंसि कट्टु अगारमज्झे वसित्ता....।

अर्थात् ज्ञातृ, ज्ञातृ-पुत्र, ज्ञातृकुलोत्पन्न, वैदेह, विदेहदत्त, विदेहजात्य, विदेहसुकुमार, श्रमण भगवान् महावीर ३० वर्ष विदेहदेशके ही गृहमें निवास करके प्रव्रजित हुए।

और भी अनेक अवतरण दिये जा सकते हैं, किन्तु इतने ही उल्लेखोंसे यह भली प्रकार सिद्ध हो जाता है कि भगवान् महावीरकी जन्मनगरीका नाम कुण्डपुर था, और वह कुण्डपुर विदेह प्रदेशमें स्थित था। सौभाग्यसे विदेहकी सीमाके सम्बन्धमें कहीं कोई विवाद नहीं है। प्राचीनतम काल से बिहार राज्यका गंगासे उत्तरका भाग विदेह और दक्षिणका भाग मगध नामसे प्रसिद्ध रहा है। इसी विदेह प्रदेशको तीरभुक्ति नामसे भी उल्लिखित किया गया है जिसका वर्तमान

रूप तिरहुत अब भी प्रचलित है। पुराणोंमें इसकी सीमाएँ इस प्रकार निर्दिष्ट की गयी हैं :

गङ्गा-हिमवतोर्मध्ये नदीपञ्चदशान्तरे ।
तीरभुक्तिरिति ख्यातो देशः परम-पावनः ॥
कौशिकीं तु समारभ्य गण्डकीमधिगम्य वै ।
योजनानि चतुर्विंशद् व्यायामः परिकीर्तितः ॥
गङ्गा-प्रवाहमारभ्य यावद् हैमवतं वरम् ।
विस्तारः षोडशं प्रोक्तो देशस्य कुलनन्दन ॥

इस प्रकार विदेह अर्थात् तीरभुक्ति (तिरहुत) प्रदेश की सीमाएँ सुनिश्चित हैं। उत्तरमें हिमालय पर्वत और दक्षिणमें गंगा नदी, पूर्वमें कौशिकी और पश्चिममें गण्डकी नामक नदियाँ। किन्तु विदेहकी ये सीमाएँ भी एक विशाल क्षेत्रको सूचित करती हैं और अब हमारे लिए यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि इस प्रदेशमें कुण्डपुरको कहाँ रखा जाये। इसके निर्णयके लिए हमारा ध्यान महावीरके ज्ञातृ-कुलोत्पन्न, ज्ञातृपुत्र आदि विशेषणोंकी ओर आकृष्ट होता है। ये ज्ञातृ क्षत्रियवंशी कहाँ रहते थे इसका संकेत हमें बौद्ध साहित्यके एक अतिप्राचीन ग्रन्थ महावस्तुमें प्राप्त होता है। वहाँ प्रसंग यह है कि बुद्ध भगवान् गंगाको पार कर वैशालीकी ओर जा रहे हैं और उनके स्वागतके लिए वैशाली संघके लिच्छवी आदि अनेक क्षत्रियगण शोभायात्रा बनाकर उनके स्वागतार्थ आते हैं। इसका वर्णन करते हुए कहा गया है कि :

स्फीतानि राज्यानि प्रशास्यमाना ।
सम्यक् राज्यानि करोन्ति ज्ञातयः ॥
तथा इमे लेच्छवि-मध्ये सन्तो ।
देवेहि शास्ता उपमामकासि ॥

अर्थात् ये जो क्षत्रियगण भगवान्के स्वागतके लिए आ रहे हैं उनमें जो ज्ञातृ नामक क्षत्रियगण हैं वे अपने विशाल राज्यका शासन भले प्रकारसे करते हैं और वे लिच्छवि गणके क्षत्रियोंके बीच ऐसे प्रतिष्ठित और शोभायमान दिखाई देते हैं कि स्वयं शास्ता अर्थात् स्वयं भगवान् बुद्धने उनकी उपमा देवोंसे की है। इस उल्लेखसे एक तो यह बात सिद्ध हो जाती है कि ज्ञातृकुलके क्षत्रियोंका निवास-स्थान वैशाली ही था, और दूसरे वे लिच्छविगणमें विशेष सम्मानका स्थान रखते थे। इसका कारण भी स्पष्ट है। ज्ञातृकोंके कुलकी प्रतिष्ठा इस कारण और भी बढ़ गयी प्रतीत होती है क्योंकि उनके गणनायक सिद्धार्थ वैशाली गणके नायक राजा चेटकके जामाता थे। चेटककी कन्या (भगिनी) प्रियकारिणी त्रिशलाका

विवाह ज्ञातृकुल-श्रेष्ठ राजा सिद्धार्थसे हुआ था। भगवान् महावीरको वैशालीसे सम्बद्ध करनेवाला एक और पुष्ट प्रमाण उपलब्ध है। अर्द्धमागधी आगमोंमें (सूत्रकृतांग १, २; उत्तराध्ययन ६ आदि) अनेक स्थानोंपर भगवान् महावीरको वेसालीय—वैशालिक कहा गया है। यद्यपि कुछ टीकाकारोंने वैशालिकका विशाल-व्यक्तित्वशील, विशालामाताके पुत्र आदि रूपसे विविध प्रकार अर्थ किये हैं तथापि वे संतोषजनक नहीं हैं। वैशालिकका यही स्पष्ट अर्थ समझमें आता है कि वैशाली नगरके नागरिक थे। आगम में अनेक स्थानोंपर वैशाली श्रावकोंका भी उल्लेख आता है। भगवान् ऋषभदेव कोशल देशके थे, अतएव उन्हें 'अरहा कोसलीए' अर्थात् कोशल देशके अरहंत कहकर भी सम्बोधित किया गया है (समवायांग सूत्र १४१, १६२)। इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि महावीर वैशाली नगरमें ही उत्पन्न हुए थे और कुण्डपुर उसी विशाल नगरका एक भाग रहा होगा।

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि वैशालीकी स्थिति कहाँ थी ? इसका स्पष्ट उत्तर वाल्मीकि कृत रामायण (१,४५) में पाया जाता है। राम और लक्ष्मण विश्वामित्र मुनिके साथ मिथिलामें राजा जनक द्वारा आयोजित धनुर्यज्ञमें जा रहे हैं। जब वे गंगा-तटपर पहुँचे तब मुनिने उन्हें गंगा-अवतरणका आख्यान सुनाया। तत्पश्चात् उन्होंने गंगा पार की और वे उसके उत्तरीय तटपर जा पहुँचे। वहाँसे उन्होंने विशालापुरीको देखा :

उत्तरं तीरमासाद्य सम्पूज्यर्षिगणं ततः।
गङ्गाकूले निविष्टास्ते विशालां ददृशुः पुरीम् ॥९॥ (रामा. ४५,९)

और वे शीघ्र ही उस रम्य, दिव्य तथा स्वर्गोपम नगरीमें जा पहुँचे।

ततो मुनिवरस्तूर्णं ययौ सह राघवः।
विशालां नगरीं रम्यां दिव्यां स्वर्गोपमां तदा ॥

(रामा. १,४५, ९-१०)

यहाँ उन्होंने एक रात्रि निवास किया और दूसरे दिन वहाँसे चलकर वे जनकपुरी मिथिलामें पहुँचे।

'उष्य तत्र निशामेकां जग्मतुर्मिथिलां ततः।'

बौद्ध ग्रन्थोंमें भी वैशालीके अनेक उल्लेख आये हैं और वहाँ भी स्पष्टतः कहा गया पाया जाता है कि बुद्ध भगवान् गंगाको पारकर उत्तरकी ओर वैशालीमें पहुँचे। वैशालीमें उस समय लिच्छवि संघका राज्य था तथा गंगाके दक्षिणमें मगधनरेश श्रेणिक बिम्बसार और उनके पश्चात् कुणिक अजातशत्रुका एकछत्र राज्य था। इन दोनों राज्यतन्त्रोंमें मौलिक भेद था और उनमें शत्रुता भी बड़

गयी थी। बौद्ध ग्रन्थोंमें उल्लेख है (दीघनिकाय-महापरिनिब्बाण सुत्त) कि अजातशत्रुके मन्त्री वर्षकारने बुद्धसे पूछा था कि क्या वे वैशालीके लिच्छवि संघ-पर विजय प्राप्त कर सकते हैं ? इसके उत्तरमें बुद्धने उन्हें यह सूचित किया था कि जबतक लिच्छवि गणके लोग अपनी गणतन्त्रीय व्यवस्थाको सुसंगठित हो एकमतसे समर्थन दे रहे हैं, न्यायनीतिका पालन करते हैं और सदाचारके नियमों का उल्लंघन नहीं करते, तबतक उन्हें कोई पराजित नहीं कर सकता। यह बात जानकर वर्षकार मन्त्रीने कूटनीतिसे लिच्छवियोंके बीच फूट डाली और उन्हें न्यायनीतिसे भ्रष्ट किया। इसका जो परिणाम हुआ उसका विशद वर्णन अर्द्धमागधी आगमके भगवती सूत्र, सप्तम शतक में पाया जाता है। इसके अनुसार अजात-शत्रुकी सेनाने वैशालीपर आक्रमण किया। युद्धमें महाशिलकंटक और रथमुसल नामक युद्ध-यन्त्रोंका उपयोग किया गया। अन्ततः वैशालीके प्राकारका भंग होकर अजातशत्रुकी विजय हो गयी। तात्पर्य यह है कि महावीरके कालमें वैशालीकी बड़ी प्रतिष्ठा थी और उस नगरीका नागरिक होना एक गौरवकी बात मानी जाती थी। इसीलिए महावीरको वैशालीय कहकर भी सम्बोधित किया गया है। अनेक प्राचीन नगरोंके साथ इस वैशालीयका भी दीर्घकाल तक इतिहासज्ञोंको अता-पता नहीं था। किन्तु विगत एक शताब्दीमें जो पुरातत्त्व सम्बन्धी खोज-शोध हुई है उससे प्राचीन भग्नावशेषों, मुद्राओं व शिलालेखों आदिके आधारसे प्राचीन वैशाली-की ठीक स्थिति अवगत हो गयी है और निस्सन्देह रूपसे प्रमाणित हो गया है कि बिहार राज्यसे गंगाके उत्तरमें मुजफ्फरपुर जिलेके अन्तर्गत बसाढ़ नामक ग्राम ही प्राचीन वैशाली है। स्थानीय खोज-शोधसे यह भी माना गया है कि वर्तमान बसाढ़के समीप ही जो वासुकुण्ड नामक ग्राम है वही प्राचीन कुण्डपुर होना चाहिए। वहाँ एक प्राचीन कुण्डके भी चिह्न पाये जाते हैं जो क्षत्रियकुण्ड कहलाता रहा होगा। उसीके समीप एक ऐसा भी भूमिखण्ड पाया गया जो 'अहल्य' माना जाता रहा है। उसपर कभी हल नहीं चलाया गया, तथा स्थानीय जनताकी धारणा रही है कि वह एक अतिप्राचीन महापुरुषका जन्मस्थान था। इसलिए उसे पवित्र मानकर लोग वहाँ दीपावलीको अर्थात् महावीरके निर्वाणके दिन दीपक जलाया करते हैं। इन सब बातोंपर समुचित विचार करके विद्वानोंने उसी स्थलको महावीरकी जन्मभूमि स्वीकार किया और बिहार सरकारने भी इसी आधारपर उस स्थलको अपने अधिकारमें लेकर उसका घेरा बना दिया है और वहाँ एक कमलाकार वेदिका बनाकर वहाँ एक संगमरमरका शिलापट्ट स्थापित कर दिया है। उसपर अर्द्धमागधी भाषामें आठ गाथाओंका लेख हिन्दी अनुवाद सहित भी अंकित कर दिया गया है जिसमें वर्णन है कि यह वह स्थल है

जहाँ भगवान् महावीरका जन्म हुआ था और जहाँसे वे अपने ३० वर्षके कुमार-कालको पूरा कर प्रव्रजित हुए थे। शिलालेखमें यह भी उल्लेख है कि भगवान्के जन्मसे २५५५ वर्ष व्यतीत होनेपर विक्रम संवत् २०१२ वर्षमें भारत के राष्ट्रपति श्री राजेन्द्रप्रसादने वहाँ आकर उस स्मारकका उद्घाटन किया।

महावीर स्मारकके समीप ही तथा पूर्वोक्त प्राचीन क्षत्रिय कुण्डकी तटवर्ती भूमिपर साहू शान्तिप्रसादके दानसे एक भव्य भवनका निर्माण भी करा दिया गया है और वहाँ बिहार राज्य शासन द्वारा प्राकृत जैन शोध-संस्थान भी चलाया जा रहा है। यह संस्थान सन् १९५६ में मेरे (डा. हीरालाल जैन) निर्देशकत्वमें मुजफ्फरपुरमें प्रारम्भ किया गया था। उन्हींके द्वारा वैशालीमें महावीर स्मारक स्थापित कराया गया तथा शोध-संस्थानके भवनका निर्माण कार्य प्रारम्भ कराया गया।

वैशालीकी स्थितिका यह जो निर्णय किया गया उसमें एक शंका रह जाती है। कुछ धर्म-बन्धुओंको यह बात खटकती है कि कहीं-कहीं वैशालीकी स्थिति विदेहमें नहीं, किन्तु सिन्धु देशमें कही गयी है। प्रस्तुत ग्रन्थ (५,५) में भी कहा पाया जाता है कि सिंधुविसइ वइसालीपुरवरि' तथा संस्कृत उत्तर पुराण (७५,३) में भी कहा गया है :

सिन्ध्वाख्यविषये भूभृद्विशालोनगरेऽभवत्।
चेटकाख्योऽतिविख्यातो विनीतः परमार्हतः॥

इन दोनों स्थानोंपर सिन्धु विषय व सिन्ध्वाख्यविषयेका तात्पर्य सिन्ध देशसे लगाया जाना स्वाभाविक ही है। किन्तु साथ ही यह भी स्पष्ट है कि वर्तमान सिन्धदेशमें न तो किसी वैशाली नामक नगरीका कहीं कोई उल्लेख पाया गया और न उसकी पूर्वोक्त समस्त ऐतिहासिक उल्लेखों और घटनाओंसे सुसंगति बैठ सकती है। वैशालीकी स्थितिमें अब कहीं किसी विद्वान्को संशय नहीं रहा है। इस विषयपर मैंने जो विचार किया है उससे मैं इस निर्णयपर पहुँचा हूँ कि उत्तर पुराणमें जो 'सिन्ध्वाख्यविषये' पाठ है वह किसी लिपिकारके प्रमादका परिणाम है। यथार्थतः वह पाठ होना चाहिये 'सिन्ध्वाख्य-विषये' जिसका अर्थ होगा वह प्रदेश जहाँ नदियोंका बाहुल्य है। तिरहुत प्रदेशका यह विशेषण पूर्णतः सार्थक है। इस प्रदेशका उल्लेख शंकरदिग्विजय नामक ग्रन्थमें भी आया है, और वहाँ उसे उदकदेश कहा गया है। तीरभुक्ति नामकी भी यही सार्थकता है कि समस्त प्रदेश प्रायः नदियों और उसके तटवर्ती क्षेत्रोंमें बटा हुआ है। ऊपर जो तीरभुक्ति सम्बन्धी एक उल्लेख उद्धृत किया गया है उसमें इस प्रदेशको 'नदी-पञ्चदशान्तरे' कहा गया है, अर्थात् पन्द्रह नदियोंमें बटा हुआ प्रदेश। वहाँ नदियोंकी बहुलता

तथा समय-समयपर पूरे प्रदेशका जल-प्लावन आज भी देखा-सुना जाता है। अतः पूर्वोक्त दोनों उल्लेखोंसे किसी अन्य सिन्धु देशका नहीं, किन्तु इसी सिन्धुबहुल, उदकदेश या तीरभुक्तिसे ही अभिप्राय है।

अब इस विषयमें एक प्रश्न फिर भी शेष रह जाता है। इधर दीर्घकालसे महावीर स्वामीका जन्म-स्थान बिहारके पटना जिलेमें नालन्दाके समीप कुण्डलपुर माना जाता है। वहाँ एक विशाल मन्दिर भी है और वह भगवान्‌के जन्म-कल्याणक स्थानके रूपमें एक तीर्थ माना जाता है। इसी श्रद्धासे, वहाँ सहस्रों यात्री तीर्थयात्रा करते हैं। उसी प्रकार श्वेताम्बर सम्प्रदाय द्वारा भगवान्‌का जन्म-स्थान मुंगेर जिलेके लच्छुआड़ नामक ग्रामके समीप क्षत्रिय-कुण्डको माना गया है। किन्तु ये दोनों स्थान गंगाके उत्तर विदेह देशमें न होकर गंगाके दक्षिणमें मगध देशके अन्तर्गत हैं और इस कारण दोनों ही सम्प्रदायोंके प्राचीनतम स्पष्ट ग्रन्थोल्लेखोंके विरुद्ध पड़ते हैं। यथार्थतः इस विषयमें सन्देह याकोबी आदि उन विदेशी विद्वानोंने प्रकट किया जिन्होंने इस विषयपर निष्पक्षतापूर्वक शुद्ध ऐतिहासिक दृष्टिसे विचार किया था, और उन्हींकी खोज-शोधों द्वारा वैशाली तथा कुण्डपुरकी वास्तविक स्थितिका पता चला। ये जो दो स्थान वर्तमानमें जन्मस्थल माने जा रहे हैं उनकी परम्परा वस्तुतः बहुत प्राचीन नहीं है। विचार करनेसे ज्ञात होता है कि विदेह और मगध प्रदेशोंमें जैनधर्मके अनुयायियोंकी संख्या महावीरके कालसे लगभग बारह सौ वर्षतक तो बहुत रही। सातवीं शताब्दीमें हर्षवर्धनके कालमें जो चीनी यात्री हुयेनत्सांग भारतमें आया था उसने समस्त बौद्ध तीर्थोंकी यात्रा करनेका प्रयत्न किया था। वह वैशाली भी गया था जिसके विषयमें उसने अपनी यात्राके वर्णनमें स्पष्ट लिखा है कि वहाँ बौद्ध धर्मानुयायियों-की अपेक्षा निर्ग्रन्थों अर्थात् जैनियोंकी संख्या अधिक है। किन्तु इसके पश्चात् स्थितिमें बड़ा अन्तर पड़ा प्रतीत होता है, और अनेक कारणोंसे यहाँ प्रायः जैनियों का अभाव हो गया। इसके अनेक शताब्दी पश्चात् सम्भवतः मुगलकालमें व्यापारकी दृष्टिसे पुनः जैनी यहाँ आकर बसे और उन्होंने पुरातत्त्व व ऐतिहासिक प्रमाणोंके आधारपर नहीं, किन्तु केवल नाम-साम्य तथा भ्रान्त जनश्रुतियोंके आधारसे कुण्डलपुर व लच्छुआड़में भगवान्‌के जन्मस्थानकी कल्पना कर ली। अब उक्त दोनों स्थान वहाँके मन्दिरोंके निर्माण, मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा तथा सैकड़ों वर्षोंसे जनताकी श्रद्धा एवं तीर्थयात्राके द्वारा तीर्थस्थल बन गये हैं और बने रहेंगे। किन्तु जब हमने यह जान लिया कि भगवान्‌का वास्तविक जन्म-स्थान वैशाली व कुण्डपुर है उसे समस्त भारतीय व विदेशी विद्वानोंने एकमतसे स्वीकार किया है तथा बिहार शासन द्वारा भी उसे मान्यता प्रदान कर वहाँ महावीर स्मारक और

शोध-संस्थान की स्थापना भी की है। अब समस्त जैन समाजको इस स्थानकी उपेक्षा नहीं करना चाहिए और अपना पूरा योगदान देकर उसे उसके ऐतिहासिक महत्त्वके अनुरूप गौरवशाली बनाना चाहिए।[1]

९. महावीर-तप-कल्याणक क्षेत्र

भगवान्ने तपश्चरण कहाँ प्रारम्भ किया था इसका उल्लेख प्रस्तुत ग्रन्थ (१, ११) में इस प्रकार पाया जाता है :

चंदप्पह-सिवियहिँ पहु चडिण्णु ।
तहिँ णाह-संडवणि णवर दिण्णु ॥
मग्गसिर-कसण-दसमी-दिणंति ।
संजायइ तियसुच्छवि महंति ॥
वोलीणइ चरियावरण पंकि ।
हत्थुत्तरमज्झासिइ ससंकि ॥
छट्ठोववासु किउ मलहरेण ।
तवचरणु लइउ परमेसरेण ॥

इसी प्रकार संस्कृत उत्तरपुराण (७४, ३०२-३०४) में भगवान्के तपग्रहणका उल्लेख इस प्रकार पाया जाता है :

नाथः (नाथ-) षण्डवनं प्राप्य स्वयानादवरुह्य सः ।
श्रेष्ठः षष्ठोपवासेन स्वप्रभापटलावृते ॥३०२॥
निविश्योदङ्मुखो वीरो रुन्द्ररत्नशिलातले ।
दशम्यां मार्गशीर्षस्य कृष्णायां शशिनि श्रिते ॥
हस्तोत्तरर्क्षयोर्मध्यं भागं चापास्तलक्ष्मणि ।
दिवसावसितौ धीरः संयमाभिमुखोऽभवत् ॥
सौधर्माद्यैः सुरैरेत्य कृताभिषवपूजनः ॥

हरिवंशपुराण (२,५०-५२) के अनुसार :

आरुह्य शिबिकां दिव्यामुह्यमानां सुरेश्वरैः ॥
उत्तराफाल्गुनीष्वेव वर्तमाने निशाकरे ।
कृष्णस्य मार्गशीर्षस्य दशम्यामगमद् वनम् ॥

---

१. हार्नले : उपासक-दशा, प्रस्तावना व टिप्पण । कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृष्ठ १४०। भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, पृ० २२ आदि ।

अपनीय तनोः सर्वं वस्त्रमाल्यविभूषणम् ।
पञ्चमुष्टिभिरुद्धृत्य मूर्धजानभवन्मुनिः ॥

इन तीनों उल्लेखोंका अभिप्राय यह है कि नाथ, नाथ, नाय अथवा ज्ञातृ वंशीय भगवान् महावीर ने मार्गशीर्ष कृष्णा १०वीं के दिन षण्डवनमें जाकर तपश्चरण प्रारम्भ किया और वे मुनि हो गये। यथार्थतः अर्द्धमागधी ग्रन्थों, जैसे कल्पसूत्रादिमें इसे 'णाय-संडवन' अर्थात् ज्ञातृ क्षत्रियोंके हिस्सेका वन कहा गया है और मेरे मतानुसार उत्तरपुराणमें भी मूलतः पाठ नाय-षण्डवन व अपभ्रंशमें णाहसंडवण रहा है जिसे अज्ञानवश लिपिकारोंने अपनी दृष्टिसे सुधार दिया है। अतः भगवान्‌की तपोभूमि ज्ञातृवंशी क्षत्रियोंके निवास वैशाली व कुण्डपुरका समीपवर्ती उपवन ही सिद्ध होता है।

१०. भगवान् का केवलज्ञान-क्षेत्र

भगवान्‌को केवलज्ञान कहाँ उत्पन्न हुआ इसका उल्लेख प्रस्तुत ग्रन्थ (२, ५) में निम्नप्रकार पाया जाता है।

बारह-संवच्छर-तव-चरणु ।
किउ सम्मइणा दुक्किय-हरणु ॥
पोसंतु अहिंस खंति ससहि ।
भयवंतु संतु विहरंतु महि ॥
गउ जिम्हिय-गामहु अइ-णियडि ।
सुविउलि रिजुकूला-णइहि तडि ॥

घत्ता—मोर-कीर-सारस-सरि उज्जाणम्मि मणोहरि ॥
साल-मूलि रिसि-राणउ रयण-सिलहि आसीणउ ॥५॥

छट्ठेणुववासें हयदुरिएँ ।
परिपालिय-तेरह-विह-चरिएँ ॥
वइसाह-मासि सिय-दसमि दिणि ।
अवरण्हइ जायइ हिम-किरणि ॥
हत्थुत्तर-मज्झ-समासियइ ।
पहु खडिक्कण्णउ केवल-सियइ ॥

अर्थात् भगवान् महावीरने बारह वर्ष तक तपस्या की, तथा अपनी स्वसा चन्दनाके अहिंसा और क्षमा भावका पोषण किया, एवं विहार करते हुए वे

जृम्भिक ग्रामके अतिनिकट ऋजुकूला नदीके तटवर्ती वनमें पहुँचे। वहाँ उन्होंने एक साल वृक्षके नीचे शिलापर ध्यानारूढ़ हो दो दिन उपवासकर वैशाख शुक्ल दशमीके दिन अपराह्न कालमें जब चन्द्र उत्तराषाढ़ और हस्त नक्षत्रोंके मध्यमें था तब केवलज्ञान प्राप्त किया। यही बात उत्तरपुराण (७४, ३, ४९ आदि) में इस प्रकार कही गयी है :

भगवान्वर्धमानोऽपि नीत्वा द्वादशवत्सरान् ।
छाद्मस्थ्येन जगद्बन्धुर्जृम्भिक-ग्राम-सन्निधौ ॥
ऋजुकूलानदीतीरे मनोहरवनान्तरे ।
महारत्नशिलापट्टे प्रतिमायोगमावसन् ॥
स्थित्वा षष्ठोपवासेन सोऽथस्तात्सालभूरुहः ।
वैशाखे मासि सज्योत्स्नदशम्यामपराह्णके ॥
हस्तोत्तरान्तरं याते शशिन्यारूढ-शुद्धिकः ।
क्षापकश्रेणिमारुह्य शुक्लध्यानेन सुस्थितः ॥
घातिकर्माणि निर्मूल्य प्राप्यानन्तचतुष्टयम् ।
परमात्मपदं प्राप्तपरमेष्ठी स सन्मतिः ॥

यही बात हरिवंशपुराण (२,५६-५९) में इस प्रकार कही गयी है :

मनःपर्ययपर्यन्त-चतुर्ज्ञानमहेक्षणः ।
तपो द्वादशवर्षाणि चकार द्वादशात्मकम् ॥
विहरन्नथ नाथोऽसौ गुणग्राम-परिग्रहः ।
ऋजुकूलापगाकूले जृम्भिक-ग्राममीयिवान् ॥
तत्रातापनयोगस्थः सालाभ्याससिलातले ।
वैशाख-शुक्लपक्षस्य दशम्यां षष्ठमाश्रितः ॥
उत्तराफाल्गुनीप्राप्ते शुक्लध्यानी निशाकरे ।
निहत्य घातिसंघातं केवलज्ञानमाप्तवान् ॥

इस प्रकार भगवान् महावीरका केवलज्ञान-प्राप्ति रूप कल्याणक जृम्भिक ग्रामके समीप ऋजुकूला नदीके तटपर सम्पन्न हुआ। इस ग्रामका नाम आचारांग सूत्र व कल्पसूत्रमें जंभिय तथा नदीका नाम ऋजुवालुका पाया जाता है।

यद्यपि अभी तक इस ग्राम और नदीकी स्थितिका निर्णय नहीं हुआ, तथापि इसमें कोई सन्देह नहीं दिखाई देता कि उक्त नदी वही है जो अब भी बिहारमें कुयेल या कुएल—कूला नामसे प्रसिद्ध है और उसके तट पर इसी नामका एक बड़ा रेलवे जंक्शन भी है। उसीके समीप जम्हुई नामक नगर भी है। अतः यही

स्थान भगवान्‌का ज्ञान-प्राप्ति क्षेत्र स्वीकार करके वहाँ समुचित स्मारक बनाया जाना चाहिए।

११. महावीरदेशना-स्थल

केवलज्ञान प्राप्त करके भगवान् राजगृह पहुँचे, और उस नगरके समीप विपुलाचल पर्वतपर उनका समवसरण बनाया गया। वहाँ उनकी दिव्यध्वनि हुई जिसका समय श्रावण कृष्ण प्रतिपदा कहा गया है। इसके अनुसार भगवान्‌का प्रथम उपदेश केवलज्ञान-प्राप्तिसे ६६ दिन पश्चात् हुआ। यह बात हरिवंशपुराण (२,६१ आदि) में निम्न प्रकार पायी जाती है :

षट्षष्टिदिवसान् भूयो मौनेन विहरन् विभुः।
आजगाम जगत् ख्यातं जिनो राजगृहं पुरम् ॥
आरुरोह गिरिं तत्र विपुलं विपुलश्रियम्।
प्रबोधार्थं स लोकानां भानुमानुदयं यथा ॥
श्रावणस्यासिते पक्षे नक्षत्रेऽभिजिति प्रभुः।
प्रतिपद्य हि पूर्वाह्णे शासनार्थमुदाहरत् ॥

इस प्रकार विहार राज्यके अन्तर्गत राजगृह नगरके समीप विपुलाचलगिरि ही वह पवित्र और महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है जहाँ भगवान् महावीरका दिव्य शासन प्रारम्भ हुआ। इस पर्वतपर पहलेसे ही अनेक जैन-मन्दिर हैं, और कोई २५-३० वर्ष पूर्व यहाँ वीर-शासन स्मारक भी स्थापित किया गया था। तबसे वीर-शासन-जयन्ती भी श्रावण कृष्णा प्रतिपदाको मनायी जाती है। तथापि उक्त स्मारक और पवित्र दिनको अभीतक वह देशव्यापी प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं हुई जो उनके ऐतिहासिक महत्त्वके अनुरूप हो। इस हेतु प्रयास किये जाने की आवश्यकता है, क्योंकि यही वह स्थल है जहाँ न केवल भगवान्‌का धर्म-शासन प्रारम्भ हुआ था, किन्तु उस समयके सुप्रसिद्ध वेद-विज्ञासा इन्द्रभूति गौतमने आकर भगवान्‌का नायकत्व स्वीकार किया और वे भगवान्‌के प्रथम गणधर बने। यहीं उन्होंने भगवान्‌की दिव्यध्वनिको अंगों और पूर्वोंके रूपमें विभाजित कर उन्हें ग्रन्थारूढ़ किया। यहीं मगधनरेश श्रेणिक बिम्बसारने भगवान्‌का उपदेश सुना और गौतम गणधरसे धर्म-चर्चा करके जैन-पुराणों और कथानकोंकी रचनाकी नींव डाली। यहीं श्रेणिकने ऐसा पुण्यबन्ध किया जिससे उनका अगले मानव जन्ममें महापद्म नामक तीर्थंकर बनना निश्चित हो गया।

१२. महावीरनिर्वाण-क्षेत्र

ऋजुकूला नदीके तटपर केवलज्ञान प्राप्त कर तथा विपुलाचलपर अपनी दिव्यध्वनि द्वारा जैन-धर्मका उपदेश देकर भगवान् महावीरने ३० वर्ष तक देश-के विविध भागोंमें विहार करते हुए धर्मप्रचार किया। तत्पश्चात् वे पावापुरमें आये और वहाँ अनेक सरोवरोंसे युक्त वनमें एक विशुद्ध शिलापर विराजमान हुए। दो दिन तक उन्होंने विहार नहीं किया, और शुक्लध्यानमें तल्लीन रहकर कार्तिक कृष्णा चतुर्दशीकी रात्रिके अन्तिम भागमें जब चन्द्र स्वाति नक्षत्रमें था तब उन्होंने शरीर परित्याग कर सिद्ध-पद प्राप्त किया। प्रस्तुत ग्रन्थ (३,१) में यह बात इस प्रकार कही गयी है :

अंत-तित्थणाहु वि महि विहरिवि ।
जण-दुरियाइँ दुलंघइँ पहरिवि ॥
पावापुरवरु पत्तउ मणहरि ।
पव-तरु-पल्लवि घणि बहु-सरवरि ॥
संठिउ पविमल-रयण-सिलायलि ।
रायहंसु णावइ पंकय-दलि ॥
दोण्णि दियहँ पविहास मुएप्पिणु ।
णिव्वत्तिइ कत्तिइ तम-कसणि पक्ख चउद्दसि-वासरि ।
सुक्क-झाणु तिज्जउ झाएप्पिणु ॥
थिइ ससहरि दुहहरि साइवइ पच्छिमरयणिहि अवसरि ।

रिसिसहसेण समउ रयछिंदणु ॥
सिद्धउ जिणु सिद्धत्थहु णंदणु ।

ठीक यही वृत्तान्त उत्तरपुराण (६७,५०८ से ५१२) में इस प्रकार पाया जाता है :

इहान्त्य-तीर्थनाथोऽपि विहृत्य विषयान् बहून् ॥
क्रमात्पावापुरं प्राप्य मनोहर-वनान्तरे ।
बहूनां सरसां मध्ये महामणि-शिलातले ॥
स्थित्वा दिनद्वयं वीतविहारो वृद्धनिर्जरः ।
कृष्ण-कार्तिक-पक्षस्य चतुर्दश्यां निशात्यये ॥
स्वातियोगे तृतीयेद्ध-शुक्लध्यानपरायणः ।
कृतत्रियोग-संरोधः समुच्छिन्नक्रियं श्रितः ॥

हताघातिचतुष्कः सन्नशरीरो गुणात्मकः ।
गन्ता मुनिसहस्रेण निर्वाणं सर्ववाञ्छितम् ॥

इन उल्लेखोंपर-से स्पष्ट है कि भगवान् महावीरका निर्वाण पावापुरके समीप ऐसे वनमें हुआ था जिसमें आस-पास अनेक सरोवर थे। वर्तमानमें भगवान्का निर्वाण-क्षेत्र पटना जिलेके अन्तर्गत बिहार-शरीफके समीप वह स्थल माना जाता है जहाँ अब एक विशाल सरोवरके बीच भव्य जिनमन्दिर बना हुआ है, और इस तीर्थक्षेत्रकी व्यापक मान्यता है। दिगम्बर-श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदाय एकमतसे इसी स्थलको भगवान्की निर्वाण-भूमि स्वीकार करते हैं।

किन्तु इतिहासज्ञ विद्वान् इस स्थानको वास्तविक निर्वाण-भूमि स्वीकार करनेमें अनेक आपत्तियाँ देखते हैं। कल्पसूत्र तथा परिशिष्ट पर्वके अनुसार जिस पावामें भगवान्का निर्वाण हुआ था वह मल्ल नामक क्षत्रियों की राजधानी थी। ये मल्ल वैशालीके वज्जि व लिच्छवि संघमें प्रविष्ट थे, और मगधके एक सत्तात्मक राज्यसे उनका वैर था। अतएव गंगाके दक्षिणवर्ती प्रदेश जहाँ वर्तमान पावापुरी क्षेत्र है वहाँ उनके राज्य होने की कोई सम्भावना नहीं है। इसके अतिरिक्त बौद्ध ग्रन्थों जैसे—दीघ-निकाय, मज्झिम-निकाय आदिसे सिद्ध होता है कि पावाकी स्थिति शाक्य प्रदेशमें थी और वह वैशालीसे पश्चिमकी ओर कुशीनगरसे केवल दस-बारह मीलकी दूरी पर था। शाक्यप्रदेशके साम-गाम में जब भगवान् बुद्धका निवास था तभी उनके पास सन्देश पहुँचा था कि अभी अर्थात् एक ही दिन के भीतर पावामें भगवान् महावीरका निर्वाण हुआ है।

इस सम्बन्धके जो अनेक उल्लेख बौद्ध ग्रन्थोंमें आये हैं उनका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। इन सब बातोंपर विचार कर इतिहासज्ञ इस निर्णयपर पहुँचे हैं कि जिस पावापुरीके समीप भगवान्का निर्वाण हुआ था वह यथार्थतः उत्तर-प्रदेश के देवरिया जिलेमें व कुशीनगर के समीप वह पावा नामक ग्राम है जो आजकल सठियाँव (फाजिलनगर) कहलाता है और जहाँ बहुत-से प्राचीन खण्डहर व भग्नावशेष पाये जाते हैं। अतएव ऐतिहासिक दृष्टिसे इस स्थानको स्वीकार कर उसे भगवान् महावीरकी निर्वाण भूमिके योग्य तीर्थक्षेत्र बनाना चाहिए।[1]

---

१. निर्वाण भूमि-सम्बन्धी विस्तार पूर्वक विवेचन के लिए देखिए श्री कन्हैयालाल कृत 'पावा समीक्षा' (प्रकाशक—अशोक प्रकाशन, कटरा बाजार, छपरा, बिहार १९७२)। हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ दी इण्डियन पीपिल, खण्ड २। दि एज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ७ मल्ल।

१३. महावीर समकालीन ऐतिहासिक पुरुष

(क) वैशाली-नरेश चेटक

प्रस्तुत ग्रन्थकी सन्धि पाँचमें तथा संस्कृत उत्तरपुराण (पर्व ७५) में वैशाली के राजा चेटकका वृत्तान्त आया है। चेटकके विषयमें कहा गया है कि वे अति विख्यात, विनीत और परम आर्हत अर्थात् जिनधर्मावलम्बी थे। उनकी रानीका नाम सुभद्रादेवी था। उनके दस पुत्र हुए—धनदत्त, धनभद्र, उपेन्द्र, सुदत्त, सिंहभद्र, कुम्भोज, अकम्पन, पतंगत, प्रभंजन और प्रभास। इसके सिवाय इनके सात पुत्रियाँ भी थीं। सबसे बड़ी पुत्रीका नाम प्रियकारिणी था जिसका विवाह कुण्डपुर नरेश सिद्धार्थ से हुआ था और उन्हें ही भगवान् महावीरके माता-पिता बननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। दूसरी पुत्री थी मृगावती जिसका विवाह वत्सदेशकी राजधानी कौशाम्बीके सम्बन्धी राजा शतानीकके साथ हुआ। तीसरी पुत्री सुप्रभा दशार्ण देश (विदिशा जिला) की राजधानी हेमकक्षके राजा दशरथको ब्याही गयी। चौथी पुत्री प्रभावती कच्छ देशकी रोरुका नामक नगरीके राजा उदयनकी रानी हुई। यह अत्यन्त शीलव्रता होनेके कारण शीलवतीके नामसे भी प्रसिद्ध हुई। चेटककी पाँचवीं पुत्रीका नाम ज्येष्ठा था। उसकी याचना गन्धर्व देशके महीपुर नगरवर्ती राजा सात्यकिने की। किन्तु चेटक राजाने किसी कारण यह विवाह-सम्बन्ध उचित नहीं समझा। इसपर क्रुद्ध होकर राजा सात्यकिने चेटक राज्यपर आक्रमण किया। किन्तु वह युद्धमें हार गया और लज्जित होकर उसने दमवर नामक मुनिसे मुनिदीक्षा धारण कर ली। ज्येष्ठा और छठी पुत्री चेलनाका चित्रपट देखकर मगधराज श्रेणिक उनपर मोहित हो गये, और उनकी याचना उन्होंने चेटक नरेशसे की। किन्तु श्रेणिक इस समय आयुमें अधिक हो चुके थे, इस कारण चेटकने उनसे अपनी पुत्रियोंका विवाह स्वीकार नहीं किया। इससे राजा श्रेणिकको बहुत दुःख हुआ। इसकी चर्चा उनके मन्त्रियोंने ज्येष्ठ राजकुमार अभयकुमारसे की। अभयकुमारने एक व्यापारीका वेष धारण कर वैशालीके राजभवनमें प्रवेश किया, और उक्त दोनों कुमारियोंको राजा श्रेणिकका चित्रपट दिखाकर उनपर मोहित कर लिया। उसने सुरंग मार्गसे दोनोंका अपहरण करनेका प्रयत्न किया। चेलनाने आभूषण लानेके बहाने ज्येष्ठाको तो अपने निवास स्थानकी ओर भेज दिया और स्वयं अभयकुमारके साथ निकलकर राजगृह आ गयी, तथा उसका श्रेणिक राजा से विवाह हो गया। उधर जब ज्येष्ठाने देखा कि उसकी बहन उसे धोखा देकर छोड़ गयी तो उसे बड़ी विरक्ति हुई और उसने एक आर्यिकाके पास जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। चेटककी सातवीं पुत्रीका नाम चन्दना

था। एक बार जब वह अपने परिजनोंके साथ उपवनमें क्रीड़ा कर रही थी तब मनोवेग नामक एक विद्याधरने उसे देखा और वह उसके सौन्दर्य पर मोहित हो गया। उसने छिपकर चन्दनाका अपहरण कर लिया। किन्तु अपनी पत्नी मनोवेगाके कोपसे भयभीत होकर उसने चन्दनाको इरावती नदीके दक्षिण तटवर्ती भूतरमण नामक वनमें छोड़ दिया। वहाँ उसकी भेंट एक श्यामांक नामक भीलसे हुई। वह उसे सम्मानपूर्वक अपने सिंह नामक भीलराजके पास ले गया। भीलराजने उसे कौशाम्बीके एक धनी व्यापारी सेठ ऋषभसेनके कर्मचारी सिंहवीरको सौंप दी, और वह उसे अपने सेठके पास ले आया। सेठकी पत्नी भद्राने ईर्ष्यावश अपनी बन्दिनी दासी बनाकर रखा। इसी अवस्थामें एक दिन जब उस नगरमें भगवान् महावीरका आगमन हुआ, तब चन्दनाने बड़ी भक्तिसे उन्हें आहार कराया। इस प्रसंगसे कौशाम्बी नगरमें चन्दनाकी ख्याति हुई, और उसके विषयमें उसकी बड़ी बहन रानी मृगावतीको भी खबर लगी। वह अपने पुत्र राजकुमार उदयनके साथ सेठके घर आयी, और चन्दनाको अपने साथ ले गयी। फिर चन्दनाने वैराग्य भावसे महावीर भगवान्की शरणमें जाकर दीक्षा ग्रहण कर ली, और अन्ततः वही भगवान्के आर्यिका-संघकी अग्रणी हुई।

वैशालीनरेश चेटक तथा उनके गृह-परिवार व सम्पत्तिका इतना वर्णन जैन-पुराणोंमें पाया जाता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि वैशालीके नरेश चेटक महावीरके नाना थे, मगधनरेश श्रेणिक तथा कौशाम्बीके राजा शतानीक उनके मातृ-स्वसा-पति (मौसिया) थे, एवं कौशाम्बीनरेश शतानीकके पुत्र उनके मातृ-स्वसापुत्र (मौसयाते भाई) थे।

(ख) मगध-नरेश श्रेणिक-बिम्बिसार

मगध देशके राजा श्रेणिकका भगवान् महावीरसे दीर्घकालीन और घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है। बहुत-सी जैन पौराणिक परम्परा तो श्रेणिकके प्रश्न और महावीर अथवा उनके प्रमुख गणधर इन्द्रभूतिके उत्तरसे ही प्रारम्भ होती है। उनका बहुत-सा वृत्तान्त प्रस्तुत ग्रन्थ की सन्धि छहसे ग्यारह तक पाया जायेगा। इस नरेशकी ऐतिहासिकतामें कहीं कोई सन्देह नहीं है। जैन ग्रन्थोंके अतिरिक्त बौद्ध साहित्यमें एवं वैदिक परम्पराके पुराणोंमें भी इनका वृत्तान्त व उल्लेख पाया जाता है। दिगम्बर जैन परम्परामें तो उनका उल्लेख केवल श्रेणिक नामसे पाया जाता है, किन्तु उन्हें भिम्भा अर्थात् भेरी बजानेकी भी अभिरुचि थी (देखिए सन्धि ७,२) और इस कारण उनका नाम भिम्भसार अथवा भम्भसार भी प्रसिद्ध हुआ पाया जाता है। श्वेताम्बर ग्रन्थोंमें अधिकतर इसी नामसे इनका उल्लेख

किया गया है। इसी शब्दका अपभ्रंश रूप बिम्बिसार या बिम्बसार प्रतीत होता है, और बौद्ध परम्परामें श्रेणिकके साथ-साथ अथवा पृथक् रूपसे यही नाम उल्लिखित हुआ है। बौद्ध ग्रन्थ उदान अट्ठकथा १०४ के अनुसार बिम्बि सुवर्णका [illegible] नाम है, और राजाका शरीर [illegible] समवर्णका होनेके कारण उसका बिम्बिसार नाम पड़ा। एक तिब्बतीय परम्परा ऐसी भी है कि इस राजाकी माताका नाम बिम्बि था और इसी कारण उसका नाम बिम्बिसार पड़ा। किन्तु जान पड़ता है कि ये व्युत्पत्तियाँ उक्त नामपर-से कल्पित की गयी हैं। श्रेणिक नामकी भी अनेक प्रकारसे व्युत्पत्ति की गयी है। हेमचन्द्र कृत अभिधान-चिन्तामणिमें 'श्रेणीः कारयति श्रेणिको मगधेश्वरः' इस प्रकार जो श्रेणियोंकी स्थापना करे वह श्रेणिक, यह व्युत्पत्ति बतलायी गयी है। बौद्ध परम्पराके एक विनय पिटककी प्रतिमें यह भी कहा पाया जाता है कि चूँकि बिम्बिसारको उसके पिताने अठारह श्रेणियोंमें अवसरित किया था, अर्थात् इनका स्वामी बनाया था, इस कारणसे उसकी श्रेणिक नामसे प्रसिद्धि हुई। अर्द्धमागधी जम्बूद्वीप पण्णत्तिमें ९ नारू और ९ कारू ऐसी अठारह श्रेणियोंके नाम भी गिनाये गये हैं। नौ नारू हैं—कुम्हार, पटवा, स्वर्णकार, सूतकार, गन्धर्व (संगीतकार), कासवग्ग, मालाकार, कच्छकार और तम्बूलि। तथा नौ कारू हैं—चर्मकार, यन्त्रपीडक, गंछियाँ, छिम्पी, कंसार, सेवक, ग्वाल, भिल्ल और धीवर। यह भी सम्भव है कि प्राकृत ग्रन्थोंमें इनका नाम जो 'सेनीय' पाया जाता है उसका अभिप्राय सैनिक या सेनापतिसे रहा हो और उसका संस्कृत रूपान्तर भ्रमवश श्रेणिक हो गया हो[१]।

प्रस्तुत ग्रन्थके अनुसार मगध देश राजगृह नगरके राजा प्रश्रेणिक या उपश्रेणिकको एक रानी चिलातदेवी (किरातदेवी) से चिलातपुत्र या किरातपुत्र नामक कुमार उत्पन्न हुआ। उसने उज्जैनीके राजा प्रद्योतको छलसे बन्दी बनाकर अपने पिताके सम्मुख उपस्थित कर दिया। इससे पूर्व उद्योतके विरुद्ध राजाने जो औदायनको भेजा था उसे उद्योतने परास्त कर अपना बन्दी बना लिया था। चिलातपुत्रकी सफलतासे उसके पिताको बहुत प्रसन्नता हुई और उन्होंने उसे ही अपना उत्तराधिकारी बनाकर उसका राज्याभिषेक कर दिया। किन्तु वह राज्यकार्यमें सफल नहीं हुआ और अनीतिपर चलने लगा। अतः मन्त्रियों और सामन्तोंने निर्वासित राजकुमार श्रेणिकको कांचीपुरसे बुलवाया। श्रेणिकने आकर किरातपुत्रको पराजित कर राज्यसे निकाल दिया। चिलातपुत्र वनमें चला गया और वहाँ ठगों और लुटेरोंका नायक बन गया। तब पुनः एक बार श्रेणिकने उसे

---

१. मुनि नगराज : आगम और त्रिपिटक, पृष्ठ ३३४।

परास्त किया। अन्ततः चिलातपुत्रने विरक्त होकर मुनि-दीक्षा धारण कर ली। इसी अवस्थामें वह एक शृगालीका भक्ष्य बनकर स्वर्गवासी हुआ।

श्रेणिकका जन्म उपश्रेणिककी दूसरी पत्नी सुप्रभादेवीसे हुआ था। वह बहुत विलक्षण-बुद्धि था। पिता द्वारा जो राज्यकी योग्यता जानने हेतु राजकुमारोंकी परीक्षा की गयी उसमें श्रेणिक ही सफल हुआ। तथापि राजकुमारोंमें वैर उत्पन्न होनेके भयसे उसने श्रेणिकको राज्यसे निर्वासित कर दिया। पहले तो श्रेणिक नन्दग्राममें पहुँचा, और फिर वहाँसे भी परिभ्रमण करता हुआ तथा अपनी बुद्धि और साहसका चमत्कार दिखाता हुआ कांचीपुरमें पहुँच गया। मगधमें राजा चिलातपुत्रके अन्यायसे त्रस्त होकर मन्त्रियोंने श्रेणिकको आमन्त्रित किया और उसे मगधका राजा बनाया।

एक दिन राजा अपनी राजधानीके निकट वनमें आखेटके लिए गया। वहाँ उसने एक मुनिको ध्यानारूढ़ देखकर उसे एक अपशकुन समझा और क्रुद्ध होकर उनपर अपने शिकारी कुत्तोंको छोड़ दिया। किन्तु वे कुत्ते भी मुनिके प्रभावसे शान्त हो गये और राजाके बाण भी उन्हें पुष्पके समान कोमल होकर लगे। तब राजाने अपना क्रोध निकालनेके लिए एक मृत सर्प मुनिके गलेमें डाल दिया। इस घोर पापसे श्रेणिकको सप्तम नरकका आयु-बन्ध हो गया। किन्तु जब उन्होंने देखा कि उनके द्वारा इतने उपसर्ग किये जानेपर भी उन मुनिराजके लेशमात्र भी राग-द्वेष उत्पन्न नहीं हुआ, तब उनके मनोगत भावोंमें परिवर्तन हो गया। जब मुनिने देखा कि राजाका मन शान्त हो गया है, तब उन्होंने अपनी मधुर वाणीसे उन्हें आशीर्वाद दिया और धर्मोपदेश भी प्रदान किया। बस, यहीं राजा श्रेणिकका मिथ्यात्व भाव दूर हो गया और उन्हें क्षायिक सम्यक्त्वकी प्राप्ति हो गयी। वह मुनिराजके चरणोंमें नमस्कार कर प्रसन्नतासे घर लौटे।

एक दिन राजा श्रेणिकको समाचार मिला कि विपुलाचल पर्वतपर भगवान् महावीरका आगमन हुआ है। इसपर राजा भक्तिपूर्वक वहाँ गया और उसने भगवान्‌की वन्दना-स्तुति की। इस धर्म-भावनाके प्रभावसे उनके सम्यक्त्वकी परिपुष्टि होकर सप्तम नरककी आयु घटकर प्रथम नरककी शेष रही, और उसे तीर्थंकर नामकर्मका बन्ध भी हो गया। इस अवसरपर राजा श्रेणिकने गौतम गणधरसे पूछा कि हे भगवन्, यद्यपि मेरे मनमें जैन मतके प्रति इतनी महान् श्रद्धा हो गयी है, तथापि व्रत-ग्रहण करनेकी मेरी प्रवृत्ति क्यों नहीं होती? इसका गणधरने उत्तर दिया कि पहले तुम्हारी भोगोंमें अत्यन्त आसक्ति रही है व गाढ़ मिथ्यात्वका उदय रहा है। तुमने दुश्चरित्र भी किया है और महान् आरम्भ भी। इससे जो तीव्र पाप उत्पन्न हुआ उससे तुम्हारी नरककी आयु बँध चुकी है।

देवायुको छोड़कर अन्य किसी भी गतिकी आयु जिसने बाँध ली है उसमें व्रत-ग्रहण करनेकी योग्यता नहीं रहती। किन्तु ऐसा जीव सम्यग्दर्शन धारण कर सकता है। यही कारण है कि तुम सम्यक्त्वी तो हो गये, किन्तु व्रत-ग्रहण नहीं कर पा रहे।

सर्वं निधाय तच्चित्ते श्रद्धाभून्महती मते।
जैने कुतस्तथापि स्यान्न मे व्रत-परिग्रहः॥
इत्यनुश्रेणिकप्रश्नादवादीद् गणनायकः।
भोग-संजननाद्गाढ-मिथ्यात्वानुभवोदयात्॥
दुश्चरित्रान्महारम्भात्संचित्यैनां निकाचितम्।
नारकं बद्धवानायुस्त्वं प्रागेवात्र जन्मनि॥
बद्धदेवायुषोऽन्यायुर्नाङ्गी स्वीकुरुते व्रतम्।
श्रद्धानं तु समाधत्ते तस्मात्त्वं नाग्रहीर्व्रतम्॥

(उत्तरपुराण ७४, ४३३–३३)

इसी समय गौतम गणधर ने राजा श्रेणिक को यह भी बतला दिया कि भगवान् महावीर के निर्वाण होने पर जब चतुर्थकाल की अवधि केवल तीन वर्ष, आठ माह और पन्द्रह दिन शेष रह जायेगी तभी उसकी मृत्यु होगी। श्रेणिक इतना दृढ़ सम्यक्त्वी हो गया था कि सुरेन्द्रने भी उसकी प्रशंसा की। किन्तु इसपर एक देवको विश्वास नहीं हुआ और वह राजाकी परीक्षा करने आया। जब राजा एक मार्गसे कहीं जा रहा था तब उस देवने मुनिका भेष बनाया और वह जाल हाथमें लेकर मछलियाँ पकड़ने लगा। राजाने आकर मुनिकी वन्दना की, और प्रार्थना की कि मैं आपका दास उपस्थित हूँ तब आप क्यों यह अधर्म-कार्य कर रहे हैं। यदि मछलियोंकी आवश्यकता ही है तो मैं मछलियाँ पकड़ देता हूँ। देवने कहा, नहीं-नहीं, अब मुझे इससे अधिक मछलियोंकी आवश्यकता नहीं। यह वृत्तान्त नगरमें फैल गया, और लोग जैन-धर्मकी निन्दा करने लगे। तब राजा श्रेणिकने एक दृष्टान्त उपस्थित किया। उन्होंने अपनी सभाके राजपुत्रों-को जीवनवृत्ति सम्बन्धी लेख अपनी मुद्रासे मुद्रित कर और उसे मलावलिप्त कर प्रदान किया। उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से इस लेखको अपने मस्तकपर चढ़ाकर स्वीकार किया। तब राजाने उनसे पूछा कि इन मलिन लेखों को तुमने अपने मस्तकपर क्यों चढ़ाया? उन्होंने उत्तर दिया कि जिस प्रकार सचेतन जीव मलिन शरीरसे लिप्त होते हुए भी वन्दनीय है, उसी प्रकार आपका यह लेख मलिन होते हुए भी हमारे लिए पूज्य है। तब राजाने हँसकर उन्हें बतलाया कि

इसी प्रकार धर्म-मुद्राके धारक मुनियों में यदि कोई दोष भी हो, तो उनसे घृणा नहीं, किन्तु उनकी विनय ही करना चाहिए, और विनम्रतासे उन्हें दोषोंसे मुक्त कराना चाहिए। राजाकी ऐसी धर्म-श्रद्धाको प्रत्यक्ष देखकर वह देव बहुत प्रसन्न हुआ और राजाको एक उत्तम हार देकर स्वर्गलोकको चला गया। यह कथानक इस बातका प्रमाण है कि जबसे श्रेणिकने जैन-धर्म स्वीकार किया तबसे उनकी धार्मिक श्रद्धा उत्तरोत्तर दृढ़ होती गयी और वे उससे कभी विचलित नहीं हुए।

(ग) श्रेणिक-सुत अभयकुमार

श्रेणिक जब राजकुमार ही थे और राज्यसे निर्वासित होकर चिलातपुत्रके राज्यकालमें कांचीपुरमें निवास कर रहे थे तब उनका विवाह वहाँके एक द्विजकी कन्या अभयमतीसे हो गया था। उससे उनके अभयकुमार नामका पुत्र उत्पन्न हुआ जो अत्यन्त विलक्षण-बुद्धि था। उसने ही उपाय करके अपने पिताका विवाह उनकी इच्छानुसार चेलनादेवीसे कराया। वह भी श्रेणिकके साथ-साथ भगवान् महावीरके समवसरणमें गया था, और न केवल दृढ़-सम्यक्त्वी, किन्तु धर्मका अच्छा ज्ञाता बन गया था। यहाँतक कि स्वयं राजा श्रेणिकने उससे भी धर्मका स्वरूप समझनेका प्रयत्न किया था। अन्ततः अभयकुमारने भी मुनि-दीक्षा ग्रहण कर ली, और वे मोक्षगामी हुए। (उत्तरपुराण ७४, ५२६–२७ आदि)

(घ) श्रेणिक-सुत वारिषेण

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, राजा श्रेणिकका चेलनादेवीसे विवाह उनकी ढलती हुई अवस्थामें उनके ज्येष्ठ पुत्र अभयकुमारके प्रयत्नसे ही हुआ था। चेलनाने वारिषेण नामक पुत्रको जन्म दिया। वह बाल्यावस्था मे ही धार्मिक प्रकृतिका था, और उत्तम श्रावकोंके नियमानुसार श्मशानमें जाकर प्रतिमायोग किया करता था। एक बार विद्युच्चर नामक अंजनसिद्ध चोरने अपनी प्रेयसी गणिकासुन्दरीको प्रसन्न करनेके लिए राजभवनमें प्रविष्ट होकर चेलनादेवीके हारका अपहरण किया। किन्तु उसे वह अपनी प्रियाके पास तक नहीं ले जा सका। राजपुरुष उस चन्द्रहास हारकी चमकको देखते हुए उसका पीछा करने लगे। यह बात उस चोरने जान ली, और वह श्मशानमें ध्यानारूढ़ वारिषेण कुमारके चरणोंमें उस हारको फेंककर भाग गया। राज-सेवकोंने इसकी सूचना राजाको दी। राजाने वारिषेणको ही चोर जानकर क्रोधवश उसे मार डालनेकी आज्ञा दे दी। किन्तु वारिषेणके धर्म-प्रभावसे उसपर राजपुरुषोंके अस्त्र-शस्त्र नहीं चले। उसका वह दिव्य प्रभाव देखकर राजाने उन्हें मनाकर राज-

महलमें लानेका प्रयत्न किया, किन्तु वे नहीं आये और महाव्रती मुनि हो गये। उन्होंने पलासखेड़ नामक ग्राममें भिक्षा-निमित्त जाकर अपने एक बालसखाका भी सम्बोधन किया और उसे भी मुनि बना लिया। एक बार उसका मन पुनः अपनी पत्नीकी ओर चलायमान हुआ। किन्तु वारिषेणने उसे अपनी माता चेलनाके महलमें ले जाकर अपनी निरासक्ति भावनाके द्वारा पुनः मुनिव्रतमें दृढ़ कर दिया।

(ङ) श्रेणिक-सुत गजकुमार

राजा श्रेणिककी एक अन्य पत्नी धनश्री नामक थी। उसे जब पांच मासका गर्भ था तब उसे यह दोहला उत्पन्न हुआ कि आकाश मेघाच्छादित हो, मन्द-मन्द वृष्टि हो रही हो, तब वह अपने पतिके साथ हाथीपर बैठकर परिजनोंके सहित महोत्सवके साथ वनमें जाकर क्रीडा करे। उस समय वर्षाकाल न होते हुए भी अभयकुमारने अपने एक विद्याधर मित्रकी सहायतासे अपनी विमाताका यह दोहला सम्पन्न कराया। यथासमय रानी धनश्रीने गजकुमार नामक पुत्रको जन्म दिया। जब वह युवक हुआ तब एक दिन उसने भगवान् महावीर की शरणमें जाकर धर्मोपदेश सुना और दीक्षा ग्रहण कर ली। एक बार गजकुमार मुनि कलिंग देशमें जा पहुँचे और वहांकी राजधानी दन्तीपुरकी पश्चिम दिशामें एक शिलापर विराजमान होकर आतापन योग करने लगे। वहांके राजाको ऐसे योगका कोई ज्ञान नहीं था। अतः उसने अपने मन्त्रीसे पूछा कि यह पुरुष ऐसा आताप क्यों सह रहा है? उनका मन्त्री बुद्धदास जैन-धर्म-विरोधी था। अतः उसने राजाको सुझाया कि इस पुरुषको वात रोग हो गया है और वह अपने शरीरमें गरमी लानेके लिए ऐसा कर रहा है। राजाने करुणाभावसे पूछा, इसकी इस व्याधिको कैसे दूर किया जाये? मन्त्रीने उपाय बताया कि जब यह अनाथ पुरुष नगरमें भिक्षा मांगने जाये, तब उसके बैठनेकी शिलाको अग्निसे खूब तपा दिया जाये जिससे उसके ताप द्वारा उसपर बैठनेवालेकी प्रभंजन वायु उपशान्त हो जायेगी। राजाकी आज्ञासे वैसा ही किया गया। परिणाम यह हुआ कि जब गजकुमार मुनि भिक्षासे लौटकर उस शिलापर विराजमान हुए तब वे उसकी तीव्र तापके उपसर्गको सहकर मोक्षगामी हो गये। पश्चात् वहाँ देवोंका आगमन हुआ और वह मन्त्री, राजा तथा अन्य सहस्रों जन धर्ममें दीक्षित हुए।

(च) कौशाम्बीनरेश शतानीक व उदयन तथा उज्जैनीनृप चण्डप्रद्योत

चन्दनाके वृत्तान्तोंमें आया है कि वैशालीनरेश चेटककी सात पुत्रियोंमें-से एक मृगावती कौशाम्बीके सोमवंशी नरेश शतानीकसे ब्याही गयी थी। यह

राजधानी इलाहाबादसे कोई ३५ मील दक्षिण-पश्चिमकी ओर वहीं थी जहाँ अब कोसम नामका ग्राम है। जब महावीर कौशाम्बी आये और चन्दनाने उन्हें आहार दिया, तब रानी मृगावतीने भी आकर अपनी उस कनिष्ठ भगिनीका अभिनन्दन किया। शतानीक के पुत्र थे उदयन थे जिनका विवाह उज्जैनीनरेश चण्डप्रद्योतकी पुत्री वासवदत्तासे हुआ था। बौद्ध साहित्यिक परम्परानुसार उदयनका और बुद्धका जन्म एक ही दिन हुआ था। तथा एक सुदृढ़ जैन परम्परा यह है कि जिस रात्रि प्रद्योतके मरणके पश्चात् उनके पुत्र पालकका राज्याभिषेक हुआ उसी रात्रि महावीरका निर्वाण हुआ था। इस प्रकार ये उल्लेख उक्त दोनों महापुरुषोंके समसामयिकत्व तथा तात्कालिक राजनैतिक स्थितियोंपर उपयोगी प्रकाश डालते हैं।

१४. महावीर-जीवनचरित्र विषयक साहित्य का विकास

(छ) प्राकृतमें महावीर-साहित्य

भगवान् महावीरका निर्वाण ई. सन् ५२७ वर्ष पूर्व हुआ और उसी समयसे उनके जीवन-चरित्र सम्बन्धी जानकारी संगृहीत करना आरम्भ हो गया। भगवान्के प्रमुख शिष्य इन्द्रभूति गौतम थे जो धवलाके रचयिता वीरसेनके अनुसार चारों वेदों और छहों अंगोंके ज्ञाता शीलवान् उत्तम ब्राह्मण थे। ऐसे विद्वान् शिष्य-के लिए स्वाभाविक था कि वे अपने गुरुके जीवन और उपदेशोंको सुव्यवस्थित रूपसे संगृहीत करें। उन्होंने यह सब सामग्री बारह अंगोंमें संकलित की जिसे द्वादश गणि-पिटक भी कहा गया है। इनके बारहवें अंग दृष्टिवादमें एक अधिकार प्रथमानुयोग भी था जिसमें समस्त तीर्थंकरों व चक्रवर्तियों आदि महापुरुषोंकी वंशावलियोंका पौराणिक विवरण संग्रह किया गया जिसमें तीर्थंकर महावीर और उनके नाथ या ज्ञातृवंशका इतिहास भी सम्मिलित था।

दुर्भाग्यतः इन्द्रभूति गौतम द्वारा संगृहीत वह साहित्य अब अप्राप्य है। किन्तु उसका संक्षिप्त विवरण समस्त उपलभ्य अर्द्धमागधी साहित्यमें बिखरा हुआ पाया जाता है। समवायांग नामक चतुर्थ अंगमें चौबीसों तीर्थंकरोंके माता-पिता, जन्म-स्थान, प्रव्रज्या-स्थान, शिष्य-वर्ग, आहार-दाताओं आदिका परिचय कराया गया है। प्रथम श्रुतांग आचारांगमें महावीरकी तपस्याका बहुत मार्मिक वर्णन पाया जाता है। पाँचवें श्रुतांग व्याख्या-प्रज्ञप्तिमें जो सहस्रों प्रश्नोत्तर महावीर और गौतमके बीच हुए ग्रथित हैं उनमें उनके जीवन व तात्कालिक अन्य घटनाओंकी अनेक झलकें मिलती हैं। उनके समयमें पार्श्वापत्यों अर्थात् पार्श्वनाथके अनु-यायियोंका बाहुल्य था तथा आजीवक सम्प्रदायके संस्थापक मंखलि-गोशाल उनके

सम-सामयिक थे। उसी कालमें मगध और वैशालीके राज्योंमें बड़ा भारी संग्राम हुआ था जिसमें महाशिला-कंटक वे रथ-मुसल नामक यन्त्र-चालित शस्त्रोंका उपयोग किया गया इत्यादि। सातवें अंग उपासकाध्ययनमें महावीरके जीवनसे सम्बद्ध वैशाली ज्ञातृ-षण्डवन कोल्लाग सन्निवेश, कर्मारग्राम, वाणिज्यग्राम आदि स्थानोंके ऐसे उल्लेख प्राप्त हैं जिनसे उनके स्थान-निर्णयमें सहायता मिलती है। नवें श्रुतांग अनुत्तरौपपातिकमें तीर्थंकरके सम-सामयिक मगध-नरेश श्रेणिककी चेलना, धारिणी व नन्दा नामक रानियों तथा उनके तेवीस राजकुमारोंके दीक्षित होनेके उल्लेख हैं। मूलसूत्र उत्तराध्ययन व दशवैकालिकमें महावीरके मूल दार्शनिक, नैतिक व आचारसम्बन्धी विचारोंका विस्तारसे परिचय प्राप्त होता है। कल्पसूत्रमें महावीरका व्यवस्थित रीतिसे जीवन-चरित्र मिलता है। यह समस्त साहित्य उत्तरकालीन अर्द्धमागधी भाषामें है।

शौरसेनी प्राकृतमें यतिवृषभ कृत तिलोय-पण्णत्ति (त्रिलोक-प्रज्ञप्ति) ग्रन्थ बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि उसमें प्राकृत गाथाओंमें हमें तीर्थंकरों व अन्य शलाका-पुरुषोंके चरित्र नामावली-निबद्ध प्राप्त होते हैं। इनमें महावीरके जीवन-विषयक प्रायः समस्त बातोंकी जानकारी संक्षेपमें स्मरण रखने योग्य रीतिसे मिल जाती है। (सोलापुर, १९५२)

इसी नामावली-निबद्ध सामग्रीके आधारपर महाराष्ट्री प्राकृतके आदि महाकाव्य पउम-चरियंमें महावीरका संक्षिप्त जीवन-चरित्र, रामचरित्रकी प्रस्तावनाके रूपमें प्रस्तुत किया गया है (भावनगर, १९१४)। संघदास और धर्मदास गणी कृत वसुदेव-हिण्डी (४–५वीं शती) प्राकृत कथा साहित्यका बहुत ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें भी अनेक तीर्थंकरोंके जीवन-चरित्र प्रसंगवश आये हैं जिनमें वर्धमान स्वामीका भी है (भावनगर, १९३०-३१)। शीलांक कृत चउपन्न-महापुरिस-चरियं (वि. सं. ९२५) में भी महावीरका जीवन-चरित्र प्राकृत गद्यमें वर्णित है (वाराणसी १९६१)।

भद्रेश्वर कृत कहावलि (१२वीं शती) में सभी त्रेसठ शलाकापुरुषोंके चरित्र सरल प्राकृत गद्यमें वर्णित हैं (गा. ओ. सी.)। पूर्णतः स्वतन्त्र प्रबन्ध रूपसे महावीरका चरित्र गुणचन्द्र सूरि द्वारा महावीर-चरियंमें वर्णित है (वि. सं. ११३९)। इसमें आठ प्रस्ताव हैं जिनमें प्रथम चारमें महावीरके मरीचि आदि पूर्व भवोंका विस्तारसे वर्णन है (बम्बई १९२९)। गुणचन्द्रके ही सम-सामयिक देवेन्द्र अपरनाम नेमिचन्द्र सूरिने भी पूर्णतः प्राकृत पद्यबद्ध महावीर-चरियंकी रचना की (वि. सं. ११४१)। इसमें मरीचिसे लेकर महावीर तक छब्बीस भवोंका वर्णन है जिसकी कुल पद्य-संख्या लगभग २४०० है (भावनगर, वि. सं.

१९७३)। इनसे कुछ ही समय पश्चात् (वि. सं. ११६८ के लगभग) देवभद्र गणीने भी महावीर-चरियंकी रचना की (अहमदाबाद, १९४५)।

(ज) संस्कृतमें महावीर-साहित्य

तत्त्वार्थसूत्र-जैसी सैद्धान्तिक रचनाओंको छोड़ जैन साहित्य सृजनमें संस्कृत भाषाका उपयोग अपेक्षाकृत बहुत पीछे किया गया। (हम जानते हैं कि सिद्धसेन दिवाकरने अपनी पाँच स्तुतियाँ भगवान् महावीरको ही उद्देशित करके लिखी हैं। आरम्भकालीन काव्यशैलीमें लिखित जटिल या जटाचार्यके 'वरांगचरित' तथा रविषेणके 'पद्मपुराण' (ई. स. ६७६) की ओर संस्कृत जैन साहित्यमें हम निर्देश कर सकते हैं। ये दोनों 'कुवलयमाला' (ईसाके ७७९) से भी पूर्व-कालीन हैं।) तीर्थंकरोंके जीवन-चरित्र पर महापुराण नामक सर्वांग-सम्पूर्ण रचना जिनसेन और उनके शिष्य गुणभद्र द्वारा शक सं. ८२० के लगभग समाप्त की गयी थी। इसके प्रथम ४७ पर्व आदिपुराणके नामसे प्रसिद्ध हैं जिनमें प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव और उनके पुत्र प्रथम चक्रवर्ती भरतका जीवन-चरित्र वर्णित है। ४८ से ७६ तकके पर्व उत्तरपुराण कहलाता है जिसकी पूरी रचना गुणभद्र-कृत है। और उसमें शेष तेवीस तीर्थंकरों व अन्य शलाकापुरुषोंके जीवनवृत्त हैं। इनमें तीर्थंकर महावीरका चरित्र अन्तिम तीन सर्गोंमें (७४ से ७६ तक) सुन्दर पद्योंमें है जिनकी कुल पद्य-संख्या ५४९ + ६९१ + ५७८ = १८१८ है (वाराणसी, १९५४)। लगभग पौने तीन सौ वर्ष पश्चात् ऐसे ही एक विशाल त्रिषष्टि-शलाका-पुरुष-चरितकी रचना हेमचन्द्राचार्यने १० पर्वोंमें की जिसका अन्तिम पर्व महावीर-चरित्रविषयक है (भावनगर, १९१३)। एक महापुरुष-चरित स्वोपज्ञ टीका सहित मेरुतुंग द्वारा रचा गया जिसके पाँच सर्गोंमें क्रमशः ऋषभ, शान्ति, नेमि, पार्श्व और महावीरके चरित्र वर्णित हैं। यह रचना लगभग १३०० ई. की है। काव्यकी दृष्टिसे शक सं. ९१० में असग द्वारा १८ सर्गों में रचा गया वर्धमान चरित है (सोलापुर १९३१)। किन्तु यहाँ भी प्रथम सोलह सर्गोंमें महावीरके पूर्व भवोंका वर्णन है और उनका जीवन-वृत्त अन्तिम दो सर्गोंमें। सकलकीर्ति-कृत वर्धमान पुराणमें १९ सर्ग हैं और उसकी रचना वि. सं. १५१८ में हुई। पद्मनन्दि, केशव और वाणीवल्लभ द्वारा भी संस्कृतमें महावीर चरित्र लिखे जानेके उल्लेख पाये जाते हैं।

(झ) महावीर-जीवनपर अपभ्रंश साहित्य

समस्त तीर्थंकरों व अन्य शलाकापुरुषोंके चरित्र पर अपभ्रंशमें विशाल और श्रेष्ठ तथा सर्व काव्य-गुणोंसे सम्पन्न रचना पुष्पदन्त कृत महापुराण है (शक सं०

हैं। उनका प्राचीनतम बौद्ध साहित्यसे भी मेल खाता है। जिस प्रकार बौद्ध साहित्य त्रिपिटक कहलाता है उसी प्रकार यह जैन साहित्य गणिपिटकके नामसे उल्लिखित पाया जाता है।

यह समस्त साहित्य अंगप्रविष्ट कहा गया है। इसके अतिरिक्त मुनियोंके आचार व क्रियाकलापका विस्तारसे वर्णन अंगबाह्य नामक चौदह प्रकारकी रचनाओंमें पाया जाता है जो इस प्रकार हैं—

१. सामायिक, २. चतुर्विंशतिस्तव, ३. वन्दना ४ प्रतिक्रमण, ५. वैनयिक, ६. कृतिकर्म, ७. दशवैकालिक, ८. उत्तराध्ययन, ९. कल्पव्यवहार, १०. कल्पाकल्प, ११. महाकल्प, १२. पुण्डरीक, १३. महापुण्डरीक, १४. निषिद्धिका।

इन नामोंसे ही स्पष्ट है कि इन रचनाओंका विषय धार्मिक साधनाओं और विशेषतः मुनियोंकी क्रियाओंसे सम्बन्ध रखता है। यद्यपि ये चौदह रचनाएँ अपने प्राचीन रूपमें अलग-अलग नहीं पायी जातीं, तथापि इनका नाना ग्रन्थोंमें समावेश है और वे मुनियों द्वारा अब भी उपयोगमें लायी जाती हैं।

वल्लभीपुरमें मुनि-संघ द्वारा जो साहित्य-संकलन किया गया उसमें उक्त प्रथम ग्यारह अंगोंके अतिरिक्त औपपातिक, राय-पसेणिय आदि १२ उपांग; निशीथ, महानिशीथ आदि ६ छेदसूत्र; उत्तराध्ययन, आवश्यक आदि ४ मूलसूत्र; चतुःशरण, आतुर-प्रत्याख्यान आदि दश प्रकीर्णक, तथा अनुयोगद्वार और नन्दी ये दो चूलिका-सूत्र भी सम्मिलित हो गये जिससे समस्त अर्द्धमागधी आगम-ग्रन्थोंकी संख्या ४५ हो गयी जिसे श्वेताम्बर सम्प्रदाय द्वारा धार्मिक मान्यता प्राप्त है। यह समस्त साहित्य अपनी भाषा व शैली तथा दार्शनिक व ऐतिहासिक सामग्रीके लिए पालि साहित्यके समान ही महत्त्वपूर्ण है[1]।

७. महावीर-निर्वाण-काल

भगवान् महावीरका निर्वाण कब हुआ इसके सम्बन्ध में यह तो स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है कि यह घटना कार्तिक कृष्णपक्ष चतुर्दशीकी रात्रिके अन्तिम चरणमें अर्थात् अमावस्याके प्रातःकालसे पूर्व घटित हुई और उनके निर्वाणोत्सवको देवों तथा मनुष्योंने दीपावलीके रूपमें मनाया। तदनुसार आजतक कार्तिककी दीपावली-

---

१. समवायांग सूत्र २११-२२७। षट्खण्डागम १, १, २; टीका भाग १, पृष्ठ ९६ आदि। विंटरनिट्ज : इंडियन लिटरेचर भाग २ जैन लिटरेचर। कापड़िया : हिस्ट्री ऑफ दि जैन केनानिकल लिटरेचर। जगदीशचन्द्र : प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ३३ आदि। हीरालाल जैन : भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान, पृष्ठ ५५ आदि। नेमिचन्द्र शास्त्री : प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ १५७ आदि।

से उनका निर्वाण संवत् माना जाता है जिसका इस समय सन् १९७१-७२ में चौबीस सौ अन्ठान्नबे (२४९८) वाँ वर्ष प्रचलित है तथा दो वर्ष पश्चात् पूरे पच्चीस सौ वर्ष होनेपर एक महामहोत्सव मनानेकी योजना चल रही है। किन्तु इस संवत्सरका प्रचलन अपेक्षाकृत बहुत प्राचीन नहीं और महावीरके समयमें तथा उसके दीर्घकाल पश्चात् तक किसी वीर-संवत्के उल्लेखका प्रचार नहीं था। पश्चात्कालीन ग्रन्थोंमें जो कालसम्बन्धी उल्लेख पाये जाते हैं उनमें कहीं-कहीं परस्पर कुछ विरोध पाया जाता है और कहीं अन्य साहित्यिक उल्लेखों तथा ऐतिहासिक घटनाओंसे मेल नहीं खाता। इससे निर्वाण कालके सम्बन्धमें आधुनिक विद्वानोंके बीच बहुत-सा मतभेद उत्पन्न हो गया है। एक ओर जर्मन विद्वान् डॉ. याकोबीने महावीर निर्वाण का समय ई. पू. चार सौ सतहत्तर (४७७) माना है। इसका आधार यह है कि मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्तका राज्याभिषेक ई. पू. ३२२ (तीन सौ बाईस) में हुआ और हेमचन्द्र-कृत परिशिष्ट पर्व (८-३३९) के अनुसार यह अभिषेक महावीरके निर्वाणसे १५५ (एक सौ पचपन) वर्ष पश्चात् हुआ था। इस प्रकार महावीर निर्वाण ३२२ + १५५ = ४७७ वर्ष पूर्व सिद्ध हुआ। किन्तु दूसरी ओर डॉ. काशीप्रसाद जायसवालका मत है कि बौद्धोंकी सिंहल-देशीय परम्परामें बुद्धका निर्वाण ई. पू. ५४४ माना गया है। तथा मज्झिमनिकायके सामगाम सूत्तमें व त्रिपिटकमें अन्यत्र भी इस बातका उल्लेख है कि भगवान् बुद्धको अपने एक अनुयायी द्वारा यह समाचार मिला था कि पावामें महावीरका निर्वाण हो गया। ऐसी भी धारणा रही है कि इसके दो वर्ष पश्चात् बुद्धका निर्वाण हुआ। अतएव यह सिद्ध हुआ कि महावीर-निर्वाणका काल ई. पू. ५४६ है। किन्तु विचार करनेसे ये दोनों अभिमत प्रमाणित नहीं होते। जैन साहित्यिक तथा ऐतिहासिक एक शुद्ध और प्राचीन परम्परा है जो वीर-निर्वाण को विक्रम संवत् से ४७० (चार सौ सत्तर) वर्ष पूर्व तथा शक संवत् से ६०५ (छह सौ पाँच) वर्ष पूर्व हुआ मानती है। इस परम्परा का ऐतिहासिक क्रम इस प्रकार है : जिस रात्रिको वीर भगवान्का निर्वाण हुआ उसी रात्रिको उज्जैनके पालक राजाका अभिषेक हुआ। पालकने ६० वर्ष राज्य किया। तत्पश्चात् नन्दवंशीय राजाओंने १५५ वर्ष, मौर्यवंशने १०८ वर्ष, पुष्यमित्रने ३० वर्ष, बलमित्र और भानुमित्रने ६० वर्ष, नहपान (नहवान नरवाहन या नहसेन) ने ४० वर्ष, गर्दभिल्लने १३ वर्ष और एक राजाने ४ वर्ष राज्य किया, और तत्पश्चात् विक्रम-काल प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार वीरनिर्वाणसे ६० + १५५ + १०८ + ३० + ६० + ४० + १३ + ४ = ४७० वर्ष विक्रम संवत्के प्रारम्भ तक सिद्ध हुए। डॉ. याकोबीने हेमचन्द्र आचार्यके जिस मतके आधारपर वीर-निर्वाण

और चन्द्रगुप्त मौर्यके बीच १५५ वर्षका अन्तर माना है वह वस्तुतः ठीक नहीं है। डॉ. याकोबीने हेमचन्द्रके परिशिष्ट पर्वका सम्पादन किया है और उन्होंने अपना यह मत भी प्रकट किया है कि उक्त कृति की रचनामें शीघ्रताके कारण अनेक भूलें रह गयी हैं। इन भूलोंमें एक यह भी है कि वीर-निर्वाण और चन्द्रगुप्तका काल अंकित करते समय वे पालक राजाका ६० वर्षका काल भूल गये जिसे जोड़नेसे वह अन्तर १५५ वर्ष नहीं किन्तु २१५ वर्षका हो जाता है। इस भूलका प्रमाण स्वयं हेमचन्द्र द्वारा उल्लिखित राजा कुमारपालके कालमें पाया जाता है। उनके द्वारा रचित त्रिषष्टि-शलाका-पुरुष-चरित (पर्व १०, सर्ग १२, श्लोक ४५-४६) में कहा गया है कि वीर निर्वाणसे १६६९ वर्ष पश्चात् कुमारपाल राजा हुए। अन्य प्रमाणोंसे सिद्ध है कि कुमारपालका राज्याभिषेक ११४२ ई. में हुआ था। अतएव इसके अनुसार वीर-निर्वाणका काल १६६९ – ११४२ = ५२७ ई. पू. सिद्ध हुआ।

डॉ. जायसवालने जो बुद्ध निर्वाणका काल सिंहलीय परम्पराके आधारसे ई. पू. ५४४ मान लिया है वह भी अन्य प्रमाणोंसे सिद्ध नहीं होता। उससे अधिक प्राचीन सिंहलीय परम्पराके अनुसार मौर्य सम्राट् अशोकका राज्याभिषेक बुद्ध-निर्वाणसे २१८ वर्ष पश्चात् हुआ था। अनेक ऐतिहासिक प्रमाणोंसे सिद्ध हो चुका है कि अशोकका अभिषेक ई. पू. २६९ वर्षमें अथवा उसके लगभग हुआ था। अतएव बुद्ध-निर्वाणका काल २१८ + २६९ = ४८७ ई. पू. सिद्ध हुआ। इसकी पुष्टि एक चीनी परम्परासे भी होती है। चीनके कैन्टन नामक नगरमें बुद्ध-निर्वाणके वर्षका स्मरण बिन्दुओं द्वारा सुरक्षित रखनेका प्रयत्न किया गया है। प्रति वर्ष एक बिन्दु जोड़ दिया जाता था। इन बिन्दुओंकी संख्या निरन्तर ई. सन् ४८९ तक चलती रही और तब तकके बिन्दुओंकी संख्या ९७५ पायी जाती है। इसके अनुसार बुद्ध-निर्वाणका काल ९७५ – ४८९ = ४८६ ई. पू. सिद्ध हुआ। इस प्रकार सिंहल और चीनी परम्परामें पूरा सामञ्जस्य पाया जाता है। अतएव बुद्ध-निर्वाण का यही काल स्वीकार करने योग्य है।

स्वयं पालि त्रिपिटकमें इस बातके प्रचुर प्रमाण पाये जाते हैं कि महावीर आयुमें और तपस्यामें बुद्धसे ज्येष्ठ थे, और उनका निर्वाण भी बुद्धके जीवन-काल में ही हो गया था। दीघनिकायके श्रामण्य-फल-सुत्त, संयुत्त-निकायके दहर-सुत्त तथा सुत्त-निपातके सभिय-सुत्तमें बुद्धसे पूर्ववर्ती छह तीर्थंकोंका उल्लेख आया है। उनके नाम हैं पूरण कस्सप, मक्खलिगोशाल, निगंठ नातपुत्त (महावीर), संजय बेलट्ठिपुत्त, पबुद्ध कच्चायन और अजितकेश-कंबलि। इन सभीको बहुत लोगों द्वारा सम्मानित, अनुभवी, चिरप्रव्रजित व वयोवृद्ध कहा गया है, किन्तु बुद्धको ये

विशेषण नहीं लगाये गये। इसके विपरीत उन्हें उक्त छहकी अपेक्षा जन्मसे अल्प-वयस्क व प्रव्रज्यामें नया कहा गया है। इससे सिद्ध है कि महावीर बुद्धसे ज्येष्ठ थे और उनसे पहले ही प्रव्रजित हो चुके थे।

मज्झिमनिकायके साम-गाम सुत्तमें वर्णन आया है कि जब भगवान् बुद्ध साम-गाममें विहार कर रहे थे तब उनके पास चुन्द नामक श्रमणोद्देश आया और उन्हें यह सन्देश दिया कि अभी-अभी पावामें निगंठ नातपुत्त (महावीर) की मृत्यु हुई है, और उनके अनुयायियोंमें कलह उत्पन्न हो गया है। बुद्धके पट्ट शिष्य आनन्दको इस समाचारसे सन्देह उत्पन्न हुआ कि कहीं बुद्ध भगवान्के पश्चात् उनके संघमें भी ऐसा ही विवाद उत्पन्न न हो जाये। अपने इस संदेहकी चर्चा उन्होंने बुद्ध भगवान्से भी की। यही वृत्तान्त दीघ-निकायके पासादिक-सुत्तमें भी पाया जाता है। इसी निकायके संगीतिपरियाय-सुत्तमें भी बुद्धके संघमें महावीर-निर्वाणका वही समाचार पहुँचता है और उसपर बुद्धके शिष्य सारिपुत्तने भिक्षुओंको आमन्त्रित कर वह समाचार सुनाया तथा भगवान् बुद्धके निर्वाण होनेपर विवादकी स्थिति उत्पन्न न होने देनेके लिए उन्हें सतर्क किया। इसपर स्वयं बुद्धने कहा—साधु, साधु, सारिपुत्र, तुमने भिक्षुओंको अच्छा उपदेश दिया। ये प्रकरण निस्सन्देह रूपसे प्रमाणित करते हैं कि महावीरका निर्वाण बुद्धके जीवन-कालमें ही हो गया था। यही नहीं, किन्तु इससे उनके अनुयायियोंमें कुछ विषाद भी उत्पन्न हुआ था जिसके समाचारसे बुद्धके संघमें कुछ चिन्ता भी उत्पन्न हुई थी, और उसके समाधान का भी प्रयत्न किया गया था। इस प्रकार बुद्धसे महावीरकी वरिष्ठता और पूर्व-निर्वाण निस्सन्देह रूपसे सिद्ध हो जाता है और उनका दोनोंकी उक्त परम्परागत निर्वाण-तिथियोंसे भी मेल बैठ जाता है।[1]

८. महावीर-जन्मस्थान

प्रस्तुत ग्रन्थ संधि १ कडवक ६-७ में कहा गया है कि जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें स्थित कुण्डपुरके राजा सिद्धार्थ और रानी प्रियकारिणीके चौबीसवें जिनेन्द्र महावीरका जन्म होगा। इस परसे इतना तो स्पष्ट हो गया कि भगवान्का जन्म-स्थान कुण्डपुर था। किन्तु वहाँ उसके भारतमें स्थित होनेके अतिरिक्त और अन्य

---

१. महावीर और बुद्धके निर्वाण कालसम्बन्धी उल्लेखों व उद्धारोहके लिए देखिए विंटरनिट्ज : हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर भाग २ अपेण्डिक्स १ बुद्ध-निर्वाण व अपेण्डिक्स ६ महावीर-निर्वाण। मुनि नगराज कृत आगम और त्रिपिटक : एक अनुशीलन, पृष्ठ ४७-१२८।

कोई प्रदेश आदिकी सूचना नहीं दी गयी। तथापि अन्य ऐसे उल्लेख प्राप्त हैं जिनसे स्पष्ट हो जाता है कि यह कुण्डपुर विदेह प्रदेशमें स्थित था। उदाहरणार्थ पूज्यपाद स्वामी कृत निर्वाण-भक्तिमें कहा गया है कि :—

"सिद्धार्थ-नृपति-तनवो भारतवास्ये विदेह-कुण्डपुरे।" अर्थात् राजा सिद्धार्थ के पुत्र महावीरका जन्म भारतवर्षके विदेह प्रदेशमें स्थित कुण्डपुरमें हुआ। इसी प्रकार जिनसेन कृत हरिवंश पुराण (सर्ग २ श्लोक १ से ५) में कहा गया है कि :

अथ देशोऽस्ति विस्तारो जम्बूद्वीपस्य भारते।
विदेह इति विख्यातः स्वर्गखण्डसमः श्रिया॥
तत्राखण्डलनेत्रालीपद्मिनीखण्डमण्डनम्।
सुखाम्भःकुण्डमाभाति नाम्ना कुण्डपुरं पुरम्॥

अर्थात् जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें विशाल, विख्यात व समृद्धिमें स्वर्गके समान जो विदेह देश है उसमें कुण्डपुर नामका नगर ऐसा शोभायमान दिखाई देता है जैसे मानो वह सुखरूपी जलका कुण्ड ही हो, तथा जो इन्द्रके सहस्र नेत्रोंकी पंक्तिरूपी कमलिनी-खण्डसे मण्डित है। गुणभद्रकृत उत्तरपुराण (पर्व ७४ श्लोक २५१-२५२) में भी पाया जाता है कि :

भरतेऽस्मिन्विदेहाख्ये विषये भवनाङ्गणे।
राज्ञः कुण्डपुरेशस्य वसुधारापतत्पृथुः॥

अर्थात् इसी भरत क्षेत्रके विदेह नामक देशमें कुण्डपुर-नरेशके प्रासादके प्रांगणमें विशाल धनकी धारा बरसी।

अर्द्धमागधी आगमके आचाराङ्ग सूत्र (२, १५) तथा कल्पसूत्र (११०) में भी कहा गया है कि :

समणे भगवं महावीरे णाए णायपुत्ते णायकुलणिव्वत्ते विदेहे विदेहदिन्ने विदेहजच्चे विदेहसूमाले तीसं वासाइं विदेहंसि कट्टु अगारमज्झे वसित्ता....।

अर्थात् ज्ञातृ, ज्ञातृ-पुत्र, ज्ञातृकुलोत्पन्न, वैदेह, विदेहदत्त, विदेहजात्य, विदेहसुकुमार, श्रमण भगवान् महावीर ३० वर्ष विदेहदेशके ही गृहमें निवास करके प्रव्रजित हुए।

और भी अनेक अवतरण दिये जा सकते हैं, किन्तु इतने ही उल्लेखोंसे यह भली प्रकार सिद्ध हो जाता है कि भगवान् महावीरकी जन्मनगरीका नाम कुण्डपुर था, और वह कुण्डपुर विदेह प्रदेशमें स्थित था। सौभाग्यसे विदेहकी सीमाके सम्बन्धमें कहीं कोई विवाद नहीं है। प्राचीनतम काल से बिहार राज्यका गंगासे उत्तरका भाग विदेह और दक्षिणका भाग मगध नामसे प्रसिद्ध रहा है। इसी विदेह प्रदेशको तीरभुक्ति नामसे भी उल्लिखित किया गया है जिसका वर्तमान

रूप तिरहुत अब भी प्रचलित है। पुराणोंमें इसकी सीमाएँ इस प्रकार निर्दिष्ट की गयी हैं :

गङ्गा-हिमवतोर्मध्ये नदीपञ्चदशान्तरे ।
तीरभुक्तिरिति ख्यातो देशः परम-पावनः ॥
कौशिकीं तु समारभ्य गण्डकीमधिगम्य वै ।
योजनानि चतुर्विंशद् व्यायामः परिकीर्तितः ॥
गङ्गा-प्रवाहमारभ्य यावद् हैमवतं वनम् ।
विस्तारः षोडशो ज्ञेयो देशस्य कुलनन्दन ॥

इस प्रकार विदेह अर्थात् तीरभुक्ति (तिरहुत) प्रदेश की सीमाएँ सुनिश्चित हैं। उत्तरमें हिमालय पर्वत और दक्षिणमें गंगा नदी, पूर्वमें कौशिकी और पश्चिममें गण्डकी नामक नदियाँ। किन्तु विदेहकी ये सीमाएँ भी एक विशाल क्षेत्रको सूचित करती हैं और अब हमारे लिए यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि इस प्रदेशमें कुण्डपुरको कहाँ रखा जाये। इसके निर्णयके लिए हमारा ध्यान महावीरके ज्ञातृ-कुलोत्पन्न, ज्ञातृपुत्र आदि विशेषणोंकी ओर आकृष्ट होता है। ये ज्ञातृ क्षत्रियवंशी कहाँ रहते थे इसका संकेत हमें बौद्ध साहित्यके एक अतिप्राचीन ग्रन्थ महावस्तुमें प्राप्त होता है। वहाँ प्रसंग यह है कि बुद्ध भगवान् गंगाको पार कर वैशालीकी ओर जा रहे हैं और उनके स्वागतके लिए वैशाली संघके लिच्छवी आदि अनेक क्षत्रियगण शोभायात्रा बनाकर उनके स्वागतार्थ आते हैं। इसका वर्णन करते हुए कहा गया है कि :

स्फीतानि राज्यानि प्रशास्यमाना ।
सम्यग् राजानि करोन्ति ज्ञातयः ॥
तथा इमे लिच्छवि-मध्ये सन्तो ।
देवेहि शास्ता उपमामकासि ॥

अर्थात् ये जो क्षत्रियगण भगवान्के स्वागतके लिए आ रहे हैं उनमें जो ज्ञातृ नामक क्षत्रियगण हैं वे अपने विशाल राज्यका शासन भले प्रकारसे करते हैं और वे लिच्छवि गणके क्षत्रियोंके बीच ऐसे प्रतिष्ठित और शोभायमान दिखाई देते हैं कि स्वयं शास्ता अर्थात् स्वयं भगवान् बुद्धने उनकी उपमा देवोंसे की है। इस उल्लेखसे एक तो यह बात सिद्ध हो जाती है कि ज्ञातृकुलके क्षत्रियोंका निवास-स्थान वैशाली ही था, और दूसरे वे लिच्छविगणमें विशेष सम्मानका स्थान रखते थे। इसका कारण भी स्पष्ट है। ज्ञातृकोंके कुलकी प्रतिष्ठा इस कारण और भी बढ़ गयी प्रतीत होती है क्योंकि उनके गणनायक सिद्धार्थ वैशाली गणके नायक राजा चेटकके जामाता थे। चेटककी कन्या (भगिनी) प्रियकारिणी त्रिशलाका

विवाह ज्ञातृकुल-श्रेष्ठ राजा सिद्धार्थसे हुआ था। भगवान् महावीरको वैशालीसे सम्बद्ध करनेवाला एक और पुष्ट प्रमाण उपलब्ध है। अर्द्धमागधी आगमोंमें (सूत्रकृतांग १, २; उत्तराध्ययन ६ आदि) अनेक स्थानोंपर भगवान् महावीरको वेसालीय—वैशालिक कहा गया है। यद्यपि कुछ टीकाकारोंने वैशालिकका विशाल-व्यक्तित्ववशील, विशालामाताके पुत्र आदि रूपसे विविध प्रकार अर्थ किये हैं तथापि वे संतोषजनक नहीं हैं। वैशालिकका यही स्पष्ट अर्थ समझमें आता है कि वैशाली नगरके नागरिक थे। आगम में अनेक स्थानोंपर वैशाली श्रावकोंका भी उल्लेख आता है। भगवान् ऋषभदेव कौशल देशके थे, अतएव उन्हें 'अरहा कोसलीये' अर्थात् कौशल देशके अरहन्त कहकर भी सम्बोधित किया गया है (समवायांग सूत्र १४१, १६२)। इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि महावीर वैशाली नगरमें ही उत्पन्न हुए थे और कुण्डपुर उसी विशाल नगरका एक भाग रहा होगा।

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि वैशालीकी स्थिति कहाँ थी ? इसका स्पष्ट उत्तर वाल्मीकि कृत रामायण (१,४५) में पाया जाता है। राम और लक्ष्मण विश्वामित्र मुनिके साथ मिथिलामें राजा जनक द्वारा आयोजित धनुर्यज्ञमें जा रहे हैं। जब वे गंगा-तटपर पहुँचे तब मुनिने उन्हें गंगा-अवतरणका आख्यान सुनाया। तत्पश्चात् उन्होंने गंगा पार की और वे उसके उत्तरीय तटपर जा पहुँचे। वहाँसे उन्होंने विशालापुरीको देखा :

उत्तरं तीरमासाद्य सम्पूज्यर्षिगणं ततः।
गङ्गाकूले निविष्टास्ते विशालां ददृशुः पुरीम् ॥९॥ (रामा. ४५,९)

और वे शीघ्र ही उस रम्य, दिव्य तथा स्वर्गोपम नगरीमें जा पहुँचे।

ततो मुनिवरस्तूर्णं जगाम सहराघवः।
विशालां नगरीं रम्यां दिव्यां स्वर्गोपमां तदा ॥

(रामा. १,४५, ९-१०)

यहाँ उन्होंने एक रात्रि निवास किया और दूसरे दिन वहाँसे चलकर वे जनकपुरी मिथिलामें पहुँचे।

'उष्य तत्र निशामेकां जग्मतुर्मिथिलां ततः।'

बौद्ध ग्रन्थोंमें भी वैशालीके अनेक उल्लेख आये हैं और वहाँ भी स्पष्टतः कहा गया पाया जाता है कि बुद्ध भगवान् गंगाको पारकर उत्तरकी ओर वैशालीमें पहुँचे। वैशालीमें उस समय लिच्छवि संघका राज्य था तथा गंगाके दक्षिणमें मगधनरेश श्रेणिक बिम्बसार और उनके पश्चात् कुणिक अजातशत्रुका एकछत्र राज्य था। इन दोनों राज्यतन्त्रोंमें मौलिक भेद था और उनमें शत्रुता भी बढ़

गयी थी। बौद्ध ग्रन्थोंमें उल्लेख है (दीघनिकाय-महापरिनिब्बाण सुत्त) कि अजातशत्रुके मन्त्री वर्षकारने बुद्धसे पूछा था कि क्या वे वैशालीके लिच्छवि संघ-पर विजय प्राप्त कर सकते हैं ? इसके उत्तरमें बुद्धने उन्हें यह सूचित किया था कि जबतक लिच्छवि गणके लोग अपनी गणतन्त्रीय व्यवस्थाको सुसंगठित हो एकमतसे समर्थन दे रहे हैं, न्यायनीतिका पालन करते हैं और सदाचारके नियमों का उल्लंघन नहीं करते, तबतक उन्हें कोई पराजित नहीं कर सकता। यह बात जानकर वर्षकार मन्त्रीने कूटनीतिसे लिच्छवियोंके बीच फूट डाली और उन्हें न्यायनीतिसे भ्रष्ट किया। इसका जो परिणाम हुआ उसका विशद वर्णन अर्द्धमागधी आगमके भगवती सूत्र, सप्तम शतक में पाया जाता है। इसके अनुसार अजात-शत्रुकी सेनाने वैशालीपर आक्रमण किया। युद्धमें महाशिलकंटक और रथमुसल नामक युद्ध-यन्त्रोंका उपयोग किया गया। अन्ततः वैशालीके प्राकारका भंग होकर अजातशत्रुकी विजय हो गयी। तात्पर्य यह है कि महावीरके कालमें वैशालीकी बड़ी प्रतिष्ठा थी और उस नगरीका नागरिक होना एक गौरवकी बात मानी जाती थी। इसीलिए महावीरको वैशालीय कहकर भी सम्बोधित किया गया है। अनेक प्राचीन नगरोंके साथ इस वैशालीयका भी दीर्घकाल तक इतिहासज्ञोंको अता-पता नहीं था। किन्तु विगत एक शताब्दीमें जो पुरातत्त्व सम्बन्धी खोज-शोध हुई है उससे प्राचीन भग्नावशेषों, मुद्राओं व शिलालेखों आदिके आधारसे प्राचीन वैशाली-की ठीक स्थिति अवगत हो गयी है और निस्सन्देह रूपसे प्रमाणित हो गया है कि बिहार राज्यसे गंगाके उत्तरमें मुजफ्फरपुर जिलेके अन्तर्गत बसाढ़ नामक ग्राम ही प्राचीन वैशाली है। स्थानीय खोज-शोधसे यह भी माना गया है कि वर्तमान बसाढ़के समीप ही जो वासुकुण्ड नामक ग्राम है वही प्राचीन कुण्डपुर होना चाहिए। वहाँ एक प्राचीन कुण्डके भी चिह्न पाये जाते हैं जो क्षत्रियकुण्ड कहलाता रहा होगा। उसीके समीप एक ऐसा भी भूमिखण्ड पाया गया जो 'अहल्य' माना जाता रहा है। उसपर कभी हल नहीं चलाया गया, तथा स्थानीय जनताकी धारणा रही है कि वह एक अतिप्राचीन महापुरुषका जन्मस्थान था। इसलिए उसे पवित्र मानकर लोग वहाँ दीपावलीकी अर्थात् महावीरके निर्वाणके दिन दीपक जलाया करते हैं। इन सब बातोंपर समुचित विचार करके विद्वानोंने उसी स्थलको महावीरकी जन्मभूमि स्वीकार किया और बिहार सरकारने भी इसी आधारपर उस स्थलको अपने अधिकारमें लेकर उसका घेरा बना दिया है और वहाँ एक कमलाकार वेदिका बनाकर वहाँ एक संगमरमरका शिलापट्ट स्थापित कर दिया है। उसपर अर्द्धमागधी भाषामें आठ गाथाओंका लेख हिन्दी अनुवाद सहित भी अंकित कर दिया गया है जिसमें वर्णन है कि यह वह स्थल है

जहाँ भगवान् महावीरका जन्म हुआ था और जहाँसे वे अपने ३० वर्षके कुमार-कालको पूरा कर प्रव्रजित हुए थे। शिलालेखमें यह भी उल्लेख है कि भगवान्के जन्मसे २५५५ वर्ष व्यतीत होनेपर विक्रम संवत् २०१२ वर्षमें भारत के राष्ट्रपति श्री राजेन्द्रप्रसादने वहाँ आकर उस स्मारकका उद्घाटन किया।

महावीर स्मारकके समीप ही तथा पूर्वोक्त प्राचीन क्षत्रिय कुण्डकी तटवर्ती भूमिपर साहू शान्तिप्रसादके दानसे एक भव्य भवनका निर्माण भी करा दिया गया है और वहाँ बिहार राज्य शासन द्वारा प्राकृत जैन शोध-संस्थान भी चलाया जा रहा है। यह संस्थान सन् १९५६ में मेरे (डा. हीरालाल जैन) निर्देशकत्वमें मुजफ्फरपुरमें प्रारम्भ किया गया था। उन्हींके द्वारा वैशालीमें महावीर स्मारक स्थापित कराया गया तथा शोध-संस्थानके भवनका निर्माण कार्य प्रारम्भ कराया गया।

वैशालीकी स्थितिका यह जो निर्णय किया गया उसमें एक शंका रह जाती है। कुछ धर्म-बन्धुओंको यह बात खटकती है कि कहीं-कहीं वैशालीकी स्थिति विदेहमें नहीं, किन्तु सिन्धु देशमें कही गयी है। प्रस्तुत ग्रन्थ (५,५) में भी कहा पाया जाता है कि सिंधुविसइ वइसालीपुरवरि' तथा संस्कृत उत्तर पुराण (७५,३) में भी कहा गया है :

सिन्ध्वाख्यविषये भूभृद्वैशालीनगरेऽभवत्।
चेटकाख्योऽतिविख्यातो विनीतः परमार्हतः॥

इन दोनों स्थानोंपर सिन्धु विषय व सिन्ध्वाख्यविषयेका तात्पर्य सिन्ध देशसे लगाया जाना स्वाभाविक ही है। किन्तु साथ ही यह भी स्पष्ट है कि वर्तमान सिन्धदेशमें न तो किसी वैशाली नामक नगरीका कहीं कोई उल्लेख पाया गया और न उसकी पूर्वोक्त समस्त ऐतिहासिक उल्लेखों और घटनाओंसे सुसंगति बैठ सकती है। वैशालीकी स्थितिमें अब कहीं किसी विद्वान्को संशय नहीं रहा है। इस विषयपर मैंने जो विचार किया है उससे मैं इस निर्णयपर पहुँचा हूँ कि उत्तर पुराणमें जो 'सिन्ध्वाख्यविषये' पाठ है वह किसी लिपिकारके प्रमादका परिणाम है। यथार्थतः वह पाठ होना चाहिये 'सिन्ध्वाख्य-विषये' जिसका अर्थ होगा वह प्रदेश जहाँ नदियोंका बाहुल्य है। तिरहुत प्रदेशका यह विशेषण पूर्णतः सार्थक है। इस प्रदेशका उल्लेख शंकरदिग्विजय नामक ग्रन्थमें भी आया है, और वहाँ उसे उदकदेश कहा गया है। तीरभुक्ति नामकी भी यही सार्थकता है कि समस्त प्रदेश प्रायः नदियों और उसके तटवर्ती क्षेत्रोंमें बटा हुआ है। ऊपर जो तीरभुक्ति सम्बन्धी एक उल्लेख उद्धृत किया गया है उसमें इस प्रदेशको 'नदी-पञ्चदशान्तरे' कहा गया है, अर्थात् पन्द्रह नदियोंमें बटा हुआ प्रदेश। वहाँ नदियोंकी बहुलता

तथा समय-समयपर पूरे प्रदेशका जल-प्लावन आज भी देखा-सुना जाता है। अतः पूर्वोक्त दोनों उल्लेखोंसे किसी अन्य सिन्धु देशका नहीं, किन्तु इसी सिन्धुबहुल, उदकदेश या तीरभुक्तिसे ही अभिप्राय है।

अब इस विषयमें एक प्रश्न फिर भी शेष रह जाता है। इधर दीर्घकालसे महावीर स्वामीका जन्म-स्थान बिहारके पटना जिलेमें नालन्दाके समीप कुण्डलपुर माना जाता है। वहाँ एक विशाल मन्दिर भी है और वह भगवान्‌के जन्म-कल्याणक स्थानके रूपमें एक तीर्थ माना जाता है। इसी श्रद्धासे, वहाँ सहस्रों यात्री तीर्थयात्रा करते हैं। उसी प्रकार श्वेताम्बर सम्प्रदाय द्वारा भगवान्‌का जन्म-स्थान मुंगेर जिलेके लच्छुआड़ नामक ग्रामके समीप क्षत्रिय-कुण्डको माना गया है। किन्तु ये दोनों स्थान गंगाके उत्तर विदेह देशमें न होकर गंगाके दक्षिणमें मगध देशके अन्तर्गत हैं और इस कारण दोनों ही सम्प्रदायोंके प्राचीनतम स्पष्ट ग्रन्थोल्लेखोंके विरुद्ध पड़ते हैं। यथार्थतः इस विषयमें सन्देह याकोबी आदि उन विदेशी विद्वानोंने प्रकट किया जिन्होंने इस विषयपर निष्पक्षतापूर्वक शुद्ध ऐतिहासिक दृष्टिसे विचार किया था, और उन्हींकी खोज-शोधों द्वारा वैशाली तथा कुण्डपुरकी वास्तविक स्थितिका पता चला। ये जो दो स्थान वर्तमानमें जन्मस्थल माने जा रहे हैं उनकी परम्परा वस्तुतः बहुत प्राचीन नहीं है। विचार करनेसे ज्ञात होता है कि विदेह और मगध प्रदेशोंमें जैनधर्मके अनुयायियोंकी संख्या महावीरके कालसे लगभग बारह सौ वर्षतक तो बहुत रही। सातवीं शताब्दीमें हर्षवर्धनके कालमें जो चीनी यात्री हुयेनत्सांग भारतमें आया था उसने समस्त बौद्ध तीर्थोंकी यात्रा करनेका प्रयत्न किया था। वह वैशाली भी गया था जिसके विषयमें उसने अपनी यात्राके वर्णनमें स्पष्ट लिखा है कि वहाँ बौद्ध धर्मानुयायियों-की अपेक्षा निर्ग्रन्थों अर्थात् जैनियोंकी संख्या अधिक है। किन्तु इसके पश्चात् स्थितिमें बड़ा अन्तर पड़ा प्रतीत होता है, और अनेक कारणोंसे यहाँ प्रायः जैनियों का अभाव हो गया। इसके अनेक शताब्दी पश्चात् सम्भवतः मुगलकालमें व्यापारकी दृष्टिसे पुनः जैनी यहाँ आकर बसे और उन्होंने पुरातत्त्व व ऐतिहासिक प्रमाणोंके आधारपर नहीं, किन्तु केवल नाम-साम्य तथा भ्रान्त जनश्रुतियोंके आधारसे कुण्डलपुर व लच्छुआड़में भगवान्‌के जन्मस्थानकी कल्पना कर ली। अब उक्त दोनों स्थान वहाँके मन्दिरोंके निर्माण, मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा तथा सैकड़ों वर्षोंसे जनताकी श्रद्धा एवं तीर्थयात्राके द्वारा तीर्थस्थल बन गये हैं और बने रहेंगे। किन्तु जब हमने यह जान लिया कि भगवान्‌का वास्तविक जन्म-स्थान वैशाली व कुण्डपुर है उसे समस्त भारतीय व विदेशी विद्वानोंने एकमतसे स्वीकार किया है तथा बिहार शासन द्वारा भी उसे मान्यता प्रदान कर वहाँ महावीर स्मारक और

शोध-संस्थान की स्थापना भी की है तब समस्त जैन समाजको इस स्थानकी उपेक्षा नहीं करना चाहिए और अपना पूरा योगदान देकर उसे उसके ऐतिहासिक महत्त्वके अनुरूप गौरवशाली बनाना चाहिए।[1]

९. महावीर-तप-कल्याणक क्षेत्र

भगवान्‌ने तपश्चरण कहाँ प्रारम्भ किया था इसका उल्लेख प्रस्तुत ग्रन्थ (१, ११) में इस प्रकार पाया जाता है :

चंदप्पह-सिवियहिं पहु चडिण्णु ।
तहिं णाह-संडवणि णवर दिण्णु ॥
मग्गसिर-कसण-दसमी-दिणंति ।
संजायइ तियसुच्छवि महंति ॥
बोलीणइ चरियावरण पंकि ।
हत्थुत्तरमज्झासिइ ससंकि ॥
छट्ठोववासु किउ मलहरेण ।
तवचरणु लइउ परमेसरेण ॥

इसी प्रकार संस्कृत उत्तरपुराण (७५, ३०२-३०४) में भगवान्‌के तपग्रहणका उल्लेख इस प्रकार पाया जाता है :

नाथः (नाथ-) षण्डवनं प्राप्य स्वयानादवरुह्य सः ।
श्रेष्ठः षष्ठोपवासेन स्वप्रभापटलावृते ॥३०२॥
निविश्योदङ्मुखो वीरो रुन्द्ररत्नशिलातले ।
दशम्यां मार्गशीर्षस्य कृष्णायां शशिनि श्रिते ॥
हस्तोत्तरर्क्षयोर्मध्यं मागं चापास्तलक्ष्मणि ।
दिवसावसितौ धीरः संयमाभिमुखोऽभवत् ॥
सौधर्माद्यैः सुरैरेत्य कृताभिषवपूजनः ॥

हरिवंशपुराण (२,५०-५२) के अनुसार :

आरुह्य शिविकां दिव्यामुह्यमानां सुरेश्वरैः ॥
उत्तराफाल्गुनीष्वेव वर्तमाने निशाकरे ।
कृष्णस्य मार्गशीर्षस्य दशम्यामगमद् वनम् ॥

---

१. हार्नले : उपासक-दशा, प्रस्तावना व टिप्पण। केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृष्ठ १४०। भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, पृ० २२ आदि।

अपनीय तनोः सर्वं वस्त्रमाल्यविभूषणम् ।
पञ्चमुष्टिभिरुद्धृत्य मूर्धजानभवन्मुनिः ॥

इन तीनों उल्लेखोंका अभिप्राय यह है कि नाय, णाध, नाय अथवा ज्ञातृ वंशीय भगवान् महावीर ने मार्गशीर्ष कृष्णा १०वीं के दिन षण्डवनमें जाकर तपश्चरण प्रारम्भ किया और वे मुनि हो गये। श्वेताम्बर अर्धमागधी ग्रन्थों, जैसे कल्पसूत्रादिमें इसे 'णाय-संडवन' अर्थात् ज्ञातृ क्षत्रियोंके हिस्सेका वन कहा गया है और मेरे मतानुसार उत्तरपुराणमें भी मूलतः पाठ नाथ-षण्डवन व अपभ्रंशमें णाहसंडवण रहा है जिसे अज्ञानवश लिपिकारोंने अपनी दृष्टिसे सुधार दिया है। अतः भगवान्की तपोभूमि ज्ञातृवंशी क्षत्रियोंके निवास वैशाली व कुण्डपुरका समीपवर्ती उपवन ही सिद्ध होता है।

१०. भगवान् का केवलज्ञान-क्षेत्र

भगवान्को केवलज्ञान कहाँ उत्पन्न हुआ इसका उल्लेख प्रस्तुत ग्रन्थ (२, ५) में निम्नप्रकार पाया जाता है।

बारह-संवच्छर-तव-चरणु ।
किउ सम्मइणा दुक्किय-हरणु ॥
पोसंतु अहिंस खंति ससहि ।
भयवंतु संतु विहरंतु महि ॥
गउ जिम्हिय-गामहु अह-णियडि ।
सुविउलि रिजुकूला-णइहि तडि ॥

घत्ता—मोर-कीर-सारस-सरि उज्जाणम्मि मणोहरि ॥
साल-मूलि रिसि-राणउ रयण-सिलहि आसीणउ ॥५॥

छट्ठेणुववासेँ हयदुरिएँ ।
परिपालिय-तेरह-विह-चरिएँ ॥
वइसाह-मासि सिय-दसमि दिणि ।
अवरण्हइ जायइ हिम-किरणि ॥
हत्थुत्तर-मज्झ-समासियइ ।
पहु वड्ढियणाउ केवल-सियइ ॥

अर्थात् भगवान् महावीरने बारह वर्ष तक तपस्या की, तथा अपनी स्वसा चन्दनाके अहिंसा और क्षमा भावका पोषण किया, एवं विहार करते हुए वे

जृम्भिक ग्रामके अतिनिकट ऋजुकूला नदीके तटवर्ती वनमें पहुँचे। वहाँ उन्होंने एक साल वृक्षके नीचे शिलापर ध्यानारूढ़ हो दो दिन उपवासकर वैशाख शुक्ल दशमीके दिन अपराह्न कालमें जब चन्द्र उत्तराषाढ़ और हस्त नक्षत्रोंके मध्यमें था तब केवलज्ञान प्राप्त किया। यही बात उत्तरपुराण (७४, ३, ४९ आदि) में इस प्रकार कही गयी है :

भगवान्वर्धमानोऽपि नीत्वा द्वादशवत्सरान्।
छाद्मस्थ्येन जगद्बन्धुर्जृम्भिक-ग्राम-संनिधौ ॥
ऋजुकूलानदीतीरे मनोहरवनान्तरे।
महारत्नशिलापट्टे प्रतिमायोगमावसन् ॥
स्थित्वा षष्ठोपवासेन सोऽधस्तात्सालभूरुहः।
वैशाखे मासि सज्योत्स्नदशम्यामपराह्णके ॥
हस्तोत्तरान्तरं याते शशिन्यारूढ़-शुद्धिकः।
क्षापकश्रेणिमारुह्य शुक्लध्यानेन सुस्थितः ॥
घातिकर्माणि निर्मूल्य प्राप्यानन्तचतुष्टयम्।
परमात्मपदं प्राप्तपरमेष्ठी स सन्मतिः ॥

यही बात हरिवंशपुराण (२,५६-५९) में इस प्रकार कही गयी है :

मनःपर्ययपर्यन्त-चतुर्ज्ञानमहेक्षणः।
तपो द्वादशवर्षाणि चकार द्वादशात्मकम् ॥
विहरन्नथ नाथोऽसौ गुणग्राम-परिग्रहः।
ऋजुकूलापगाकूले जृम्भिक-ग्राममीयिवान् ॥
तत्रातापनयोगस्थः सालाभ्यासशिलातले।
वैशाख-शुक्लपक्षस्य दशम्यां षष्ठमाश्रितः ॥
उत्तराफाल्गुनीप्राप्ते शुक्लध्यानी निशाकरे।
निहत्य घातिसंघातं केवलज्ञानमाप्तवान् ॥

इस प्रकार भगवान् महावीरका केवलज्ञान-प्राप्ति रूप कल्याणक जृम्भिक ग्रामके समीप ऋजुकूला नदीके तटपर सम्पन्न हुआ। इस ग्रामका नाम आचारांग सूत्र व कल्पसूत्रमें जंभिय तथा नदीका नाम ऋजुवालुका पाया जाता है।

यद्यपि अभी तक इस ग्राम और नदीकी स्थितिका निर्णय नहीं हुआ, तथापि इसमें कोई सन्देह नहीं दिखाई देता कि उक्त नदी वही है जो अब भी बिहारमें कुयेल या कुएल— कूला नामसे प्रसिद्ध है और उसके तट पर इसी नामका एक बड़ा रेलवे जंक्शन भी है। उसीके समीप जमुई नामक नगर भी है। अतः यही

स्थान भगवान्‌का ज्ञान-प्राप्ति क्षेत्र स्वीकार करके वहाँ समुचित स्मारक बनाया जाना चाहिए।

११. महावीरदेशना-स्थल

केवलज्ञान प्राप्त करके भगवान् राजगृह पहुँचे, और उस नगरके समीप विपुलाचल पर्वतपर उनका समवसरण बनाया गया। वहाँ उनकी दिव्यध्वनि हुई जिसका समय श्रावण कृष्ण प्रतिपदा कहा गया है। इसके अनुसार भगवान्‌का प्रथम उपदेश केवलज्ञान-प्राप्तिसे ६६ दिन पश्चात् हुआ। यह बात हरिवंशपुराण (२,६१ आदि) में निम्न प्रकार पायी जाती है :

षट्षष्टिदिवसान् भूयो मौनेन विहरन् विभुः।
आजगाम जगत् ख्यातं जिनो राजगृहं पुरम्॥
आरुरोह गिरिं तत्र विपुलं विपुलश्रियम्।
प्रबोधार्थं स लोकानां भानुमानुदयं यथा॥
श्रावणस्यासिते पक्षे नक्षत्रेऽभिजिति प्रभुः।
प्रतिपद्य हि पूर्वाह्णे शासनार्थमुदाहरत्॥

इस प्रकार बिहार राज्यके अन्तर्गत राजगृह नगरके समीप विपुलाचलगिरि ही वह पवित्र और महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है जहाँ भगवान् महावीरका दिव्य शासन प्रारम्भ हुआ। इस पर्वतपर पहलेसे ही अनेक जैन-मन्दिर हैं, और कोई २५-३० वर्ष पूर्व यहाँ वीर-शासन स्मारक भी स्थापित किया गया था। तबसे वीर-शासन-जयन्ती भी श्रावण कृष्णा प्रतिपदाको मनायी जाती है। तथापि उक्त स्मारक और पवित्र दिनको अभीतक वह देशव्यापी प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं हुई जो उनके ऐतिहासिक महत्त्वके अनुरूप हो। इस हेतु प्रयास किये जाने की आवश्यकता है, क्योंकि यही वह स्थल है जहाँ न केवल भगवान्‌का धर्म-शासन प्रारम्भ हुआ था, किन्तु उस समयके सुप्रसिद्ध वेद-विज्ञाता इन्द्रभूति गौतमने आकर भगवान्‌का नायकत्व स्वीकार किया और वे भगवान्‌के प्रथम गणधर बने। यहीं उन्होंने भगवान्‌की दिव्यध्वनिको अंगों और पूर्वोंके रूपमें विभाजित कर उन्हें ग्रन्थारूढ़ किया। यहीं मगधनरेश श्रेणिक बिम्बसारने भगवान्‌का उपदेश सुना और गौतम गणधरसे धर्म-चर्चा करके जैन-पुराणों और कथानकोंकी रचनाकी नींव डाली। यहीं श्रेणिकने ऐसा पुण्यबन्ध किया जिससे उनका अगले मानव जन्ममें महापद्म नामक तीर्थंकर बनना निश्चित हो गया।

१२. महावीरनिर्वाण-क्षेत्र

ऋजुकूला नदीके तटपर केवलज्ञान प्राप्त कर तथा विपुलाचलपर अपनी दिव्यध्वनि द्वारा जैन-धर्मका उपदेश देकर भगवान् महावीरने ३० वर्ष तक देश-के विविध भागोंमें विहार करते हुए धर्मप्रचार किया। तत्पश्चात् वे पावापुरमें आये और यहाँ अनेक सरोवरोंसे युक्त वनमें एक विशुद्ध शिलापर विराजमान हुए। दो दिन तक उन्होंने विहार नहीं किया, और शुक्लध्यानमें तल्लीन रहकर कार्तिक कृष्णा चतुर्दशीकी रात्रिके अन्तिम भागमें जब चन्द्र स्वाति नक्षत्रमें था तब उन्होंने शरीर परित्याग कर सिद्ध-पद प्राप्त किया। प्रस्तुत ग्रन्थ (३,१) में यह बात इस प्रकार कही गयी है :

अंत-तित्थणाहु वि महि विहरिवि ।
जण-दुरियाइँ दुलंघइँ पहरिवि ॥
पावापुरवरु पत्तउ मणहरि ।
णव-तरु-पल्लवि वणि बहु-सरवरि ॥
संठिउ पंविमल-रयण-सिलायलि ।
रायहंसु णावइ पंकय-दलि ॥
दोण्णि दियहँ पविहारु मुएप्पिणु ।
णिव्वत्तिइ कत्तिइ तम-वसणि पक्ख चउद्दसि-वासरि ।
सुक्क-झाणु तिज्जउ झाएप्पिणु ॥
थिइ ससहरि दुहहरि साहवइ पच्छिमरयणिहि अवसरि ।

रिसिसहसेण समउ रयछिंदणु ॥
सिद्धउ जिणु सिद्धत्थहु णंदणु ।

ठीक यही वृत्तान्त उत्तरपुराण (६७,५०८ से ५१२) में इस प्रकार पाया जाता है :

इहान्त्य-तीर्थनाथोऽपि विहृत्य विषयान् बहून् ॥
क्रमात्पावापुरं प्राप्य मनोहर-वनान्तरे ।
बहूनां सरसां मध्ये महामणि-शिलातले ॥
स्थित्वा दिनद्वयं वीतविहारो वृद्धनिर्जरः ।
कृष्ण-कार्तिक-पक्षस्य चतुर्दश्यां निशात्यये ॥
स्वातियोगे तृतीयेद्ध-शुक्लध्यानपरायणः ।
कृतत्रियोग-संरोधः समुच्छिन्नक्रियं श्रितः ॥

हतावातिचतुष्कः सन्नशरीरो गुणात्मकः ।
गन्ता मुनिसहस्रेण निर्वाणं सर्ववाञ्छितम् ॥

इन उल्लेखोंपर-से स्पष्ट है कि भगवान् महावीरका निर्वाण पावापुरके समीप ऐसे वनमें हुआ था जिसमें आस-पास अनेक सरोवर थे। वर्तमानमें भगवान्का निर्वाण-क्षेत्र पटना जिलेके अन्तर्गत बिहार-शरीफके समीप वह स्थल माना जाता है जहाँ अब एक विशाल सरोवरके बीच भव्य जिनमन्दिर बना हुआ है, और इस तीर्थक्षेत्रकी व्यापक मान्यता है। दिगम्बर-श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदाय एकमतसे इसी स्थलको भगवान्की निर्वाण-भूमि स्वीकार करते हैं।

किन्तु इतिहासज्ञ विद्वान् इस स्थानको वास्तविक निर्वाण-भूमि स्वीकार करनेमें अनेक आपत्तियाँ देखते हैं। कल्पसूत्र तथा परिशिष्ट पर्वके अनुसार जिस पावामें भगवान्का निर्वाण हुआ था वह मल्ल नामक क्षत्रियों की राजधानी थी। ये मल्ल वैशालीके वज्जि व लिच्छवि संघमें प्रविष्ट थे, और मगधके एक सत्तात्मक राज्यसे उनका वैर था। अतएव गंगाके दक्षिणवर्ती प्रदेश जहाँ वर्तमान पावापुरी क्षेत्र है वहाँ उनके राज्य होने की कोई सम्भावना नहीं है। इसके अतिरिक्त बौद्ध ग्रन्थों जैसे—दीघ-निकाय, मज्झिम-निकाय आदिसे सिद्ध होता है कि पावाकी स्थिति शाक्य प्रदेशमें थी और वह वैशालीसे पश्चिमकी ओर कुशीनगरसे केवल दश-बारह मीलकी दूरी पर था। शाक्यप्रदेशके साम-गाम में जब भगवान् बुद्धका निवास था तभी उनके पास सन्देश पहुँचा था कि अभी अर्थात् एक ही दिन के भीतर पावामें भगवान् महावीरका निर्वाण हुआ है।

इस सम्बन्धके जो अनेक उल्लेख बौद्ध ग्रन्थोंमें आये हैं उनका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। इन सब बातोंपर विचार कर इतिहासज्ञ इस निर्णयपर पहुँचे हैं कि जिस पावापुरीके समीप भगवान्का निर्वाण हुआ था वह यथार्थतः उत्तर-प्रदेश के देवरिया जिलेमें व कुशीनगर के समीप वह पावा नामक ग्राम है जो आजकल सठियाँव (फाजिलनगर) कहलाता है और जहाँ बहुत-से प्राचीन खण्डहर व भग्नावशेष पाये जाते हैं। अतएव ऐतिहासिक दृष्टिसे इस स्थानको स्वीकार कर उसे भगवान् महावीरकी निर्वाण भूमिके योग्य तीर्थक्षेत्र बनाना चाहिए।[1]

---

१. निर्वाण भूमि-सम्बन्धी विस्तार पूर्वक विवेचन के लिए देखिए श्री कन्हैयालाल कृत 'पावा समीक्षा' (प्रकाशक—अशोक प्रकाशन, कादरा बाजार, छपरा, बिहार १९७२)। हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ दी इण्डियन पीपिल, खण्ड २। दि एज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ७ फुटनोट।

१३. महावीर समकालीन ऐतिहासिक पुरुष

(क) वैशाली-नरेश चेटक

प्रस्तुत ग्रन्थकी सन्धि सातवीं तथा संस्कृत उत्तरपुराण (पर्व ७५) में वैशाली के राजा चेटकका वृत्तान्त आया है। चेटकके विषयमें कहा गया है कि वे अति विख्यात, विनीत और परम आर्हत अर्थात् जिनधर्मावलम्बी थे। उनकी रानीका नाम सुभद्रादेवी था। उनके दश पुत्र हुए—धनदत्त, धनभद्र, उपेन्द्र, सुदत्त, सिंहभद्र, कुम्भोज, अकम्पन, पतंगत, प्रभंजन और प्रभास। इसके सिवाय इनके सात पुत्रियाँ भी थीं। सबसे बड़ी पुत्रीका नाम प्रियकारिणी था जिसका विवाह कुण्डपुर नरेश सिद्धार्थ से हुआ था और उन्हें ही भगवान् महावीरके माता-पिता बननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। दूसरी पुत्री थी मृगावती जिसका विवाह वत्सदेशकी राजधानी कौशाम्बीके चन्द्रवंशी राजा शतानीकके साथ हुआ। तीसरी पुत्री सुप्रभा दशार्ण देश (विदिशा जिला) की राजधानी हेमकक्षके राजा दशरथको ब्याही गयी। चौथी पुत्री प्रभावती कच्छ देशकी रोरुका नामक नगरीके राजा उदयनकी रानी हुई। यह अत्यन्त शीलव्रता होनेके कारण शीलवतीके नामसे भी प्रसिद्ध हुई। चेटककी पाँचवीं पुत्रीका नाम ज्येष्ठा था। उसकी याचना गन्धर्व देशके महीपुर नगरवर्ती राजा सात्यकिने की। किन्तु चेटक राजाने किसी कारण यह विवाह-सम्बन्ध उचित नहीं समझा। इसपर क्रुद्ध होकर राजा सात्यकिने चेटक राज्यपर आक्रमण किया। किन्तु वह युद्धमें हार गया और लज्जित होकर उसने दमवर नामक मुनिसे मुनिदीक्षा धारण कर ली। ज्येष्ठा और छठी पुत्री चेलनाका चित्रपट देखकर मगधराज श्रेणिक उनपर मोहित हो गये, और उनकी याचना उन्होंने चेटक नरेशसे की। किन्तु श्रेणिक इस समय आयुमें अधिक हो चुके थे, इस कारण चेटकने उनसे अपनी पुत्रियोंका विवाह स्वीकार नहीं किया। इससे राजा श्रेणिकको बहुत दुःख हुआ। इसकी चर्चा उनके मन्त्रियोंने ज्येष्ठ राजकुमार अभयकुमारसे की। अभयकुमारने एक व्यापारीका वेष धारण कर वैशालीके राजभवनमें प्रवेश किया, और उक्त दोनों कुमारियोंको राजा श्रेणिकका चित्रपट दिखाकर उनपर मोहित कर लिया। उसने सुरंग मार्गसे दोनोंका अपहरण करनेका प्रयत्न किया। चेलनाने आभूषण लानेके बहाने ज्येष्ठाको तो अपने निवास स्थानकी ओर भेज दिया और स्वयं अभयकुमारके साथ निकलकर राजगृह आ गयी, तथा उसका श्रेणिक राजा से विवाह हो गया। उधर जब ज्येष्ठाने देखा कि उसकी बहन उसे धोखा देकर छोड़ गयी तो उसे बड़ी विरक्ति हुई और उसने एक आर्यिकाके पास जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। चेटककी सातवीं पुत्रीका नाम चन्दना

था। एक बार जब वह अपने परिजनोंके साथ उपवनमें क्रीड़ा कर रही थी तब मनोवेग नामक एक विद्याधरने उसे देखा और वह उसके सौन्दर्य पर मोहित हो गया। उसने छिपकर चन्दनाका अपहरण कर लिया। किन्तु अपनी पत्नी मनोवेगाके कोपसे भयभीत होकर उसने चन्दनाको इरावती नदीके दक्षिण तटवर्ती भूतरमण नामक वनमें छोड़ दिया। वहाँ उसकी भेंट एक श्यामांक नामक भीलसे हुई। वह उसे सम्मानपूर्वक अपने सिंह नामक भीलराजके पास ले गया। भीलराजने उसे कौशाम्बीके एक धनी व्यापारी सेठ ऋषभसेनके कर्मचारी सिंहवीरको सौंप दी, और वह उसे अपने सेठके पास ले आया। सेठकी पत्नी भद्राने ईर्ष्यावश अपनी बन्दिनी दासी बनाकर रखा। इसी अवस्थामें एक दिन जब उस नगरमें भगवान् महावीरका आगमन हुआ, तब चन्दनाने बड़ी भक्तिसे उन्हें आहार कराया। इस प्रसंगसे कौशाम्बी नगरमें चन्दनाकी ख्याति हुई, और उसके विषयमें उसकी बड़ी बहन रानी मृगावतीको भी खबर लगी। वह अपने पुत्र राजकुमार उदयनके साथ सेठके घर आयी, और चन्दनाको अपने साथ ले गयी। फिर चन्दनाने वैराग्य भावसे महावीर भगवान्की शरणमें जाकर दीक्षा ग्रहण कर ली, और अन्ततः वही भगवान्के आर्यिका-संघकी अग्रणी हुई।

वैशालीनरेश चेटक तथा उनके गृह-परिवार व सम्पत्तिका इतना वर्णन जैन-पुराणोंमें पाया जाता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि वैशालीके नरेश चेटक महावीरके नाना थे, मगधनरेश श्रेणिक तथा कौशाम्बीके राजा शतानीक उनके मातृ-स्वसा-पति (मौसिया) थे, एवं कौशाम्बीनरेश शतानीकके पुत्र उनके मातृ-स्वसापुत्र (मौसयाते भाई) थे।

(ख) मगध-नरेश श्रेणिक-बिम्बिसार

मगध देशके राजा श्रेणिकका भगवान् महावीरसे दीर्घकालीन और घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है। बहुत-सी जैन पौराणिक परम्परा तो श्रेणिकके प्रश्न और महावीर अथवा उनके प्रमुख गणधर इन्द्रभूतिके उत्तरसे ही प्रारम्भ होती है। उनका बहुत-सा वृत्तान्त प्रस्तुत ग्रन्थ की सन्धि छहसे ग्यारह तक पाया जायेगा। इस नरेशकी ऐतिहासिकतामें कहीं कोई सन्देह नहीं है। जैन ग्रन्थोंके अतिरिक्त बौद्ध साहित्यमें एवं वैदिक परम्पराके पुराणोंमें भी इनका वृत्तान्त व उल्लेख पाया जाता है। दिगम्बर जैन परम्परामें तो उनका उल्लेख केवल श्रेणिक नामसे पाया जाता है, किन्तु उन्हें भिम्भा अर्थात् भेरी बजानेकी भी अभिरुचि थी (देखिए सन्धि ७,२) और इस कारण उनका नाम भिम्भसार अथवा भम्भसार भी प्रसिद्ध हुआ पाया जाता है। श्वेताम्बर ग्रन्थोंमें अधिकतर इसी नामसे इनका उल्लेख

किया गया है। इसी शब्दका अपभ्रंश रूप बिम्बिसार या बिम्बसार प्रतीत होता है, और बौद्ध परम्परामें श्रेणिकके साथ-साथ अथवा पृथक् रूपसे यही नाम उल्लिखित हुआ है। बौद्ध ग्रन्थ उदान अट्ठकथा १०४ के अनुसार बिम्बि सुवर्णका एक नाम है, और राजाका शरीर स्वर्णके समान-वर्ण होनेके कारण उसका बिम्बिसार नाम पड़ा। एक तिब्बतीय परम्परा ऐसी भी है कि इस राजाकी माताका नाम बिम्बि था और इसी कारण उसका नाम बिम्बिसार पड़ा। किन्तु जान पड़ता है कि ये व्युत्पत्तियाँ उक्त नामपर-से कल्पित की गयी हैं। श्रेणिक नामकी भी अनेक प्रकारसे व्युत्पत्ति की गयी है। हेमचन्द्र कृत अभिधान-चिन्तामणिमें 'श्रेणीः कारयति श्रेणिको मगधेश्वरः' इस प्रकार जो श्रेणियोंकी स्थापना करे वह श्रेणिक, यह व्युत्पत्ति बतलायी गयी है। बौद्ध परम्पराके एक विनय पिटककी प्रतिमें यह भी कहा पाया जाता है कि चूँकि बिम्बिसारको उसके पिताने अठारह श्रेणियोंमें अवतरित किया था, अर्थात् इनका स्वामी बनाया था, इस कारणसे उसकी श्रेणिक नामसे प्रसिद्धि हुई। अर्द्धमागधी जम्बूद्वीप पण्णत्तिमें ९ नारू और ९ कारू ऐसी अठारह श्रेणियोंके नाम भी गिनाये गये हैं। नौ नारू हैं—कुम्हार, पटवा, स्वर्णकार, सूतकार, गन्धर्व (संगीतकार), कासवग, मालाकार, कच्छकार और तम्बूलि। तथा नौ कारू हैं—चर्मकार, यन्त्रपीडक, गंछियां, छिम्पी, कंसार, सेवक, ग्वाल, भिल्ल और धीवर। यह भी सम्भव है कि प्राकृत ग्रन्थोंमें इनका नाम जो 'सेनीय' पाया जाता है उसका अभिप्राय सैनिक या सेनापतिसे रहा हो और उसका संस्कृत रूपान्तर भ्रमवश श्रेणिक हो गया हो[1]।

प्रस्तुत ग्रन्थके अनुसार मगध देश राजगृह नगरके राजा प्रश्रेणिक या उपश्रेणिककी एक रानी चिलातदेवी (किरातदेवी) से चिलातपुत्र या किरातपुत्र नामक कुमार उत्पन्न हुआ। उसने उज्जैनीके राजा प्रद्योतको छलसे बन्दी बनाकर अपने पिताके सम्मुख उपस्थित कर दिया। इससे पूर्व उद्योतके विरुद्ध राजाने जो औदायनको भेजा था उसे उद्योतने परास्त कर अपना बन्दी बना लिया था। चिलातपुत्रकी सफलतासे उसके पिताको बहुत प्रसन्नता हुई और उन्होंने उसे ही अपना उत्तराधिकारी बनाकर उसका राज्याभिषेक कर दिया। किन्तु वह राज्यकार्यमें सफल नहीं हुआ और अनीतिपर चलने लगा। अतः मन्त्रियों और सामन्तोंने निर्वासित राजकुमार श्रेणिकको कांचीपुरसे बुलवाया। श्रेणिकने आकर किरातपुत्रको पराजित कर राज्यसे निकाल दिया। चिलातपुत्र वनमें चला गया और वहाँ ठगों और लुटेरोंका नायक बन गया। तब पुनः एक बार श्रेणिकने उसे

---

१. मुनि नगराज : आगम और त्रिपिटक, पृष्ठ ३२४।

परास्त किया। अन्ततः चिलातपुत्रने विरक्त होकर मुनि-दीक्षा धारण कर ली। इसी अवस्थामें वह एक शृगालोंका भक्ष्य बनकर स्वर्गवासी हुआ।

श्रेणिकका जन्म उपश्रेणिककी दूसरी पत्नी सुप्रभादेवीसे हुआ था। वह बहुत विलक्षण-बुद्धि था। पिता द्वारा जो राज्यकी योग्यता जानने हेतु राजकुमारोंकी परीक्षा की गयी उसमें श्रेणिक ही सफल हुआ। तथापि राजकुमारोंमें वैर उत्पन्न होनेके भयसे उसने श्रेणिकको राज्यसे निर्वासित कर दिया। पहले तो श्रेणिक नन्दग्राममें पहुँचा, और फिर वहाँसे भी परिभ्रमण करता हुआ तथा अपनी बुद्धि और साहसका चमत्कार दिखलाता हुआ कांचीपुरी पहुँच गया। मगधमें राजा चिलातपुत्रके अन्यायसे त्रस्त होकर मन्त्रियोंने श्रेणिकको आमन्त्रित किया और उसे मगधका राजा बनाया।

एक दिन राजा अपनी राजधानीके निकट वनमें आखेटके लिए गया। वहाँ उसने एक मुनिको ध्यानारूढ़ देखकर उसे एक अपशकुन समझा और क्रुद्ध होकर उनपर अपने शिकारी कुत्तोंको छोड़ दिया। किन्तु वे कुत्ते भी मुनिके प्रभावसे शान्त हो गये और राजाके बाण भी उन्हें पुष्पके समान कोमल होकर लगे। तब राजाने अपना क्रोध निकालनेके लिए एक मृत सर्प मुनिके गलेमें डाल दिया। इस घोर पापसे श्रेणिकको सप्तम नरकका आयु-बन्ध हो गया। किन्तु जब उन्होंने देखा कि उनके द्वारा इतने उपसर्ग किये जानेपर भी उन मुनिराजके लेशमात्र भी राग-द्वेष उत्पन्न नहीं हुआ, तब उनके मनोगत भावोंमें परिवर्तन हो गया। जब मुनिने देखा कि राजाका मन शान्त हो गया है, तब उन्होंने अपनी मधुर वाणीसे उन्हें आशीर्वाद दिया और धर्मोपदेश भी प्रदान किया। बस, यहीं राजा श्रेणिकका मिथ्यात्व भाव दूर हो गया और उन्हें क्षायिक सम्यक्त्वकी प्राप्ति हो गयी। वह मुनिराजके चरणोंमें नमस्कार कर प्रसन्नतासे घर लौटे।

एक दिन राजा श्रेणिकको समाचार मिला कि विपुलाचल पर्वतपर भगवान् महावीरका आगमन हुआ है। इसपर राजा भक्तिपूर्वक वहाँ गया और उसने भगवान्की वन्दना-स्तुति की। इस धर्म-भावनाके प्रभावसे उनके सम्यक्त्वकी परिपुष्टि होकर सप्तम नरककी आयु घटकर प्रथम नरककी शेष रही, और उसे तीर्थंकर नामकर्मका बन्ध भी हो गया। इस अवसरपर राजा श्रेणिकने गौतम गणधरसे पूछा कि हे भगवन्, यद्यपि मेरे मनमें जैन मतके प्रति इतनी महान् श्रद्धा हो गयी है, तथापि व्रत-ग्रहण करनेकी मेरी प्रवृत्ति क्यों नहीं होती? इसका गणधरने उत्तर दिया कि पहले तुम्हारी भोगोंमें अत्यन्त आसक्ति रही है व गाढ़ मिथ्यात्वका उदय रहा है। तुमने दुश्चरित्र भी किया है और महान् आरम्भ भी। इससे जो तीव्र पाप उत्पन्न हुआ उससे तुम्हारी नरककी आयु बँध चुकी है।

देवायुको छोड़कर अन्य किसी भी गतिकी आयु जिसने बांध ली है उसमें व्रत-ग्रहण करनेकी योग्यता नहीं रहती। किन्तु ऐसा जीव सम्यग्दर्शन धारण कर सकता है। यही कारण है कि तुम सम्यक्त्वी तो हो गये, किन्तु व्रत-ग्रहण नहीं कर पा रहे।

> सर्वं निधाय तच्चित्ते श्रद्धाभूम्महती मते।
> जैने कुतस्तथापि स्यान्न मे व्रत-परिग्रहः॥
> इत्यनुश्रेणिकप्रश्नादवादीद् गणनायकः।
> भोग-संजननाद्गाढ-मिथ्यात्वानुभवोदयात्॥
> दुश्चरित्रान्महारम्भात्संचित्यैनो निकाचितम्।
> नारकं बद्धवानायुस्त्वं प्रागेवात्र जन्मनि॥
> बद्धदेवायुषोऽन्यायुर्नाङ्गी स्वीकुरुते व्रतम्।
> श्रद्धानं तु समाधत्ते तस्मात्त्वं नाग्रहीर्व्रतम्॥
>
> (उत्तरपुराण ७४, ४३३–३६)

इसी समय गौतम गणधर ने राजा श्रेणिक को यह भी बतला दिया कि भगवान् महावीर के निर्वाण होने पर जब चतुर्थकाल की अवधि केवल तीन वर्ष, आठ माह और पन्द्रह दिन शेष रह जायेगी तभी उसकी मृत्यु होगी। श्रेणिक इतना दृढ़ सम्यक्त्वी हो गया था कि सुरेन्द्रने भी उसकी प्रशंसा की। किन्तु इसपर एक देवको विश्वास नहीं हुआ और वह राजाकी परीक्षा करने आया। जब राजा एक मार्गसे कहीं जा रहा था तब उस देवने मुनिका भेष बनाया और वह जाल हाथमें लेकर मछलियाँ पकड़ने लगा। राजाने आकर मुनिकी वन्दना की, और प्रार्थना की कि मैं आपका दास उपस्थित हूँ तब आप क्यों यह अधर्म-कार्य कर रहे हैं। यदि मछलियोंकी आवश्यकता ही है तो मैं मछलियाँ पकड़ देता हूँ। देवने कहा, नहीं-नहीं, अब मुझे इससे अधिक मछलियोंकी आवश्यकता नहीं। यह वृत्तान्त नगरमें फैल गया, और लोग जैन-धर्मकी निन्दा करने लगे। तब राजा श्रेणिकने एक दृष्टान्त उपस्थित किया। उन्होंने अपनी सभाके राजपुत्रों-को जीवनवृत्ति सम्बन्धी लेख अपनी मुद्रासे मुद्रित कर और उसे मलावलिप्त कर प्रदान किया। उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से इस लेखको अपने मस्तकपर चढ़ाकर स्वीकार किया। तब राजाने उनसे पूछा कि इन मलिन लेखों को तुमने अपने मस्तकपर क्यों चढ़ाया? उन्होंने उत्तर दिया कि जिस प्रकार सचेतन जीव मलिन शरीरसे लिप्त होते हुए भी वन्दनीय है, उसी प्रकार आपका यह लेख मलिन होते हुए भी हमारे लिए पूज्य है। तब राजाने हँसकर उन्हें बतलाया कि

इसी प्रकार धर्म-मुद्राके धारक मुनियों में यदि कोई दोष भी हो, तो उनसे घृणा नहीं, किन्तु उनकी विनय ही करना चाहिए, और विनम्रतासे उन्हें दोषोंसे मुक्त कराना चाहिए। राजाकी ऐसी धर्म-श्रद्धाको प्रत्यक्ष देखकर वह देव बहुत प्रसन्न हुआ और राजाको एक उत्तम हार देकर स्वर्गलोकको चला गया। यह कथानक इस बातका प्रमाण है कि जबसे श्रेणिकने जैन-धर्म स्वीकार किया तबसे उनकी धार्मिक श्रद्धा उत्तरोत्तर दृढ़ होती गयी और वे उससे कभी विचलित नहीं हुए।

(ग) श्रेणिक-सुत अभयकुमार

श्रेणिक जब राजकुमार ही थे और राज्यसे निर्वासित होकर चिलातपुत्रके राज्यकालमें कांचीपुरमें निवास कर रहे थे तब उनका विवाह वहाँके एक द्विजकी कन्या अभयमतीसे हो गया था। उससे उनके अभयकुमार नामका पुत्र उत्पन्न हुआ जो अत्यन्त विलक्षण-बुद्धि था। उसने ही उपाय करके अपने पिताका विवाह उनकी इच्छानुसार चेलनादेवीसे कराया। वह भी श्रेणिकके साथ-साथ भगवान् महावीरके समवसरणमें गया था, और न केवल दृढ़-सम्यक्त्वी, किन्तु धर्मका अच्छा ज्ञाता बन गया था। यहाँतक कि स्वयं राजा श्रेणिकने उससे भी धर्मका स्वरूप समझनेका प्रयत्न किया था। अन्ततः अभयकुमारने भी मुनि-दीक्षा ग्रहण कर ली, और वे मोक्षगामी हुए। (उत्तरपुराण ७४, ५२६--२७ आदि)

(घ) श्रेणिक-सुत वारिषेण

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, राजा श्रेणिकका चेलनादेवीसे विवाह उनकी ढलती हुई अवस्थामें उनके ज्येष्ठ पुत्र अभयकुमारके प्रयत्नसे ही हुआ था। चेलनाने वारिषेण नामक पुत्रको जन्म दिया। वह बाल्यावस्था से ही धार्मिक प्रवृत्तिका था, और उत्तम श्रावकोंके नियमानुसार श्मशानमें जाकर प्रतिमायोग किया करता था। एक बार विद्युच्चर नामक अंजनसिद्ध चोरने अपनी प्रेयसी गणिकासुन्दरीको प्रसन्न करनेके लिए राजभवनमें प्रविष्ट होकर चेलनादेवीके हारका अपहरण किया। किन्तु उसे वह अपनी प्रियाके पास तक नहीं ले जा सका। राजपुरुष उस चन्द्रहास हारकी चमकको देखते हुए उसका पीछा करने लगे। यह बात उस चोरने जान ली, और वह श्मशानमें ध्यानारूढ़ वारिषेण कुमारके चरणोंमें उस हारको फेंककर भाग गया। राज-सेवकोंने इसकी सूचना राजाको दी। राजाने वारिषेणको ही चोर जानकर क्रोधवश उसे मार डालनेकी आज्ञा दे दी। किन्तु वारिषेणके धर्म-प्रभावसे उसपर राजपुरुषोंके अस्त्र-शस्त्र नहीं चले। उसका वह दिव्य प्रभाव देखकर राजाने उन्हें मनाकर राज-

महलमें लानेका प्रयत्न किया, किन्तु वे नहीं आये और महाव्रती मुनि हो गये। उन्होंने पलाससेड़ नामक ग्राममें भिक्षा-निमित्त जाकर अपने एक बालसखाका भी सम्बोधन किया और उसे भी मुनि बना लिया। एक बार उसका मन पुनः अपनी पत्नीकी ओर आकर्षित हुआ। किन्तु वारिषेणने उसे अपनी माता चेलनाके महलमें ले जाकर अपनी निरासक्ति भावनाके द्वारा पुनः मुनिव्रतमें दृढ़ कर दिया।

(ङ) श्रेणिक-सुत गजकुमार

राजा श्रेणिककी एक अन्य पत्नी धनश्री नामक थी। उसे जब पाँच मासका गर्भ था तब उसे यह दोहला उत्पन्न हुआ कि आकाश मेघाच्छादित हो, मन्द-मन्द वृष्टि हो रही हो, तब वह अपने पतिके साथ हाथीपर बैठकर परिजनोंके सहित महोत्सवके साथ वनमें जाकर क्रीडा करे। उस समय वर्षाकाल न होते हुए भी अभयकुमारने अपने एक विद्याधर मित्रकी सहायतासे अपनी विमाताका यह दोहला सम्पन्न कराया। यथासमय रानी धनश्रीने गजकुमार नामक पुत्रको जन्म दिया। जब वह युवक हुआ तब एक दिन उसने भगवान् महावीर की शरणमें जाकर धर्मोपदेश सुना और दीक्षा ग्रहण कर ली। एक बार गजकुमार मुनि कलिंग देशमें जा पहुँचे और वहाँकी राजधानी दन्तीपुरकी पश्चिम दिशामें एक शिलापर विराजमान होकर आतापन योग करने लगे। वहाँके राजाको ऐसे योगका कोई ज्ञान नहीं था। अतः उसने अपने मन्त्रीसे पूछा कि यह पुरुष ऐसा आताप क्यों सह रहा है? उनका मन्त्री बुद्धदास जैन-धर्म-विरोधी था। अतः उसने राजाको सुझाया कि इस पुरुषको वात रोग हो गया है और वह अपने शरीरमें गरमी लानेके लिए ऐसा कर रहा है। राजाने करुणाभावसे पूछा, इसकी इस व्याधिको कैसे दूर किया जाये? मन्त्रीने उपाय बताया कि जब यह अनाथ पुरुष नगरमें भिक्षा माँगने जाये, तब उसके बैठनेकी शिलाको अग्निसे खूब तपा दिया जाये जिससे उसके ताप द्वारा उसपर बैठनेवालेकी प्रभंजन वायु उपशान्त हो जायेगी। राजाकी आज्ञासे वैसा ही किया गया। परिणाम यह हुआ कि जब गजकुमार मुनि भिक्षासे लौटकर उस शिलापर विराजमान हुए तब वे उसकी तीव्र तापके उपसर्गको सहकर मोक्षगामी हो गये। पश्चात् वहाँ देवोंका आगमन हुआ और वह मन्त्री, राजा तथा अन्य सहस्रों जन धर्ममें दीक्षित हुए।

(च) कौशाम्बीनरेश शतानीक व उदयन तथा उज्जैनीनृप चण्डप्रद्योत

चन्दनाके वृत्तान्तोंमें आया है कि वैशालीनरेश चेटककी सात पुत्रियोंमें-से एक मृगावती कौशाम्बीके सोमवंशी नरेश शतानीकसे ब्याही गयी थी। यह

राजधानी इलाहाबादसे कोई ३५ मील दक्षिण-पश्चिमकी ओर वहीं थी जहाँ अब कोसम नामका ग्राम है। जब महावीर कौशाम्बी आये और चन्दनाने उन्हें आहार दिया, तब रानी मृगावतीने भी आकर अपनी उस कनिष्ठ भगिनीका अभिनन्दन किया। शतानीक के पुत्र थे उदयन थे जिनका विवाह उज्जैनीनरेश चण्डप्रद्योतकी पुत्री वासवदत्तासे हुआ था। बौद्ध साहित्यिक परम्परानुसार उदयनका और बुद्धका जन्म एक ही दिन हुआ था। तथा एक सुदृढ़ जैन परम्परा यह है कि जिस रात्रि प्रद्योतके मरणके पश्चात् उनके पुत्र पालकका राज्याभिषेक हुआ उसी रात्रि महावीरका निर्वाण हुआ था। इस प्रकार ये उल्लेख उक्त दोनों महापुरुषोंके समसामयिकत्व तथा तात्कालिक राजनैतिक स्थितियोंपर उपयोगी प्रकाश डालते हैं।

१४. महावीर-जीवन-चरित्र विषयक साहित्य का विकास

(छ) प्राकृतमें महावीर-साहित्य

भगवान् महावीरका निर्वाण ई. सन् ५२७ वर्ष पूर्व हुआ और उसी समयसे उनके जीवन-चरित्र सम्बन्धी जानकारी संगृहीत करना आरम्भ हो गया। भगवान्के प्रमुख शिष्य इन्द्रभूति गौतम थे जो धवलाके रचयिता वीरसेनके अनुसार चारों वेदों और छहों अंगोंके ज्ञाता शीलवान् उत्तम ब्राह्मण थे। ऐसे विद्वान् शिष्यके लिए स्वाभाविक था कि वे अपने गुरुके जीवन और उपदेशोंको सुव्यवस्थित रूपसे संगृहीत करें। उन्होंने यह सब सामग्री बारह अंगोंमें संकलित की जिसे द्वादश गणि-पिटक भी कहा गया है। इनके बारहवें अंग दृष्टिवादमें एक अधिकार प्रथमानुयोग भी था जिसमें समस्त तीर्थंकरों व चक्रवर्तियों आदि महापुरुषोंकी वंशावलियोंका पौराणिक विवरण संग्रह किया गया जिसमें तीर्थंकर महावीर और उनके नाथ या ज्ञातृवंशका इतिहास भी सम्मिलित था।

दुर्भाग्यतः इन्द्रभूति गौतम द्वारा संगृहीत वह साहित्य अब अप्राप्य है। किन्तु उसका संक्षिप्त विवरण समस्त उपलभ्य अर्द्धमागधी साहित्यमें बिखरा हुआ पाया जाता है। समवायांग नामक चतुर्थ अंगमें चौबीसों तीर्थंकरोंके माता-पिता, जन्म-स्थान, प्रव्रज्या-स्थान, शिष्य-वर्ग, आहार-दाताओं आदिका परिचय कराया गया है। प्रथम श्रुतांग आचारांगमें महावीरकी तपस्याका बहुत मार्मिक वर्णन पाया जाता है। पाँचवें श्रुतांग व्याख्या-प्रज्ञप्तिमें जो सहस्रों प्रश्नोत्तर महावीर और गौतमके बीच हुए ग्रथित हैं उनमें उनके जीवन व तात्कालिक अन्य घटनाओंकी अनेक झलकें मिलती हैं। उनके समयमें पार्श्वापत्यों अर्थात् पार्श्वनाथके अनुयायियोंका बाहुल्य था तथा आजीवक सम्प्रदायके संस्थापक मंखलि-गोशाल उनके

सम-सामयिक थे। उसी कालमें मगध और वैशालीके राज्योंमें बड़ा भारी संग्राम हुआ था जिसमें महाशिला-कंटक वे रथ-मुसल नामक यन्त्र-चालित शस्त्रोंका उपयोग किया गया इत्यादि। सातवें अंग उपासकाध्ययनमें महावीरके जीवनसे सम्बद्ध वैशाली ज्ञातृ-षण्डवन कोल्लाग सन्निवेश, कर्मारग्राम, वाणिज्यग्राम आदि स्थानोंके ऐसे उल्लेख प्राप्त हैं जिनसे उनके स्थान-निर्णयमें सहायता मिलती है। नवें श्रुतांग अनुत्तरौपपातिकमें तीर्थंकरके सम-सामयिक मगध-नरेश श्रेणिककी चेलना, धारिणी व नन्दा नामक रानियों तथा उनके तेवीस राजकुमारोंके दीक्षित होनेके उल्लेख हैं। मूलसूत्र उत्तराध्ययन व दशवैकालिकमें महावीरके मूल दार्शनिक, नैतिक व आचारसम्बन्धी विचारोंका विस्तारसे परिचय प्राप्त होता है। कल्पसूत्रमें महावीरका व्यवस्थित रीतिसे जीवन-चरित्र मिलता है। यह समस्त साहित्य अर्धमागधी भाषामें है।

शौरसेनी प्राकृतमें यतिवृषभ कृत तिलोय-पण्णत्ति (त्रिलोक-प्रज्ञप्ति) ग्रन्थ बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि उसमें प्राकृत गाथाओंमें हमें तीर्थंकरों व अन्य शलाका-पुरुषोंके चरित्र नामावली-निबद्ध प्राप्त होते हैं। इनमें महावीरके जीवन-विषयक प्रायः समस्त बातोंकी जानकारी संक्षेपमें स्मरण रखने योग्य रीतिसे मिल जाती है। (सोलापुर, १९५२)

इसी नामावली-निबद्ध सामग्रीके आधारपर महाराष्ट्री प्राकृतके आदि महाकाव्य पउम-चरियंमें महावीरका संक्षिप्त जीवन-चरित्र, रामचरित्रकी प्रस्तावनाके रूपमें प्रस्तुत किया गया है (भावनगर, १९१४)। संघदास और धर्मदास गणी कृत वसुदेव-हिण्डी (४–५वीं शती) प्राकृत कथा साहित्यका बहुत ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें भी अनेक तीर्थंकरोंके जीवन-चरित्र प्रसंगवश आये हैं जिनमें वर्धमान स्वामीका भी है (भावनगर, १९३०-३१)। शीलांक कृत चउपन्न-महापुरिस-चरियं (वि. सं. ९२५) में भी महावीरका जीवन-चरित्र प्राकृत गद्यमें वर्णित है (वाराणसी १९६१)।

भद्रेश्वर कृत कहावलि (१२वीं शती) में सभी त्रेसठ शलाकापुरुषोंके चरित्र सरल प्राकृत गद्यमें वर्णित हैं (गा. ओ. सी.)। पूर्णतः स्वतन्त्र प्रबन्ध रूपसे महावीरका चरित्र गुणचन्द्र सूरि द्वारा महावीर-चरियंमें वर्णित है (वि. सं. ११३९)। इसमें आठ प्रस्ताव हैं जिनमें प्रथम चारमें महावीरके मरीचि आदि पूर्व भवोंका विस्तारसे वर्णन है (बम्बई १९२९)। गुणचन्द्रके ही सम-सामयिक देवेन्द्र अपरनाम नेमिचन्द्र सूरिने भी पूर्णतः प्राकृत पद्यबद्ध महावीर-चरियंकी रचना की (वि. सं. ११४१)। इसमें मरीचिसे लेकर महावीर तक छब्बीस भवोंका वर्णन है जिसकी कुल पद्य-संख्या लगभग २४०० है (भावनगर, वि. सं.

१९७३)। इनसे कुछ ही समय पश्चात् (वि. सं. ११६८ के लगभग) देवभद्र गणीने भी महावीर-चरियंकी रचना की (अहमदाबाद, १९४५)।

(ज) संस्कृतमें महावीर-साहित्य

तत्त्वार्थसूत्र-जैसी सैद्धान्तिक रचनाओंको छोड़ जैन साहित्य सृजनमें संस्कृत भाषाका उपयोग अपेक्षाकृत बहुत पीछे किया गया। (हम जानते हैं कि सिद्धसेन दिवाकरने अपनी पाँच स्तुतियाँ भगवान् महावीरको ही उद्देशित करके लिखी हैं। आरम्भकालीन काव्यशैलीमें लिखित जटिल या जटाचार्यके 'वरांगचरित' तथा रविषेणके 'पद्मपुराण' (ई. स. ६७६) की ओर संस्कृत जैन साहित्यमें हम निर्देश कर सकते हैं। ये दोनों 'कुवलयमाला' (ईसाके ७७९) से भी पूर्व-कालीन हैं।) तीर्थंकरोंके जीवन-चरित्र पर महापुराण नामक सर्वांग-सम्पूर्ण रचना जिनसेन और उनके शिष्य गुणभद्र द्वारा शक सं. ८२० के लगभग समाप्त की गयी थी। इसके प्रथम ४७ पर्व आदिपुराणके नामसे प्रसिद्ध हैं जिनमें प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव और उनके पुत्र प्रथम चक्रवर्ती भरतका जीवन-चरित्र वर्णित है। ४८ से ७६ तकके पर्व उत्तरपुराण कहलाता है जिसकी पूरी रचना गुणभद्र-कृत है। और उसमें शेष तेवीस तीर्थंकरों व अन्य शलाकापुरुषोंके जीवनवृत्त हैं। इनमें तीर्थंकर महावीरका चरित्र अन्तिम तीन सर्गोंमें (७४ से ७६ तक) सुन्दर पद्योंमें है जिनकी कुल पद्य-संख्या ५४९ + ६९१ + ५७८ = १८१८ है (वाराणसी, १९५४)। लगभग पौने तीन सौ वर्ष पश्चात् ऐसे ही एक विशाल त्रिषष्टि-शलाका-पुरुष-चरितकी रचना हेमचन्द्राचार्यने १० पर्वोंमें की जिसका अन्तिम पर्व महावीर-चरित्रविषयक है (भावनगर, १९१३)। एक महापुरुष-चरित स्वोपज्ञ टीका सहित मेरुतुंग द्वारा रचा गया जिसके पाँच सर्गोंमें क्रमशः ऋषभ, शान्ति, नेमि, पार्श्व और महावीरके चरित्र वर्णित हैं। यह रचना लगभग १३०० ई. की है। काव्यकी दृष्टिसे शक सं. ९१० में असग द्वारा १८ सर्गों में रचा गया वर्धमान चरित है (सोलापुर १९३१)। किन्तु यहाँ भी प्रथम सोलह सर्गोंमें महावीरके पूर्व भवोंका वर्णन है और उनका जीवन-वृत्त अन्तिम दो सर्गोंमें। सकलकीर्ति-कृत वर्धमान पुराणमें १९ सर्ग हैं और उसकी रचना वि. सं. १५१८ में हुई। पद्मनन्दि, केशव और वाणीवल्लभ द्वारा भी संस्कृतमें महावीर चरित्र लिखे जानेके उल्लेख पाये जाते हैं।

(झ) महावीर-जीवनपर अपभ्रंश साहित्य

समस्त तीर्थंकरों व अन्य शलाकापुरुषोंके चरित्र पर अपभ्रंशमें विशाल और श्रेष्ठ तथा सर्व काव्य-गुणोंसे सम्पन्न रचना पुष्पदन्त कृत महापुराण है (शक सं०

८८७)। इसमें कुल १०२ सन्धियाँ हैं, जिनमें महावीरका जीवन-चरित्र सन्धि ९५ से अन्त तक वर्णित है (बम्बई १९४१)। स्वतन्त्र रूपसे यह चरित्र कवि श्रीधर द्वारा रचा गया। उनकी एक अन्य रचना पाराणाह-चरिउका समाप्ति-काल वि. सं. ११८९ उल्लिखित है, अतः इसी कालके लगभग प्रस्तुत ग्रन्थका रचना-काल निश्चित है। श्रीधरकी अपभ्रंश रचनाएँ इस कारण भी विशेष रूपसे ध्यानाकर्षक हैं कि कविने अपनेको हरियाणा-निवासी प्रकट किया है। हरियाणा 'आभीरकाणाम्' का अपभ्रंश है जिससे वह आभीर जातिकी भूमि सिद्ध होती है, और काव्यादर्शके कर्ता दण्डीके अनुसार आभीरों आदिकी बोलीके आधारसे अपभ्रंश काव्यकी शैली विकसित हुई थी। अतः कहा जा सकता है कि पाँचवीं-छठी शतीसे लेकर बारहवीं शती तक हरियाणामें अपभ्रंश रचनाकी परम्परा प्रचलित रही। खोजसे इस प्रदेशके कवियोंकी अन्य रचनाओंका पता लगाना, तथा उनके आधारसे उस क्षेत्रकी प्रचलित बोलियोंका तुलनात्मक अध्ययन करना भाषाशास्त्र व ऐतिहासिक दृष्टिसे बहुत महत्त्वपूर्ण होगा।

विक्रम संवत् १५०० के आस-पास ग्वालियरके तोमरनरेश डूंगर सिंह और उनके पुत्र कीर्तिसिंहके राज्यकालमें कविवर रयधूने अनेक रचनाओं द्वारा अपभ्रंश साहित्यको पुष्ट किया। उनके द्वारा रचित 'सम्मइ-चरिउ' दस सन्धियोंमें पूर्ण हुआ है। नरसेन-कृत 'वड्ढमाण-कहा' की रचनाका ठीक समय ज्ञात नहीं। किन्तु इसी कविकी एक अन्य रचना 'सिरिवाल-चरिउ' की हस्तलिखित प्रति वि. सं. १५१२ की है। अतः नरसेनका रचना-काल इसके पूर्व सिद्ध होता है। जयमित्र हल्ल कृत 'वड्ढमाण-कव्व' की एक हस्तलिखित प्रति वि. सं. १५४५ की प्राप्त है। ग्रन्थके अन्तमें पद्मनन्दि मुनिका उल्लेख है जो अनुमानतः प्रभाचन्द्र भट्टारकके वे ही शिष्य हैं जिनके वि. सं. १३८५ से १४५० तकके लेख मिले हैं। कविने अपनी रचनाको 'होलिवम्म-कण्णाभरण' कहा है तथा हरिइन्दु (हरिश्चन्द्र) कविको अपना गुरु माना है।

(अ) महावीर-जीवनपर कन्नड़ साहित्य

संस्कृतमें असग विरचित 'वर्द्धमानपुराण' से अनेक कन्नड़ कवियोंको स्फूर्ति मिली है। असगका 'अगस' ऐसे ही लिखते हैं और कन्नड़में इसका अर्थ रजक (धोबी) होता है। किन्तु सचमुच 'असग' शब्द 'असंग' शब्दका जन-साधारण उच्चारण जैसा मालूम होता है। अभी-अभी दूसरे नागवर्म विरचित 'वीरवर्धमानपुराण' के एक हस्तलिखित भी प्रकाशमें आया है। इसमें सोलह सर्ग हैं, और उनमें महावीरका पूर्वभव और प्रस्तुत जीवनका वर्णन है। यह एक

चम्पूकाव्य है और इसमें कई संस्कृत वृत्तोंका उपयोग हुआ है। इसका काल सन् १०४२ है। उसके बाद आचण्णने 'वर्द्धमानपुराण' लिखा है। इनका सम्मानसूचक नाम वाणीवल्लभ था। यह एक चम्पू है और इसकी रचना संस्कृत काव्यशैलीमें हुई है। इसमें भी सोलह सर्ग हैं और कविने कई एक अलंकारोंका उपयोग किया है। इसका काल लगभग सन् ११९५ है। पद्मकविने १५२७ में जनसाधारण शैलीमें सांगत्य छन्दमें 'वर्द्धमानचरित्र' लिखा है। इसकी बारह सन्धियाँ हैं।

(ट) बौद्ध त्रिपिटक-पालि साहित्यमें महावीर

जैन आगम ग्रन्थोंमें बुद्धके कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलते। किन्तु बौद्ध त्रिपिटकमें 'निग्गंठ-नातपुत्त' (निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र) के नामसे महावीर व उनके उपदेश आदि सम्बन्धी अनेक सन्दर्भ पाये जाते हैं। इनका पता लगभग सौ वर्ष पूर्व तब चला जब लन्दनकी पालि टैक्स्ट सोसायटी तथा सेक्रेट बुक्स ऑफ दी ईस्ट नामक ग्रन्थमालाओंमें बौद्ध एवं जैन आगम ग्रन्थोंका प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। डॉ. हर्मन याकोबीने आचारांग, कल्पसूत्र, सूत्रकृतांग, उत्तराध्ययन सूत्रका अनुवाद किया (से. बु. क्र. २२ व ४५) और उनकी प्रस्तावनामें पालि-साहित्यके उन उल्लेखोंकी ओर ध्यान आकृष्ट किया जिनमें निग्गंठ-नातपुत्तके उल्लेख आये हैं। तत्पश्चात् क्रमशः ऐसे उल्लेखोंकी जानकारी बढ़ती गयी, और अन्ततः मुनि नगराजजीने 'आगम और त्रिपिटक: एक अनुशीलन' शीर्षक ग्रन्थ (कलकत्ता १९६९) में छोटे-बड़े ऐसे ४२ पालि उद्धरणोंका संकलन किया है जिनसे निस्सन्देह रूपसे सिद्ध हो जाता है कि दोनों महापुरुष सम-सामयिक थे, उनमें महावीर जेठे थे, तथा उनका निर्वाण भी बुद्धसे पूर्व हो गया था। उन्होंने पूरी छान-बीनके पश्चात् वीर-निर्वाण-काल ई. पू. ५२७ ही प्रमाणित किया है।

१५. प्रस्तुत संकलन

तीर्थंकरोंके चरित्रसम्बन्धी अपभ्रंश साहित्यमें प्राचीनतम रचना पुष्पदन्त कृत महापुराण है। चूँकि इस ग्रन्थकी रचना मान्यखेटमें उस समय हुई थी जब वहाँ राष्ट्रकूटनरेश कृष्णराज (तृतीय) का राज्य था, तथा स्वयं कविके कथनानुसार उन्होंने उसकी रचना सिद्धार्थ संवत्सरमें प्रारम्भ कर क्रोधन संवत्सरमें समाप्त की थी, अतः उसका समाप्ति-काल शक ८८७ (सन् ९६५ ई.) सुनिश्चित है।

उक्त महापुराणकी १०२ सन्धियोंमें-से अन्तिम आठ अर्थात् ९५ से १०२वीं सन्धियोंमें भगवान् महावीरका जीवन-चरित्र वर्णित है और उन्हींमें-से प्रधानतया यह संकलन किया गया है। मूलमें विषय-क्रम इस प्रकार है—महावीरके जन्मसे लेकर केवलज्ञान तककी घटनाएँ (सन्धि ९५–९७), महावीरके आर्यिका संघकी

प्रथम गणिनी चन्दनाका जीवन-वृत्त (सन्धि ९८), जीवन्धर मुनिके पूर्व भव (सन्धि ९९), जम्बूस्वामीकी दीक्षा (सन्धि १००), प्रीतिंकर-आख्यान (सन्धि १०१) तथा महावीरनिर्वाण (सन्धि १०२)। इनमें-से जीवन्धर और प्रीतिंकरके आख्यानोंको महावीरके ऐतिहासिक जीवन-वृत्तसे असम्बद्ध होनेके कारण पूर्णतया छोड़ दिया गया है, और शेष विवरणोंको इस प्रकार संक्षिप्त किया गया है कि उनमें महावीरका चरित्र निर्बाध धारा रूपसे आ जाये (सन्धि १–३) व उनके गणधर शिष्य जम्बूस्वामीका (सन्धि ४) तथा आर्यिका चन्दनाका (सन्धि ५) चरित्र स्वतन्त्र रूपसे प्रस्तुत हो जाये।

महावीरके सम-सामयिक मगधनरेश श्रेणिक बिम्बिसार थे जिनके प्रश्नोंके आधारसे ही समस्त जैनपुराण साहित्यका निर्माण माना गया है। किन्तु उनका तथा महावीरकी विशेष भक्त महारानी चेलनाका एवं श्रेणिकके पुत्रोंकी दीक्षादिका वृत्तान्त महापुराणमें नहीं आ पाया। उसकी पूर्ति सन्धि ६-११ में श्रीचन्द्र कृत कहाकोसु क्रमशः सन्धि ५०; १२, १३, १४, ३ और ४९से कर ली गयी है जिससे श्रेणिकसे पूर्वके मगधनरेश चिलातपुत्र (सन्धि ६) श्रेणिकका राज्य-लाभ, धर्मलाभ व परीक्षादि (सन्धि ७-९) एवं उनके पुत्र वारिषेण (सन्धि १०) और गजकुमार (सन्धि ११) का वृत्तान्त विविधत् समाविष्ट हो गया है। श्रीचन्द्र कृत कथाकोशका रचनाकाल वि. सं. ११२३ के लगभग (प्रकाशन अहमदाबाद, १९६९) तीर्थंकरके धर्मोपदेशके बिना यह संकलन अपूर्ण रह जाता। अतएव इस विषयका आकलन अन्तिम १२वीं सन्धिमें महापुराणकी सन्धि १०-१२ से किया गया है। इस प्रकार यद्यपि सन्धियोंकी संख्या १२ हो गयी है तथापि वे बहुत छोटी-छोटी हैं और उनमें कुल कडवकोंकी संख्या केवल ७१ है। कडवक भी प्रायः बहुत छोटे-छोटे ही हैं। प्रयत्न यह किया गया है कि अल्पकालमें ही महावीर तीर्थंकर व उनके समयकी राजनैतिक परिस्थितियोंका स्पष्ट ज्ञान पाठकको हो जावे तथा महाकविकी रचना-शैली व काव्यगुणोंकी रुचिकर जानकारी भी प्राप्त हो जाये। प्रस्तावनामें घटनाओं व महापुरुषोंसम्बन्धी विवेचन साहित्यिक परम्पराको स्पष्ट करनेकी दृष्टिसे किया गया है। मूल पाठमें समासान्तर्गत प्रत्येक शब्दको लघुरेखा द्वारा पृथक् कर दिया गया है जिससे अर्थ समझनेमें सरलता हो। कुछ स्थानों पर पाठ-संशोधन भी किया गया है, व नयी पद्धति के अनुसार ह्रस्व ए और ओ की मात्राएँ भिन्न रखी गयी हैं। अनुवाद मूलानुगामी होते हुए भी भाषाकी दृष्टिसे मुहावरेसे हीन न हो यह भी प्रयत्न किया गया है। साथ ही उसमें आये क्लिष्ट व पारिभाषिक शब्दोंको कुछ खोलकर समझानेका भी प्रयास रहा है।

इस प्रकार आशा है कि यह छोटा-सा ग्रन्थ संकलन होते हुए भी महावीर भगवान्‌के जीवन-चरित्रविषयक विशाल साहित्यमें अपना एक विशेष स्थान प्राप्त करेगा।

नयी रचनाका नामकरण भी एक समस्या होती है। विशेषतः जब एक ही विषय पर नयी-पुरानी अनेक रचनाएँ उपलब्ध हों तब उनके नाम स्पष्टतः पृथक् न होनेसे भ्रान्तियाँ उत्पन्न होती हैं। प्राकृत व अपभ्रंशमें ऊपर उल्लिखित ग्रन्थ-नामावलिमें महावीर चरिय, वड्ढमाण-चरिउ, वड्ढमाण-कहा व सम्मइ-चरिउ नाम आ चुके हैं। पुष्पदन्तने इस चरित के आदिमें 'सम्मइ' नामसे नायककी वन्दना की है व सन्धियोंकी पुष्पिकाओंमें उनके नामोल्लेख 'वीरसामि', 'वीरणाह', 'वड्ढमाण-सामि' व 'जिणिंद' रूपसे किये हैं। अतः मैंने आदि और अन्तके पुष्पिकोल्लेखोंको मिलाकर प्रस्तुत ग्रन्थको वीर-जिणिंद-चरिउ कहना उचित समझा।

– हीरालाल जैन

विषयानुक्रम

सन्धि–१

भगवान्‌का गर्भावतरण, जन्म और तप [२–२३]

कडवक

१ मंगलाचरण तथा काव्य-रचनाकी प्रतिज्ञा।
२ जम्बूद्वीप, पूर्वविदेह, पुष्कलावती देशके वनमें पुरूरव नामका शबर और शबरी।
३ शबरीका मुनिको मारनेसे शबरको रोकना और उसे मुनिका धर्मोपदेश।
४ अयोध्या नगरीके राजा भरत चक्रवर्ती।
५ भरत चक्रवर्तीकी रानी अनन्तमतीने उस शबरके जीवको मरीचि नामक पुत्रके रूपमें जन्म दिया।
६ मरीचिका जीव पुष्पोत्तर नामक स्वर्गके विमानसे आकर राजा सिद्धार्थ व रानी प्रियकारिणी त्रिशलाका पुत्र हुआ।
७ कुण्डपुरकी शोभा।
८ प्रियकारिणी देवीका स्वप्न।
९ तीर्थंकर महावीरका गर्भावतरण, जन्म तथा मन्दराचल पर अभिषेक।
१० भगवान्‌का नामकरण, स्वभाव-वर्णन, बाल-क्रीडा तथा देव द्वारा परीक्षा।
११ भगवान्‌को मुनि-दीक्षा।

सन्धि–२

केवलज्ञानोत्पत्ति [२४–३७]

१ कूलग्राममें भगवान्‌को आहारदान।
२ उज्जैनीमें भगवान्‌की रुद्र द्वारा परीक्षा।
३ रुद्रका उपसर्ग विफल हुआ।
४ कौशाम्बीमें चन्दना कुमारी द्वारा भगवान्‌का दर्शन।

कडवक

५ चन्दना द्वारा भगवान्‌को आहार-दान।
६ भगवान्‌को केवलज्ञानकी उत्पत्ति।
७ भगवान्‌के इन्द्रभूति गौतमादि एकादश गणधर।
८ भगवान्‌का मुनिसंघ सहित विपुलाचल पर्वत पर आगमन।

सन्धि–३

वीरजिनेन्द्रकी निर्वाण-प्राप्ति [३८–४५]

१ भगवान्‌का विपुलाचलसे विहार करते हुए पावापुर आगमन।
२ भगवान्‌का निर्वाण तथा उनकी शिष्य-परम्परा।
३ प्रस्तुत ग्रन्थ की पूर्व परम्परा।
४ कवि की लोक-कल्याण भावना।
५ कवि-परिचय।

सन्धि–४

जम्बूस्वामिकी-प्रव्रज्या [४६–५९]

१ राजा श्रेणिक द्वारा अन्तिम केवली विषयक प्रश्न व गौतम गणधर का उत्तर।
२ जम्बूस्वामि-विवाह व गृह में चोर प्रवेश।
३ चोरकी जम्बूस्वामीकी मातासे बातचीत और फिर जम्बूस्वामीसे वार्तालाप।
४ जम्बूस्वामी और विद्युच्चर चोरके बीच युक्तियों और दृष्टान्तों द्वारा वाद-विवाद।
५ दृष्टान्तों द्वारा वाद-विवाद चालू।
६ जन्मकूपका दृष्टान्त व जम्बूस्वामी तथा विद्युच्चरकी प्रव्रज्या।
७ जम्बूस्वामीको केवलज्ञान-प्राप्ति।

सन्धि–५

चन्दना-तपग्रहण [६०–७३]

१ राजा चेटक, उनके पुत्र-पुत्रियाँ तथा चित्रपट।
२ राजा श्रेणिकका चित्रपट देखकर चेलना पर मोहित होना और उसका राज-कुमार द्वारा अपहरण।

कडवक

३ ज्येष्ठा-वैराग्य, चेलनी-श्रेणिक-विवाह तथा चन्दनाका मनोवेग विद्याधर द्वारा अपहरण व इरावतीके तीरपर उसका त्याग।

४ चन्दनाका वनमें त्याग, भिल्लनी द्वारा रक्षण तथा कौशाम्बीके सेठ वृषभदत्तके घर आगमन।

५ सेठानी द्वारा ईर्ष्यावश चन्दनाका बन्धन, महावीरको आहारदान व तप-ग्रहण।

सन्धि–६

चिलातपुत्र-परीषह-सहन [७४-८३]

१ चिलातपुत्रका जन्म।

२ चिलातपुत्रको राज्य-प्राप्ति।

३ चिलातपुत्रका राज्यसे निष्कासन व वनवास तथा श्रेणिकका राज्याभिषेक।

४ चिलातपुत्र द्वारा कन्यापहरण, श्रेणिक द्वारा आक्रमण किये जानेपर कन्या-घात तथा वैभारगिरि पर मुनि-दर्शन।

५ मुनिका उपदेश पाकर चिलातपुत्रकी प्रव्रज्या, व्यन्तरी द्वारा उपसर्ग तथा मरकर अहमिन्द्रपद-प्राप्ति।

सन्धि–७

श्रेणिक-राज्यलाभ [८४–९१]

१ जम्बूद्वीप, भरतक्षेत्र, मगधदेश, राजगृहपुर, राजा उपश्रेणिक, रानी सुप्रभा, पुत्र श्रेणिक। सीमान्तनरेश अभिधर्मके प्रेषित अश्व द्वारा राजाका अपहरण व वनमें किरातराजकी पुत्री तिलकावतीसे विवाह।

२ किरात-कन्यासे चिलातपुत्रका जन्म। राजा द्वारा राजकुमारोंकी परीक्षा।

३ राजपुत्र श्रेणिक परीक्षामें सफल, किन्तु भ्रातृ-वैरकी आशंकासे उसका निर्वासन।

४ चिलातपुत्रका राज्याभिषेक व अन्यायके कारण मन्त्रियों द्वारा श्रेणिकका आनयन।

५ चिलातपुत्रका निर्वासन और श्रेणिकका राज्याभिषेक।

कडवक

सन्धि–८

श्रेणिक-धर्मलाभ व तीर्थंकर गोत्र-बन्ध [९२–९९]

१ राजा श्रेणिककी आखेट-यात्रा, मुनि-दर्शन व भाव-परिवर्तन ।
२ श्रेणिकराजा जैन-शासनके भक्त बनकर राजधानीमें लौटे ।
३ महावीरके विपुलाचल पर आनेकी सूचना और श्रेणिकका उनकी वन्दना हेतु गमन ।
४ महावीरका उपदेश सुनकर राजा श्रेणिकको क्षायिक-सम्यक्त्वकी उत्पत्ति ।

सन्धि–९

श्रेणिक-धर्म-परीक्षा [१००–१०५]

१ श्रेणिकके सम्यक्त्वकी परीक्षा हेतु देवका धीवर-रूप-धारण ।
२ देवमुनिके धीवर-कर्मसे लोगोंमें दिगम्बर धर्मके प्रति घृणा तथा श्रेणिक द्वारा उसका निवारण ।
३ मलिन मुद्राओंके उदाहरणसे सामन्तोंकी शंका-निवारण व देव द्वारा राजाको वरदान ।

सन्धि–१०

श्रेणिक-पुत्र वारिषेणकी योग-साधना [१०६–११३]

१ वारिषेणकी धार्मिक-वृत्ति । विद्युच्चर चोरकी प्रेयसी गणिकासुन्दरीको चेलना रानीका हार पानेका उन्माद ।
२ विद्युच्चर चोर द्वारा रानीके हारका अपहरण तथा राजपुरुषों द्वारा पीछा किये जानेपर ध्यानस्थ वारिषेणके पास हार फेंककर पलायन । राजा द्वारा वारिषेणको मार डालनेका आदेश ।
३ देवों द्वारा वारिषेणकी रक्षा । राजाके मनानेपर भी मुनि-दीक्षा एवं पलासखेड़ ग्राममें आहार ग्रहण ।
४ पुष्पडाल ब्राह्मणकी दीक्षा, मोहोत्पत्ति और उसका निवारण ।

कडवक

सन्धि–११

श्रेणिक-पुत्र गजकुमारकी दीक्षा [११४–११९]

१ श्रेणिक-पत्नी धनश्रीका गर्भधारण, दोहला तथा गजकुमारका जन्म ।
२ गजकुमारकी दीक्षा, दन्तीपुरकी यात्रा तथा वहाँ पर्वतपर आतापन योग ।
३ शिला-तापनसे उपसर्ग, गजकुमारका मोक्ष और राजा तथा मन्त्रीका जैन-धर्म-ग्रहण ।

सन्धि–१२

तीर्थंकरका धर्मोपदेश [१२०–१४३]

१ भव्योंकी प्रार्थनापर जिनेन्द्रका उपदेश—जीवोंके भेद-प्रभेद ।
२ एकेन्द्रियादि जीवोंके प्रकार ।
३ जीवोंके संज्ञी-असंज्ञी भेद व दश प्राण ।
४ गति, इन्द्रिय आदि चतुर्दश जीव-मार्गणाएँ व गुणस्थान ।
५ कर्मबन्ध व कर्मभेद-प्रभेद ।
६ कषायोंका स्वरूप तथा मोहनीय कर्मकी व अन्य कर्मोंकी उत्तर-प्रकृतियाँ ।
७ नाम, आयु, गोत्र व अन्तराय कर्मोंके भेद ।
८ सिद्ध जीवोंका स्वरूप ।
९ अजीव तत्त्वोंका स्वरूप ।
१० पुद्गल द्रव्यके गुण । उपदेश सुनकर अनेक नरेशों की प्रव्रज्या ।

वीरजिणिंदचरिउ

सन्धि १

१

विद्धंसिय-रइवइ सुरवइ-णरवइ-
फणिवइ-पयडिय-सासणु ।
पणवेप्पिणु सम्मइ णिंदिय-दुम्मइ
णिम्मल-मग्ग-पयासणु ।।ध्रुवकं।।
विणासो भवाणं मणे संभवाणं ।
दिणेसो दमाणं पहू उत्तमाणं ।
खयग्गी-णिहाणं तवाणं णिहाणं ।
थिरो मुक्क-माणो वसी जो समाणो ।
अरीणं सुहीणं सुरीणं सुहीणं ।
समेणं वरायं पमत्तं सरायं ।
चलं दुव्विणीयं जयं जेण णीयं ।
णियं णाण-मग्गं कयं सासमग्गं ।
सया णिक्कसाओ सया चत्त-माओ ।
सया संपसण्णो सया जो विसण्णो ।
पहाणो गणाणं सु-दिव्वंगणाणं ।
ण पेम्मे णिसण्णो महावीर-सण्णो ।
तमीसं जईणं जए संजईणं ।
दमाणं जमाणं खमा-संजमाणं ।
उहाणं रमाणं पबुद्धत्थ-माणं ।
दया-वड्ढमाणं जिणं वड्ढमाणं ।
सिरेणं णमामो चरित्तं भणामो ।
पुणो तस्स दिव्वं णिसामेह कव्वं ।
गणेसेहिं दिट्ठं मए किं पि सिट्ठं ।

घत्ता—पायड-रवि-दीवइ जंबू-दीवइ
पुव्व-विदेहइ मणहरि ।
सीयहिं उत्तरयलि पविमल-सरजलि
पुक्खलवइ-देसंतरि ।।१।।

सन्धि १

भगवान्‌का गर्भावतरण, जन्म और तप

१

मंगलाचरण तथा काव्य-रचनाकी प्रतिज्ञा

मैं उन सन्मति भगवान्‌को प्रणाम करता हूँ जिन्होंने कामदेवका विध्वंस किया है, जिनका शासन सुरपति, नरपति तथा नागपति द्वारा प्रकट किया गया है, जिन्होंने कुज्ञानकी निन्दा की है और निर्मल मोक्ष-मार्गका प्रकाशन किया है। वे भगवान् जन्म-मरणकी परम्पराके विनाशक हैं तथा मनुष्योंके मनमें उत्पन्न हुए अज्ञानरूपी अन्धकारको दूर करनेके लिए सूर्य समान हैं। वे प्रभु पापरूपी ईंधनको नष्ट करनेके लिए अग्नि समान उत्तम तपोंके निधान हैं। वे स्थिर हैं, मानसे मुक्त हैं और इन्द्रियों-को वशमें करनेवाले हैं, तथा शत्रु और मित्र, सुरी और सुधीजनोंपर समान दृष्टि रखते हैं। उन्होंने अपने समताभाव द्वारा, प्रमादी रागयुक्त तथा दुर्विनीत चंचल मनको पराजित कर दिया है। उन्होंने इस जगत्‌को ज्ञानके मार्गपर लगाया है, तथा शाश्वत मार्गकी स्थापना की है। वे सर्वदा कषायरहित हैं और विषादहीन हैं। उनके हर्ष भी नहीं है और मायाका भी अभाव है। वे सदैव सुप्रसन्न रहते हैं। आहार, भय आदि संज्ञाएँ उनके नहीं होतीं। वे उन तपस्विगणोंके प्रधान हैं, जिन्होंने दिव्य द्वादश अंगोंका ज्ञान प्राप्त किया है। वे महावीर नामक तीर्थंकर, उत्तम देवांग-नाओंके प्रेममें आसक्त नहीं हुए। ऐसे उन जगत् भरके मुनियों और अर्जिकाओंके स्वामी, दम, यम, क्षमा, संयम एवं अभ्युदय और निःश्रेयस्-रूप दोनों प्रकारके लक्ष्मी तथा समस्त द्रव्योंके प्रमाणके ज्ञानी, दयासे वृद्धिशील वर्धमान जिनेन्द्रको मैं अपना मस्तक झुकाकर नमन करता हूँ और उनके चरित्रका वर्णन करता हूँ। उनके इस दिव्य काव्यको सुनिए। इसका गणधरोंने तो विस्तारसे उपदेश दिया है, किन्तु मैं यहाँ थोड़ेमें कुछ वर्णन करता हूँ।

सूर्यरूपी दीपकसे प्रकाशमान इस जम्बूद्वीपके पूर्वविदेह नामक मनोहर क्षेत्रमें निर्मल जलके प्रवाहसे युक्त सीता नदीके उत्तर तटपर पुष्कलावती नामक देश है ॥१॥

२

वियसिय-सरस-कुसुम-रय-धूसरि ।
पविमल-मुक्क-कमल-छाइय-सरि ॥
णिज्झर-जल-वह-पूरिय-कंदरि ।
किंणर-कर वीणा-रव-सुंदरि ॥
केसरि-कररुह-दारिय-मयगलि ।
गिरि-गुह-णिहि-णिहित्त-मुत्ताहलि ॥
हिंडिर-कत्थूरिय-मय-परिमलि ।
कुरर-कीर-कलयंठी-कलयलि ॥
परिओसिय-विलसिय-वणयर-गणि ।
महुयर-पिय-मणहरि महुयर-वणि ॥
सबरु सु-दूसिउ दु-प्परिणामें ।
होंतउ आसि पूरुरउ णामें ॥
चंड-कंड-कोयंड-परिग्गहु ।
काल-सवरि-आलिंगिय-विग्गहु ॥
अइ-परिरक्खिय-थावर-जंगमु ।
सायरसेणु णामु जइ-पुंगमु ॥
विंधहुँ तेण तेत्थु आढत्तउ ।
जाव ण मग्गणु कह व ण चित्तउ ॥
ताम तमाल-णील-मणि-वण्णइँ ।
सिसु-करि-दंत-खंड-कय-कण्णइँ ॥
घत्ता—तण-विरइय-कीलइँ गय-मय-णीलइँ
तरु-पत्ताइ-णियत्थइँ ।
वेल्ली-कडि-सुत्तइँ पंकय-णेत्तइँ
फल-फल-पिहर-विहत्थइँ ॥२॥

३

भणिउ पुलिंदियाइँ मा धावहि ।
हा हे मूढ ण किं पि वियाणहि ॥
मिगु ण होइ बुहु देवु भडारउ ।
इहु पणविज्जइ लोय-पियारउ ॥

२

जम्बूद्वीप पूर्वविदेह पुष्कलावती देशके वनमें पुरूरव नामका शबर और शबरी

उस देशमें एक वन था, जो फूले हुए सरस पुष्पोंकी परागसे धूसर था। वहाँके सरोवर सुन्दर फूले हुए कमलोंसे आच्छादित थे। कन्दराएँ झरनोंके जलप्रवाहसे पूरित थीं। वहाँ किन्नरोंके हाथोंकी वीणाओंकी सुन्दर ध्वनि सुनाई देती थी। कहीं सिंहोंके पंजोंसे मदोन्मत्त हाथी विदारित हो रहे थे, तो कहीं पर्वतकी गुफाओंमें गज-मुक्ताओंकी निधि सुरक्षित रखी गयी थी। कहीं घूमते हुए कस्तूरी-मृगोंकी सुगन्ध आ रही थी, तो कहीं कुरर, शुक और कोकिलाओंका कलरव सुनाई दे रहा था। कहीं वनचरोंके समूह सन्तोषपूर्वक विलासमें मग्न थे, तो कहीं भ्रमरोंकी प्रिय और मनोहर ध्वनि सुनाई पड़ती थी। ऐसे उस मधुकर नामक वनमें पुरूरव नामका एक शबर रहता था। वह अत्यन्त दुर्भावनाओंसे दूषित था। एक समय जब वह अपने प्रचण्ड धनुष और बाणको लिये हुए अपनी कृष्णवर्ण शबरीके साथ उस वनमें विचरण कर रहा था, तभी उसने स्थावर और जंगम जीवोंकी यत्नपूर्वक रक्षा करनेवाले श्रेष्ठ मुनि सागरसेनको देखा। उसने तत्काल उन्हें अपने बाणसे छेद देनेका विचार किया, किन्तु वह अपने बाणको जब तक हाथमें ले तभी उसकी स्त्रीने उसे रोका। वह शबरी तमाल व नीलमणिके सदृश काली थी, छोटे हाथीके दाँतके टुकड़ोंसे निर्मित कर्ण-भूषण पहने हुए थी तथा तृणके बने कील धारण किये थी। वह हाथीके मदके समान नीलवर्ण थी, वृक्षोंके पत्तोंसे बने वस्त्र धारण किये थी और लता-बेलीसे बने कटिसूत्रको पहने थी। उसके हाथमें मांस एवं फलोंसे भरी पिटारी थी। उसके नेत्र नील-कमलके सदृश थे ॥२॥

३

शबरीका मुनिको मारनेसे शबरको रोकना और उसे मुनिका धर्मोपदेश

उस शबरीने शबरसे कहा—मत मार। हाय रे मूढ़, तू कुछ भी विवेक नहीं करता। यह कोई मृग नहीं है। वे ज्ञानी मुनिराज हैं जो

तं णिसुणिवि भुय-दंड-विहूसणु ।
मुक्कु पुलिंदें महिहि सरासणु ॥
पणविउ मुणि-वारदु सब्भावें ।
तेणाभासिउ णासिय-पावें ॥
भो भो धम्म-बुद्धि तुह होज्जउ ।
बोहि-समाहि-सुद्धि संपज्जउ ॥
जीव म हिंसहि अलिउ म बोल्लहि ।
कर-यलु परहणि कहिं मि म घल्लहि ॥
पर-रमणिहि मुह-कमलु म जोयहि ॥
थण-मंडलि कर-पत्तु म ढोयहि ॥
को वि म णिंदहि दूसिउ दोसें ।
संग-पमाणु करहि संतोसें ॥
पंचुंबर-महु-पाण-णिवायणु ।
रयणी-भोयणु दुक्खहँ भायणु ॥
घाह विवज्जहि मणि पडिवज्जहि ।
णिच्चमेव जिणु भत्तिहँ पुज्जहि ॥
तं णिसुणेवि मणुय-गुण-णासहँ ।
लइय णिवित्ति तेण महु-मासहँ ॥

घत्ता—हुउ जीव-दयावरु सवरु णिरक्खरु
लग्गउ जिणवर-धम्मइ ।
मुउ कालें जंतें गिलिउ कयंतें
उप्पण्णउ सोहम्मइ ॥३॥

४

तेत्थु सु-दिव्व भोय भुंजेप्पिणु ।
एक्कु समुद्दोवमु जीवेप्पिणु ॥
एत्थु विउलि भारह-वरिसंतरि ।
कोसल-विसइ सुसास-णिरंतरि ॥
णंदण-वण-वरही-रव-रम्महि ।
परिहा-सलिल-वलय-अविगम्महि ॥
कणय-विणिम्मिय-मणि-मय-हम्महि ।
णायर-णर-विरइय-सुह-कम्महि ॥

लोकप्रिय हैं, और सभी उन्हें प्रणाम करते हैं। शबरीकी यह बात सुनकर उस पुलिन्दने अपने भुजदण्डके भूषण धनुषको भूमिपर पटक दिया और सद्भावपूर्वक मुनिवरको प्रणाम किया। पापका नाश करनेवाले उन मुनिराजने उसे आशीर्वाद देते हुए कहा—हे शबर, तुझे धर्म-बुद्धि तथा शुद्ध ज्ञान और समाधि प्राप्त हो। अब तू जीवोंकी हिंसा मत करना, झूठ मत बोलना तथा कभी भी पराये धनको हाथ नहीं लगाना, परायी स्त्रियोंके मुख-कमलकी ओर मत घूरना और उनके स्तन-मण्डलपर हाथ नहीं चलाना। दोषोंसे दूषित होनेपर भी किसीकी निन्दा नहीं करना, घर-में कितना साज-सामान रखना है इसकी सन्तोष-पूर्वक सीमा कर लेना। वट, पीपल, पाकर, उमर व कठूमर इन पाँच उदुम्बर फलोंका, तथा मधु, मद्य और मांसका भोजन एवं रात्रिभोजन, दुःखके कारण बनते हैं। तू आखेट करना छोड़ दे। इसकी अपने मनमें दृढ़ प्रतिज्ञा कर ले। प्रतिदिन भक्ति-भाव-पूर्वक जिनभगवान्‌की पूजा करना। मुनिके इस उपदेशको सुनकर उस शबरने मानवीय गुणोंका नाश करनेवाले मधु और मांसके त्यागकी प्रतिज्ञा ले ली। इस प्रकार वह निरक्षर शबर जीवदयामें तत्पर हो गया और जिन-धर्ममें लग गया। काल व्यतीत होनेपर वह यम द्वारा निगला जाकर मरा और सौधर्म स्वर्गमें देव उत्पन्न हुआ ॥३॥

४

अयोध्या नगरीके राजा भरत चक्रवर्ती

उस स्वर्गमें दिव्य भोगोंको भोगकर तथा एक सागरोपम काल जीवित रहकर वह शबर स्वर्गसे च्युत हुआ। उस समय इस विशाल भारतवर्ष-में कोशलदेश धन-धान्यसे सम्पन्न था। उसकी राजधानी अयोध्या नगरीके नन्दनवन मयूरोंकी ध्वनिसे रमणीक थे। उसके चारों ओर खाई-का मण्डल था जो पानीसे भरा था और जिसके कारण वह नगरी शत्रुओंके लिए दुर्गम थी। वहाँके महल स्वर्णसे निर्मित और मणियोंसे जड़े हुए थे। वहाँके नागरिक लोग शुभ कर्म ही करते थे, अशुभ कर्म

सुर-तरु-पल्लव-तोरण-वारहिं ।
वण्ण-विचित्त-सत्त-पायारहिं ॥
धूय-धूम-कज्जलिय-गयक्खहिं ।
भूमि-मयारंजिय-सहसक्खहिं ॥
उज्झा-णयरिहिं पय-णय-सुरवइ ।
होंतउ रिसहणाहु चिरु णरवइ ॥
पविमल-णाण-धारि सुह-संकरु ।
पढम-णरिंदु पढम-तित्थंकरु ॥
आइ-बंभु महएवु महाभहु ।
भुवण-त्तय-गुरु पुण्ण-मणोरहु ॥
तहु पहिलारहु सुउ भरहेसरु ।
जो छक्खंड-धरणि-परमेसरु ॥
मागहु वर-तणु जेण पहासु वि ।
जित्तउ सुरु वेयड्ढ-णिवासु वि ॥
विज्जाहर-वइ भय-कंपाविय ।
णमि-विणमीस वि सेव कराविय ॥
घत्ता—जो सिसु-हरिणच्छिइ सेविउ लच्छिइ
गंगाइ सिंधुइ सिंचिउ ।
णव-कमल-दलक्खहिं उववण-जक्खहिं
णाणा-कुसुमहिं अंचिउ ॥४॥

५

ता कंकेल्ली-दल-कोमल-कर ।
वीणा-वंस-हंस-कोइल-सर ॥
तासु देवि उत्तुंग-पयोहर ।
णाम अणंतमइ त्ति मणोहर ॥
सो सुर-सुंदरि-चालिय-चामरु ।
ताहि गब्भि जायउ सबरामरु ॥
सुउ णामें मरीइ विक्खायउ ।
बहु-लक्खण-समलंकिय-कायउ ॥
देव-देउ अच्चंत-विवेइउ ।
णीलंजस-मरणें उव्वेइउ ॥

नहीं। वहाँके तोरण-द्वार कल्पवृक्षोंके पल्लवोंसे सुशोभित थे। वह विचित्र वर्णके सात प्राकारोंसे सुरक्षित था। वहाँके गवाक्ष धूपके धूएँसे काले हो रहे थे। वहाँके भूमिभाग इतने सुन्दर थे कि वे इन्द्रका भी मनोरंजन करते थे। ऐसी उस अयोध्या नगरीके राजा ऋषभनाथ थे, जिनके चरणोंमें देवेन्द्र भी नमस्कार करते थे। उन्होंने दीर्घकाल तक राज्य किया। वे विशुद्ध ज्ञानके धारक शुभशंकर (पुण्य और सुखकर्ता) प्रथम नरेन्द्र और प्रथम तीर्थंकर हुए। वे ही आदिब्रह्म, महादेव और महाविष्णु कहलाये। वे तीनों लोकोंके गुरु तथा मनोरथोंके पूरक हुए। उनके प्रथम पुत्र भरतेश्वर थे, जो षट्खण्ड पृथ्वीके सम्राट् हुए। उन्होंने वैताढ्य गिरिपर निवास करनेवाले सुन्दर देहधारी मागधप्रभास नामक देवको भी जीत लिया। उन्होंने विद्याधरोंके स्वामी नमि और विनमि नामक राजाओंको भयसे कम्पायमान कराकर उनसे अपनी सेवा करायी। बालमृगनयनी लक्ष्मी भी उनकी सेवा करती थी। गंगा और सिन्धु नदी-देवियाँ उनका अभिषेक करती थीं तथा नये कमलदलोंके सदृश नेत्रोंवाले उपवन-निवासी यक्ष भी नाना प्रकारके पुष्पोंसे उनकी पूजा करते थे ॥४॥

५

भरत चक्रवर्तीकी रानी अनन्तमतीने उस शबरके जीवको मरीचि नामक पुत्रके रूपमें जन्म दिया

भरतकी रानी अनन्तमती अत्यन्त सुन्दर थी। उसके हाथ कंकेली पुष्पोंके दलोंके समान कोमल तथा उसका स्वर वीणा, हंस, बाँसुरी व कोकिलके समान मधुर था। उसी तुंग-पयोधरी देवीके गर्भमें वह शबरका जीव आकर उत्पन्न हुआ, जिसके ऊपर देवलोककी सुन्दरियाँ चमर ढोरती थीं। उनका वह पुत्र मरीचि नामसे विख्यात हुआ। उसका शरीर अनेक शुभ लक्षणोंसे अलंकृत था। जब उसके पितामह देवोंके देव व अत्यन्त ज्ञानवान् नीलांजसा नर्तकीके मरणसे विरक्त होकर पृथ्वी-

चरण-कमल-जुय-णमियाहंडलु ।
दिक्खंकिउ मेल्लिवि महिमंडलु ॥
हरि-कुरु-कुल-कच्छाइ-णरिंदहिं ।
समउ णमंसिउ इंद-पडिंदहिँ ॥
झाणालीणु पियामहु जइयहुँ ।
णत्तउ जइ पावइयउ तइयहुँ ॥
दुच्चर-रिसह-महा-तव-लग्गउ ।
भग्ग णराहिव एहु वि भग्गउ ॥
सरयरसालिउ पियइ ण गरउ ।
भुक्खइँ भज्जइ लज्जइ णग्गउ ॥
वक्कलु परिहइ तरु-हल भक्खइ ।
मिच्छाइट्ठि असच्चु णिरिक्खइ ॥
घत्ता—बहु-दुरिय-महल्लें मिच्छा-सल्लें
तिविह-देह-संचारइ ।
भरहेसर-णंदणु संसय-हय-मणु
चिरु हिंडिवि संसारइ ॥५॥

६

दुवई—धुव-णीसासु मुयइ सो तेत्तिय-
पक्खहिँ दुह-विहंजणो ।
जाणइ ताम जाम छट्टावणि
वड्डिय-ओहि-दंसणो ॥
परमागम-साहिय-दिव्व-भाणि ।
णिवसंतहु पुप्फुत्तर-विमाणि ॥
जइयहुँ वट्टइ छम्मासु तासु ।
परमाउ-माउ परमेसरासु ॥
तइयहुँ सोहम्म-सुराहिवेण ।
पभणिउ कुबेरु इच्छिय-सिवेण ॥
इह जंबुदीवि भरहंतरालि ।
रमणीय-विसइ सोहा-विसालि ॥
कुंडउरि राउ सिद्धत्थु सहिउ ।
जो सिरिहरु मग्गण-वेस-रहिउ ॥

मण्डलका राज्य त्यागकर दीक्षित मुनि हो गये और इन्द्र भी उनके चरण-कमलोंको प्रणाम करने लगे, तब इन्द्र और प्रतीन्द्र एवं हरिवंश व कुरुवंशके कच्छादि राजाओंसहित उनके इस पोते मरीचिने भी अपने पितामहको ध्यानलीन अवस्थामें नमन किया और वह उसी समय प्रव्रजित हो गया। किन्तु शीघ्र ही उन भगवान् ऋषभदेवके दुश्चर महातपको असह्य पाकर जब अनेक अन्य दीक्षित राजा तपसे भ्रष्ट हुए, तब वह भी भ्रष्ट हो गया। वह वल्कल धारण करने लगा, वृक्षोंके फल खाने लगा और मिथ्यादृष्टि हो कर असत्य बातोंपर दृष्टि देने लगा। इस प्रकार नाना महान् पापोंसे युक्त मिथ्यात्वरूपी शल्यके कारण उसने अनेक जन्मोंमें अनेक प्रकारके शरीर धारण किये, और वह भरतेश्वर-पुत्र होकर भी मनमें संशयके आघातसे चिरकाल तक संसारमें भ्रमण करता रहा ॥५॥

६

मरीचिका जीव पुष्पोत्तर नामक स्वर्गके विमानसे आकर राजा सिद्धार्थ व रानी प्रियकारिणी (त्रिशला) का पुत्र हुआ

उस स्वर्गमें देवरूपसे रहते हुए वह सहस्र वर्षमें एक बार आहार करता था और उतने ही पक्षोंमें श्वासोच्छ्वास लेता था। वहाँ समस्त दुःखों का विनाशकर अपने अवधि-दर्शन द्वारा छठीं पृथ्वी तक की बातें जान लेता था। इस प्रकार परमागममें कहे हुए गुणोंसे युक्त दिव्य प्रमाण-वाले उस पुष्पोत्तर विमान में रहते हुए जब अपनी उत्कृष्ट आयुप्रमाणके छह मास शेष रहे तभी सौधर्म स्वर्ग के इन्द्र ने जगत्-कल्याणकी कामना से प्रेरित होकर कुबेरसे कहा—इस जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्रमें विशाल शोभाधारी विदेह प्रदेशमें कुण्डपुर नगरके राजा सिद्धार्थ राज्य करते हैं। वे आत्म-हितैषी हैं और श्रीधर होते हुए भी विष्णुके समान वामनावतार

अकवाल-चोज्जु जो देउ रुद्दु ।
कमहिउ सुरेहिँ जो गुण-समुद्दु ॥
ण मिलिउ गहेण जो समर-सूरु ।
जो धम्माणंदु ण सघर-दूरु ॥
जो णरु अविहंदलि दलिय-मल्लु ।
जो पर-णर-णाहहु जणइ सल्लु ॥
अणिवेसिय-णिय-मंडल-कुरंगु ।
जो भवणइंदु अविहंडियंगु ॥
जो कामधेणु पसु-भाव-चुक्कु ।
जो चिंतामणि चिंता-विमुक्कु ॥
अणवरय-चाइ चाएण धण्णु ।
असहोयर-रिउ सयमेव कण्णु ॥
दो-बाहु वि जो रणि सहसबाहु ।
सुहि-दिण्ण-जीउ जीमूयबाहु ॥
दालिद्दहारि रायाहिराउ ।
जो कप्परुक्खु णउ कट्ठभाउ ॥

घत्ता—पियकारिणि देवि तुंग-कुंभि-कुंभत्थणि ।
तहु रायहु इट्ठ णारीयण-चूडामणि ॥६॥

७

दुवई—एयहँ बिहिं मि जक्ख कमलक्ख
सलक्खणु रक्खियासवो ।
चउवीसमु जिणिंदु सुउ होही
पय-जुय-णविय-वासवो ॥

सम्बन्धी याचक वेषसे रहित हैं। वे दुःखी जनोंको आश्चर्य-जनक दान देकर सुखी बनानेवाले शंभु हैं, किन्तु वे ऐसे रुद्र नहीं हैं जो कपाल धारण करके कौतुक उत्पन्न करते हैं। वे गुणोंके समुद्र होते हुए भी समुद्रके समान देवों द्वारा मथित नहीं किये गये। वे समर-शूर होते हुए भी ऐसे सूर्य नहीं हैं जिसे केतु ग्रह निगल जाये। वे धर्ममें आनन्द मानते हैं और आनन्दपूर्वक धनुष भी धारण करते हैं, तथापि वे अपने घरसे निर्वासित होकर धर्मराज युधिष्ठिरके समान दूर नहीं गये। वे अच्छे-अच्छे मल्लोंको भी पराजित करनेवाले नर थे, किन्तु नर अर्थात् अर्जुनके समान उन्हें बृहन्नला नामक नर्तकीका वेष धारण नहीं करना पड़ा। वे अपने शत्रु-राजाओंके हृदयमें भयरूपी शल्य उत्पन्न करते थे। उनके राज्यमें ग्राम सघनतासे बसे हुए थे, जिसके कारण उनमें मृगोंको बसनेके लिए स्थान नहीं था। वे सर्वांग ऐसे पूर्ण और सुन्दर थे जैसे मानो पृथ्वीपर इन्द्र ही उतर आया हो। वे भुवन-मण्डलके चन्द्रमा थे, किन्तु चन्द्रके समान उनका अंग खण्डित नहीं होता था। वे याचक जनोंकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले कामधेनु होते हुए भी कामधेनु जैसी पशु-अवस्थासे मुक्त थे। वे मनमें चिन्तित अभिलाषाओंको पूरा करनेवाले चिन्तामणि होते हुए भी अपने मनमें चिन्ताओंसे विमुक्त रहते थे। वे कर्णके समान निरन्तर दानशील तथा धनुर्विद्यामें ख्याति-प्राप्त थे, तथापि वे कर्णके समान अपने सहोदर भ्राताओंके शत्रु नहीं बने। उनकी भुजाएँ तो दो ही थीं, किन्तु युद्धमें वे सहस्रबाहु जैसी वीरता दिखलाते थे। वे सुधी अर्थात् विद्वानोंको जीविका प्रदान करते थे, अतएव वे साक्षात् जीमूतवाहन थे जिन्होंने अपने मित्रके लिए अपना जीवन दान कर दिया। वे राजाधिराज लोगोंके दारिद्र्यको दूर करनेवाले कल्पवृक्ष थे, तथापि कल्पवृक्षके समान वे काष्ठ एवं कटु भाव-युक्त नहीं थे।

ऐसे उन सिद्धार्थ राजाकी रानी प्रियकारिणी देवी थीं जो विशाल हाथियोंके कुम्भस्थलोंके समान पीनस्तनी होती हुई समस्त नारी-समाजकी चूडामणि थीं ॥६॥

७

कुण्डपुरकी शोभा

इन्द्र कुबेरसे कहते हैं कि हे कमल-नयन यक्ष, इन्हीं राजा सिद्धार्थ और रानी प्रियकारिणीके शुभ लक्षणोंसे युक्त मदिरादि व्यसनोंका त्यागी पुत्र चौबीसवाँ तीर्थंकर होगा, जिसके चरणोंमें इन्द्र भी नमन करेंगे।

एयहँ दोहिँ मि सुर-सिरि-विलासु ।
करि धणय कणय-भासुरु णिवासु ॥
ता कयउ कुंडपुरु तेण चारु ।
सव्वत्थ रयण-पायार-भारु ॥
सव्वत्थ रइय-णाणा-दुवारु ।
सव्वत्थ पारिह-परिरुद्ध-चारु ॥
सव्वत्थ फलिय-णंदण-वणालु ।
सव्वत्थ तरुणि-णच्चण-चमालु ॥
सव्वत्थ धवल-पासायवंतु ।
सव्वत्थ सिहिर-चुंबिय-णहंतु ॥
सव्वत्थ फलिह-बद्धाणणिल्लु ।
सव्वत्थ घुसिण-रस-छडय-गिल्लु ॥
सव्वत्थ निहित्त-विचित्त-फुल्लु ।
सव्वत्थ सुफुल्लंधय-पियल्लु ॥
सव्वत्थ वि दिव्व-पसंडि-पिंगु ।
सव्वत्थ वि मोत्तिय-रइय-रंगु ॥
सव्वत्थ वि वेरुलिएहिँ फुरइ ।
सव्वत्थ वि ससिकंतेहिँ झरइ ।
सव्वत्थ वि रविकंतेहिँ जलइ ।
सव्वत्थ चलिय-चिंधेहिँ चलइ ॥
सव्वत्थ पडह-मद्दल-रवालु ।
सव्वत्थ णडिय-णड णट्टसालु ॥
सव्वत्थ णारि-णेउर-णिघोसु ।
सव्वत्थ सोम्मु परिगलिय-दोसु ॥
घत्ता—पहुपंगणि तेत्थु वंदिय-चरम-जिणिंदें ।
छम्मास विरइय रयणविट्ठि जक्खिंदें ॥७॥

८

दुवई—ठिय-सउहयल-णिहिय-सयणयलइ
सयल-दुहोह-हारिणी ।
णिसि णिद्दंगयाइ सिविणावलि
दीसइ सोक्खकारिणी ॥

अतएव हे कुबेर, इन दोनोंके निवास-भवनको स्वर्णमयी, कान्तिमान् व देवोंकी लक्ष्मीके विलास योग्य बना दो। इन्द्रकी आज्ञानुसार कुबेरने कुण्डपुरको ऐसा ही सुन्दर बना दिया। उसके चारों तरफ रत्नमयी प्राकार बन गया जिसके सब ओर नाना प्रकारके द्वार थे और उसके चारों ओर ऐसी परिखा थी जिससे वहाँ शत्रुओंका संचार अवरुद्ध हो जाये। नगरके चारों ओर फल-फूलोंसे सुसज्जित नन्दन वन थे, और स्थान-स्थानपर तरुणी स्त्रियोंके लिए उत्तम नृत्य-शालाएँ थीं। सर्वत्र धवल प्रासाद दृष्टिगोचर होते थे, जिनके शिखर आकाशकी अन्तिम सीमाको चूम रहे थे। उनके तल-भागकी भूमि स्फटिक शिलाओंसे पटी हुई थी, और सभी स्थान केशरके रसके छिड़कावसे गीले हो रहे थे। सर्वत्र रखे गये फूलोंकी विचित्र शोभा थी जिनका भ्रमर रसपान कर रहे थे। समस्त स्थान दीप्तिमान् स्वर्णसे पीला पड़ रहा था, और सर्वत्र मोतियोंसे रचित रंगावली दिखाई देती थी। पूरा भवन वैडूर्य मणियोंसे चमक रहा था, चन्द्रकान्त मणियोंसे जल झर रहा था और सूर्यकान्त मणियोंसे ज्वाला प्रज्वलित हो रही थी। उसके ऊपर उड़ती हुई ध्वजाओंसे भवन चलायमान सा दृष्टिगोचर हो रहा था। सभी ओर नगाड़ों और मृदंगोंकी ध्वनि सुनाई पड़ रही थी, तथा सर्वत्र नृत्य-शालाओंमें नृत्य और नाटक हो रहे थे, कहीं नारियोंके नूपुरोंकी मधुर ध्वनि सुनाई दे रही थी। सर्वत्र शान्ति व्याप्त थी और कहीं भी द्वेष व अपराधोंका नामोनिशान नहीं था। ऐसे उस राजभवनके प्रांगणमें अन्तिम तीर्थंकरकी वन्दना करनेवाले उस यक्षोंके राजा कुबेरने छह मास तक रत्नोंकी वृष्टि की ॥७॥

८

प्रियकारिणी देवीका स्वप्न

एक दिन जब प्रियकारिणी देवी अपने प्रासादके सौधतल (ऊपरी मंजिल) में स्थित शयनालयमें शयन कर रही थीं, तब उन्हें निद्रामें समस्त दुःखोंका अपहरण करनेवाली और सुखदायी स्वप्नावली दिखाई दी। उस सुरेन्द्रकी अप्सराओंके समूह द्वारा सम्मानित तथा समस्त

सुरिंदच्छरा-थोत्त-संमाणियाए ।
सुसिद्धत्थ-सिद्धत्थ-रायाणियाए ॥
सलीलं चरंतो चलो णं गिरिंदो ।
जिणंयाइ दिट्ठो पमत्तो करिंदो ॥

विसेसो विलंबंत-सण्हा-समेओ ।
हरी भीसणो दिव्व-पोमाहिसेओ ॥
वरं दाम-जुम्मं विहू वीअ-धंतो ।
रवी रस्सि-जालावली-विप्फुरंतो ॥
सरंते सरंतं विसारीण दंदं ।
घडाणं जुयं लोय-कल्लाण-वंदं ॥

पफुल्लंत-राईव-राई-णिवासो ।
पवड्ढंत-वेला-विसासो सरीसो ॥
पहा-उज्जलं हेम-सेहीर-पीढं ।
महाहिंद-हम्मं विलासेहिं रूढं ॥

मरुद्धूय-चिंधं सुभित्ती-विचित्तं ।
घरं चारु आहंडलीयं पवित्तं ॥
मणीणं समूहं पहा-विप्फुरंतं ।
परं सोहमाणं तमोहं हरंतं ॥

जलंतो हुयासो धरायां सधामे ।
णियच्छेवि दीहच्छि सामा-विरामे ॥
विउद्धा गया जत्थ रायाहिराओ ।
धरित्तीस-चूडामणी-घिट्ठ-पाओ ॥

पियाए सुहं दंसणाणं वरिट्ठं ।
फलं पुच्छियं तेण सिट्ठं विसिट्ठं ॥
सुओ तुज्झ होही महा-देवदेवो ।
महा-वीयराओ विमुक्कावलेवो ॥

महा-धीरवीरो महा-मोक्खगामी ।
तिलोयस्स वंदो तिलोयस्स सामी ॥

घत्ता—घरपंगणि तासु रायहु सुह-पब्भारहिं ।
वुट्ठउ धणणाहु अविहंडिय-धण-धारहिं ॥८॥

आशाओंको सिद्ध करनेवाले राजा सिद्धार्थकी रानी भावी जिनेन्द्रकी माताने निम्नलिखित सोलह स्वप्न देखे—

१. लीलामय गतिसे चलते हुए गिरीन्द्रके समान मदोन्मत्त हाथी।

२. लटकती हुई सास्नायुक्त (गल-कम्बल) से महान् वृषभ।

३. भीषण सिंह।

४. दिव्य अभिषेक-युक्त लक्ष्मी देवी।

५. उत्तम दो पुष्पमालाएँ।

६. अन्धकारको दूर करता हुआ चन्द्रमा।

७. किरण-जालावलिसे स्फुरायमान सूर्य।

८. सरोवरमें चलती हुई दो मछलियाँ।

९. लोक-कल्याणके प्रतीक वन्दनीय दो कलश।

१०. फूले हुए कमलोंकी पंक्तिसे युक्त सरोवर।

११. उछलती हुई तरंगोंको नियन्त्रित करनेवाला समुद्र।

१२. प्रभासे उज्ज्वल स्वर्णमय सिंहासन।

१३. विलासोंसे समृद्ध महानागेन्द्रका प्रासाद।

१४. पवनसे उड़ती हुई ध्वजाओं सहित उत्तम भित्तियोंसे विचित्र सुन्दर और पवित्र इन्द्रभवन।

१५. प्रभासे स्फुरायमान अत्यन्त शोभनीय तथा अन्धकारके समूहको दूर करनेवाला मणिपुंज।

१६. जाज्वल्यमान अग्नि।

अपने निवासगृहमें रात्रिके अन्तिम प्रहरमें इन सोलह स्वप्नोंको देखकर दीर्घनयनी महारानी प्रियकारिणी जाग उठीं, एवं वे वहाँ गयीं जहाँ राजाधिराज सिद्धार्थ विराजमान थे, जिनके चरणोंका घर्षण बड़े-बड़े नरेशोंके शिरपर चूडामणियोंसे किया जाता था। उनसे उनकी प्रिया रानीने अपने स्वप्नोंका फल पूछा। राजाने उनका फल शुभ और श्रेष्ठ बतलाया, और विशेष बात यह कही कि तुम्हारे एक पुत्र होगा जो महादेवोंका देव, महान् वीतराग, अभिमानसे मुक्त, महावीरोंका वीर, महामोक्षगामी, त्रैलोक्य द्वारा वन्दनीय, और त्रिलोकका स्वामी होगा। इन्द्रने कुबेरको आदेश दिया कि राजा सिद्धार्थके प्रासादके प्रांगणमें प्रचुर रूपसे निरन्तर धनकी धारावृष्टि होती रहे ॥८॥

९

दुवई—कय-विब्भम-विलास परमेसरि
बाल-मराल-चारिणी ।
कंकण-हार-दोर-कडिसुत्तय—
कुंडल-मउड-धारिणी ॥

चंदक्क-कंति संपण्ण-कित्ति ।
सिरि हिरि सलच्छि दिहि पंकयच्छि ।
सइ किंत्ति बुद्धि कय-गब्भ-सुद्धि ।
आसाढ-मासि ससियर-पयासि ।
पक्खंतरालि [illegible] ।
दिस-णिम्मलम्मि छट्ठी-दिणम्मि ।
संसार-खेउ थिउ गब्भि देउ ।
संपण्ण-हिट्ठि कय कणय-विट्ठि ।
जक्खेण ताम णव-मास जाम ।
मासम्मि पत्ति चित्ता-णिउत्ति ।
सिय-तेरसीइ जणिओ सईइ ।
जिणु भुवण-णाहु भम्माइ-देहु ।
मुणि-भासियाइँ पण्णासियाइँ ।
सइ दोसयाइँ जइयहुँ गयाइँ ।
णिव्वुइ जिणिंदि अइ-तिमिरचंदि ।
सिरिपासणाहि लच्छी-सणाहि ।
तणु-कंति-कंतु तइयहुँ तियंतु ।
बद्धाउमाणु सिरिवड्ढमाणु ।
जइवहु पहूउ जय-तिलयभूउ ।

घत्ता—पयणिहि-खीरेहिँ कलसहिँ जिय-छणयंदहिँ ॥
अहिसित्तु जिणिंदु मंदर-सिहरि सुरिंदहिँ ॥९॥

१०

दुवई—पुज्जिउ पुज्जणिज्जु मणि-दामहिँ
भूसिउ भुवण-भूसणो ।
संथुउ चित्त-वित्त-थावारहिँ
कु-समय-रइय-दूसणो ॥

९

तीर्थंकर महावीरका गर्भावतरण, जन्म तथा मन्दराचलपर अभिषेक

विभ्रम और विलाससे युक्त बालहंसचारिणी, कंकन, हार, डोर, कटिसूत्र, कुण्डल और मुकुट धारण किये हुए चन्द्र और सूर्यके सदृश कान्तियुक्त तथा कीर्तिसम्पन्न कमलनयना परमेश्वरी श्री, ह्री, लक्ष्मी, धृति, कीर्ति और बुद्धि, इन देवियोंने स्वयं आकर महारानीके गर्भकी शुद्धि की। आषाढ़ मासके चन्द्रसे प्रकाशमान व अन्धकार-समूहको दूर करनेवाले शुक्लपक्षमें छठी तिथिके दिन जब दिशाएँ निर्मल थीं, तब संसारके सेतुभूत भगवान् महावीर, माताके गर्भमें आकर स्थित हुए। तबसे नव मास तक धरणेन्द्र यक्ष आनन्ददायी स्वर्णकी वृष्टि करता रहा। जब चित्रा नक्षत्र युक्त चैत्रमासका आगमन हुआ तब शुक्लपक्षकी त्रयोदशीके दिन उस सतीने स्वर्णकी आभासे युक्त शरीरवान् भुवननाथ जिनेन्द्रको जन्म दिया। जब पापरूपी अन्धकारको नष्ट करनेके लिए चन्द्रके सदृश लक्ष्मीनाथ श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्रको निर्वाण प्राप्त किये दो सौ पचास वर्ष व्यतीत हुए थे तभी उन शरीरकान्तिसे युक्त जन्म-जरा-मरण-अतीत, व्याधियोंका अन्त करनेवाले, जगत्के तिलकभूत श्री वर्धमान जिनेन्द्र अपनी आयु बाँधकर उत्पन्न हुए। तत्पश्चात् सुरेन्द्रोंने जिनेन्द्रको मन्दर पर्वतके शिखरपर ले जाकर पूर्ण चन्द्रकी कान्तिको जीतनेवाले कलशों द्वारा क्षीरोदधिके जलसे उनका अभिषेक किया।

१०

भगवान्का नामकरण, स्वभाव-वर्णन, बाल-क्रीड़ा तथा देव द्वारा परीक्षा

भगवान्का अभिषेक करनेके पश्चात् उन देवेन्द्रोंने मणिमय मालाओं द्वारा उनकी पूजा की, जो त्रैलोक्य द्वारा पूजित थे। उन्हें आभूषणोंसे विभूषित किया, जो स्वयं भुवन-भूषण थे, तथा नाना प्रकारके क्रियाकलापों

आघोसिउ णामें वड्ढमाणु ।
जगि भणमि भडारउ कहु समाणु ॥
जो पेक्खवि णउ गंभीरु उयहि ।
जो पेक्खवि ण थिरु गिरिंदु सभहि ॥
जो पेक्खवि चंदु ण कंतिकंतु ।
जो पेक्खवि सूरु ण तेयवंतु ॥
मज्झत्थ-भाउ सुह-सुक्क-लेसु ।
णं धम्मु परिट्ठिउ पुरिस-वेसु ॥
बुज्झिय-परमक्खर-कारणेहिं ।
जो संजय-विजयहिं चारणेहिं ।
अवलोइउ सेसवि देवदेउ ।
णट्ठउ भीसणु संदेहहेउ ॥
सम्मइ कोक्किउ संजम-धणेहिं ।
विरइय-गुरु-विणय-पयाहिणेहिं ॥
अहिसेय-सलिल-धुय-मंदरेण ।
जो णिब्भउ भणिउ पुरंदरेण ॥
तं णिसुणिवि देवें संगमेण ।
होइवि भीमें उरजंगमेण ॥
णंदणवणि कीला-तरु णिरुद्धु ।
गय सहयर सिसु थिउ तिजगबंधु ॥
तहु फणि-माणिक्कइँ फंसमाणु ।
अविउलु अचलु वि सिरि-वड्ढमाणु ।

घत्ता—फण-मुह-दाढाउ कर फुसंतु णउ संकिउ ।
पुज्जिवि देवेण वीरणाहु तहिँ कोक्किउ ॥१०॥

११

दुवई—जे सिसु-दंसणेण रिउणो वि हु
होंति विमुक्क-मच्छरा ।
अस्स कुमार-काल-परिवट्टण-
वयगय तीस वच्छरा ॥

सहित उनकी स्तुति की जो मिथ्यामतोंमें दूषण दिखानेवाले थे। उनका नाम वर्धमान रखा गया। कवि कहते हैं कि उन भगवान्‌को मैं किसके समान कहूँ ? उन्हें देखकर तो समुद्र भी गम्भीर नहीं ठहरता, ऐसी उनकी गम्भीरता है। उनकी स्थिरता व धीरता ऐसी है कि उन्हें देखकर पृथ्वी और सुमेरु पर्वत भी स्थिर नहीं कहे जा सकते। वे ऐसे कान्तिवान् हैं कि उन्हें देखकर चन्द्रकी कान्ति कुछ नहीं रहती। तेजस्वी भी वे ऐसे हैं कि उन्हें देखकर सूर्य भी तेजवान् नहीं रहता। वे माध्यस्थ भावसे युक्त तथा शुभ शुक्ललेश्यावाले थे। मानो स्वयं धर्म ही पुरुषका वेष धारण कर आ उपस्थित हुआ हो। संजय और विजय नामक चारण-ऋद्धिधारी देवोंने परमोपदेश रूप वाणी को समझकर ही उनके शैशव-कालमें ही देखकर उन्हें देवोंके देव तीर्थंकर जान लिया और उनके भीषण सन्देहका कारण दूर हो गया। संयमधारी मुनियोंने अत्यन्त विनयभावसे उनकी प्रदक्षिणा की और उन्हें सन्मति कहकर पुकारा। उनके अभिषेक-जलसे मन्दर पर्वतको धोनेवाले पुरन्दरने उन्हें निर्भय कहा। देवोंकी सभामें उनकी ऐसी प्रशंसा सुनकर संगम नामक एक देवने उनकी परीक्षा करनी चाही। वह भयंकर सर्पका रूप धारण करके कुण्डपुरके नन्दनवनमें आया, जहाँ कुमार महावीर क्रीड़ा कर रहे थे। वे जिस वृक्षपर क्रीड़ा कर रहे थे, उस क्रीड़ा-वृक्षको उस सर्पने चारों तरफसे घेर लिया। यह देख उनके साथ क्रीड़ा करनेवाले सहचर शिशु सब भाग गये, किन्तु वे त्रिजगत्‌के बन्धु वहीं ठहरे रहे। वे श्रीवर्धमान निर्व्याकुल और अचल होकर उस भयंकर सर्पके फणपर के माणिक्यका स्पर्श करने लगे। वे उसके फण और मुख की दाढ़ोंका अपने हाथसे स्पर्श करते हुए जरा भी शंकित नहीं हुए। यह देख उस देवने उनकी पूजा की और उन्हें वीरनाथ कहकर पुकारा ॥१०॥

११

भगवान्‌को मुनि-दीक्षा

कुमारकालसे ही जिनके दर्शनमात्रसे शत्रु अपने द्वेष-भावको छोड़ देते थे, उनके कुमारकालकी प्रवृत्तिके तीस वर्ष व्यतीत हो गये। अब

जो सत्त-हत्थ-सुपमाणियंगु ।
जें विद्धँसिउ दूसहु अणंगु ॥
णिव्वेइउ सो मउलिय-करेहिं ।
संबोहिउ लोयंतिय-सुरेहिं ॥
अहिसिंचिउ पुणु सयलामरेहिं ।
विज्जिज्जंतउ चामर-वरेहिं ॥
चंदप्पह-सिवियहिं पहु चडिण्णु ।
तहिं णाह-संड-वणि णवर दिण्णु ॥
मग्गसिर-कसण-दसमी-दिणंति ।
संजायइ तियसुच्छवि महंति ॥
वोलीणइ चरियावरण-पंकि ।
हत्थुत्तर-मज्झासिइ ससंकि ॥
छट्ठोववासु किउ मलहरेण ।
तवचरणु लइउ परमेसरेण
मणिमय-पडलें ढेप्पिणु ससेस ।
इंदे खीरण्णवि घित्त केस ॥

घत्ता—परमेट्ठि रिसिंदु
थिउ पडिवज्जिवि संजमु ।
थुउ भरह-णरेहिं
पुप्फयंत-वंदिय-कमु ॥११॥

इय वीरजिणिंदचरिए गब्भावतरण-जम्म-तव-वण्णणो णाम
पढमो संधि ॥१॥

(महापुराणु संधि ९५-९६ से संकलित)

उनके शरीरका प्रमाण पूरे सात हाथ हो गया था, तथापि उन्होंने कामके वशीभूत न होकर कामदेव को जीत लिया था। तभी लौकान्तिक देवोंने आकर उन्हें सम्बोधित किया और हाथ जोड़कर उन्हें वैराग्य-भाव उत्पन्न करा दिया। फिर उत्तम चमरोंसे व्यजन करते हुए समस्त देवोंने उनका अभिषेक किया। फिर भगवान् चन्द्रकी प्रभासे युक्त पालकीपर विराजमान हुए और ज्ञातृषण्डवनमें पहुँचे। वहाँ उन पापहारी परमेश्वरने, मार्गशीर्ष (अगहन) कृष्णपक्ष दशमीके दिन जब देवोंका महोत्सव हो रहा था और चन्द्रमा उत्तराफाल्गुनी और हस्त नक्षत्रोंके बीच स्थित था, तभी अपने चारित्रावरण कर्मरूपी मलको दूर कर, षष्ठ उपवास सहित तपश्चरण ग्रहण किया। तभी उन्होंने केश-लोंच किया और इन्द्रने उन केशोंको एक मणिमय पटलमें लेकर क्षीरोदधिमें विसर्जित कर दिया। इस प्रकार वे मुनीन्द्र परमेष्ठी संयम ग्रहण कर आसीन हुए। भारतवर्षकी समस्त जनताने उनकी स्तुति की। कवि पुष्पदन्त भी उनके चरणोंकी वन्दना करते हैं ॥११॥

इति वीर जिनेन्द्र गर्भावतरण, जन्म और तप विषयक प्रथम सन्धि समाप्त ॥ सन्धि १ ॥

सन्धि २

१

मणपज्जय-संजुत्तउ देवदेउ थिर-चित्तउ ।
तार-हार-पंडुर-वरि कूल-गाम-णामइ पुरि ॥ध्रुवकं॥

भिक्खहि परमेसरु पइसरइ ।
घरि घरि सुसमंजसु संचरइ ॥
मणपज्जय-णयणें परियरिउ ।
कूलहु घर-पंगणि अवयरिउ ॥
रायहु पियंगु-वण्णुज्जलहु ।
पणवंतहु मउलिय-करयलहु ॥
थिउ भुवण-णाहु दिण्णउ असणु ।
णव-कोडि-सुद्धु मुणि-दिव्वसणु ॥
तं लेप्पिणु किर जा णीसरिउ ।
ता भूमि-भाउ रयणहिं भरिउ ॥
देवहिं जयतूरइँ ताडियइँ ।
गयणयलहु फुल्लइँ पाडियइँ ॥
भो चारु दाणु उग्घोसियउ ।
अइ-सुरहिउ पाणिउ वरसियउ ॥
मंदाणिलु वूढउ सीयलउ ।
णिउ णर-वंदिउ बहु-गुण-णिलउ ॥
पत्तहि दुक्कम्मइँ णिट्ठवइ ।
भीसणि णिज्जणि वणि दिणु गमइ ॥
जिणु जिण-कप्पेण जि चक्कमइ ।
जो पाण-हारि तासु वि खमइ ॥

घत्ता—सुणह-सीह-सीयालहँ ओरसियहँ सद्दूलहँ ।
वणि अच्छइ तब्भुब्भउ रयणिहि णं थिरु खंभउ ॥१॥

सन्धि २

केवलज्ञानोत्पत्ति

१

कूलग्राममें भगवान्‌को आहार-दान

देवोंके देव भगवान् महावीर स्थिर चित्त तथा मनःपर्यय ज्ञानसे युक्त होकर उस कूलग्राम नामक पुरीमें पहुँचे जहाँके निवास-गृह तारों और हारोंके समान उज्ज्वल दृष्टिगोचर होते थे। वहाँ उन परमेश्वरने भिक्षाके लिए प्रवेश किया और बड़े साम्य-भावसे एक घरसे दूसरे घरकी ओर गमन करने लगे। वे अपने मनःपर्यय ज्ञानरूपी नेत्रसे ही अपने आस-पासके लोगोंके मनको जान रहे थे। वे वहाँके राजा कूलके गृहप्रांगणमें अवतरित हुए। उस प्रियंगु वर्ण-से उज्ज्वल नरेशने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया। वे भुवननाथ वहाँ ठहर गये और राजाने उन्हें मुनिके योग्य नव-कोटि-शुद्ध आहार दिया। जब आहार लेकर भगवान् बाहर निकले तब जिस भूमिभागपर उन्होंने आहार लिया था वह रत्नों-से परिपूर्ण हो गया। देवोंने जयध्वनि करते हुए तूर्य बजाये तथा आकाशसे फूल बरसाये। उन्होंने घोषित किया—अहो, यह बड़ा सुन्दर दान हुआ। इस समय अतिसुगन्ध-युक्त पानी बरसा। मन्द और शीतल पवन प्रवाहित हुआ तथा उस अनेक गुणोंके निवास राजा की लोगोंने वन्दना की। यहाँ जिन भगवान् महावीर अपने दुष्कर्मोंको विनष्ट करते हुए उस पुरीके समीप भीषण निर्जन वनमें दिन व्यतीत करने लगे। वे जिनकल्पी चारित्रसे अपनी चर्या करते थे और जो कोई उनके प्राण हरण करनेकी इच्छासे उनके समीप आता था उसके प्रति भी वे समभाव रखते थे। जिस वनमें श्वान, सिंह और शृगाल तथा शार्दूल गर्जना करते हुए चारों ओर विचरण करते थे उसी वनमें वे रात्रिभर खड़े-खड़े ऐसे ध्यान-मग्न रहते थे जैसे मानो वह कोई स्थिर स्तम्भ हो ॥१॥

२

ण करइ सरीर-संटप्प-विहि ।
सुपरीसह सहइ ण मुयइ दिहि ॥
वड्ढंत-केस-जड-मालियउ ।
णं चंदणु फणिउल-माणियउ ॥
उज्जेणिहि पिउवणि भयवरिहि ।
तम-कसणहि भीम-विहावरिहि ॥
अण्णहि दिणि सिद्धि-पुरंधि-पिउ ।
पिउवणि पडिमा-जोएण थिउ ॥
जोईसरु जण-जणणत्तिहरु ।
अत्तलोइउ रुद्दें परमपरु ॥
महँ कय-उवसग्गहु किं तसइ ।
णिय-चरिय-गिरिंदहु किं लहसइ ।
किं णउ णंदणु पियकारिणिहि ।
जोयउँ जिणु सम्मइ-धारिणिहि ॥
इय चिंतिवि जेट्ठा-तणुरुहिण ।
पिंगच्छि-भिउडि-भीसण-मुहिण ॥
वेयाल काण-कंकाल-धर ।
करवाल-सूल-असि-परसुकर ॥
पिंगुद्ध-केस दीहर-णहर ।
किलिकिलि-रव-वहिरिय-भुवणहर ॥
चोइय धाइय हरि दिण्ण-कम ।
फुप्फुप्फुयंत विसि विसविसम ॥

घत्ता—कय-भुवणयल-विमद्दें पुणु वि हरेण रउद्दें ॥
णिय-विज्जहिं दरिसाविउ गुरु पाउसु वरिसाविउ ॥२॥

३

पुणु वणयर-गणु कय-पडिखलणु ।
पुणु धगधगंतु जालिउ जलणु ॥
देविंद-चंद-दप्प-हरणहँ ।
पुणु मुक्कइँ णाणा-पहरणइँ ॥

२

उज्जैनीमें भगवान्‌की रुद्रद्वारा परीक्षा

भगवान् अपने शरीरके संस्कारकी कोई क्रिया नहीं करते थे। वे बड़े-बड़े परिषहोंको भी सहन करते थे और धैर्य नहीं छोड़ते थे। अपने बढ़ते हुए केशोंकी जटाओंसे लिपटे हुए वे ऐसे दिखाई देते थे मानो अनेक सर्परूपी मालाओंसे वेष्टित चन्दनका वृक्ष हो। एक दिन उज्जैनीके भयंकर श्मशानमें अन्धकारसे काली भीषण रात्रिके समय वे सिद्धि रूपी महिलाके प्रियपति प्रतिमा योगसे स्थित थे, तभी उस अवस्थामें लोगोंके जन्म-मरण रूपी व्याधिका हरण करनेवाले परमश्रेष्ठ योगीश्वरको रुद्रने देखा। रुद्रने विचारा—देखूँ, क्या यह उपसर्ग करनेपर त्रस्त होता है और क्या अपने चारित्ररूपी गिरीन्द्रसे नीचे गिरता है? देखूँ कि यह सम्यक्दर्शन धारण करनेवाली प्रियकारिणी देवीका ही पुत्र जिनेन्द्र है, या नहीं। ऐसा विचार करके उस ज्येष्ठके पुत्र रुद्रने लाल आँखें, टेढ़ी भौंहें और भीषण मुख बनाकर काल-कंकालधारी वैताल बनाये जो अपने हाथोंमें तलवार, शूल, क्षेप और फरसे लिये थे। उनके केश पिंगल वर्ण और खड़े हुए थे, नख बड़े लम्बे थे तथा वे अपनी किलकिलाहटकी ध्वनिसे भुवनरूपी गृहको बहिरा कर रहे थे। रुद्रकी प्रेरणासे वे सब भगवान्‌की ओर दौड़े। सिंह भी उनपर झपट पड़े और भीषण विषधारी सर्प भी उनकी ओर फुफकार करते हुए दौड़ पड़े। इसके अतिरिक्त भी उन रुद्र हरने जो भुवनमात्रका संहार करनेमें समर्थ थे, अपनी विद्याओं द्वारा भीषण मेघोंको दर्शाया और घोर जल वृष्टि की ॥२॥

३

रुद्रका उपसर्ग विफल हुआ

रुद्रने समस्त वनचरों द्वारा क्षोभ उत्पन्न कराया। धग्धकाती हुई अग्नि भी जलायी और नाना प्रकारके ऐसे अस्त्र-शस्त्र भी छोड़े जिनसे देव, इन्द्र और चन्द्रका भी दर्प चूर-चूर हो जाय। किन्तु रुद्रके समस्त

सव्वइँ गयाइँ विहलाइँ किह ।
किविणहु मंदिरि वीणाइँ जिह ॥
सचइ-तणएण पवुत्तु हलि ।
गिरिवर-सुइ वियसिय-मुह-कमलि ॥
वीरहु वीरत्तु ण संचलइ ।
किं मेरु-सिहरि कत्थइ ढलइ ॥
इय भणिवि बे वि वंदिवि गयइँ ।
वसहारूढइँ रइ-रस-रयइँ ॥
चेडय-रायहु लय-ललिय-भुय ।
णिय-पुर-वरि चंदण णाम सुय ॥
णंदणवणि कीडइ कमल-मुहि ।
जिह जणणि-जणणु ण वि मुणइ सुहि ॥
घत्ता—तिह विलसिय-वम्मीसें णिय केण वि खयरीसें ।
पुणु णिय-घरिणिहिं भाएं वणि घल्लिय सु-विणीएं ॥३॥

४

णिय-बंधु-विओय-विसण्ण-मइ ।
तहिं दिट्ठी वाहें हंसगइ ॥
धणयत्तें वसहयत्त-वणिहि ।
तें दिण्णी वणि-चूडामणिहि ॥
थणिणा णिय-मंदिरि णिहिय सइ ।
रूवेण णाइँ पच्चक्ख रइ ॥
पडिवक्ख-गुणेहिँ विमद्दियइ ।
चिंतिउ तहु पियइ सुहद्दियइ ॥
एही कुमारि जइ रमइ वरु ।
तो पुणु महु दुक्करु होइ घरु ॥
एयहि केरउ सहुँ जोव्वणिण ।
णासमि वररूउ कुभोयणिण ॥
इय भणिवि णियंबिणि रोसवस ।
घल्लंति भीस-दुव्वयण-कस ॥
कोद्दय-कूरहु सराउ भरिउ ।
सहुँ कंजिएण रस-परिहरिउ ॥

उपसर्ग ऐसे विफल हुए जैसे कृपण पुरुषके घर जाकर दीनजन विफल ही वापस हो जाते हैं। तब उन सात्यकी-पुत्र रुद्रने पार्वतीसे कहा—हे प्रफुल्ल-कमलमुखी गिरिवर-पुत्री पार्वती, देखो इस वीरकी वीरता लेश-मात्र भी चलायमान नहीं होती। भला क्या सुमेरु पर्वत कहीं डिग सकता है? ऐसा कहकर वे दोनों भगवान्‌की वन्दना करके अपने वृषभपर आरूढ़ हो, रति-रसमें अनुरक्त होते हुए वहाँसे चले गये। उधर चेतकराजाकी, लताके समान कोमल भुजाओंवाली कमलमुखी चन्दना नामकी पुत्री जब अपने नगरके नन्दनवनमें क्रीड़ा कर रही थी, तभी कामवासनासे प्रेरित होकर एक विद्याधरने उसका चुपचाप अपहरण कर लिया। इससे उसके माता-पिता तथा सखी-साथियोंको इसका कोई पता न चला। वह विद्याधर उसे ले तो गया किन्तु बीचमें ही अपनी गृहिणीके क्रोधकी आशंकासे भयभीत होकर उसने उसे वनमें ही छोड़ दिया ॥३॥

४

कौशाम्बीमें चन्दना कुमारी द्वारा भगवान्‌का दर्शन

अपने बन्धु-वर्गसे बिछुड़कर और उस वनमें अपनेको अकेली पाकर चन्दनाको बड़ा दुःख हुआ। उसी समय उस हंसगामिनीको एक धनदत्त नामक व्याधने देख लिया। उसने उसे अपने साथ ले जाकर उस नगरके श्रेष्ठ धनी वृषभदत्त नामक वणिक्‌को सौंप दिया। वणिक्‌ने उस सतीको अपने घरमें रखा। किन्तु वह अपने सौन्दर्यसे साक्षात् रति ही थी। अतएव उस वणिक्‌की सुभद्रा नामक पत्नीने प्रतिकूल भावनाओंसे प्रेरित होकर विचार किया कि यदि मेरा पति इस कुमारीपर आसक्त हो गया तो फिर मेरे लिए यह घर दुष्कर हो जायेगा। अतएव अच्छा होगा कि मैं कुत्सित भोजन द्वारा इसके यौवनके साथ-साथ सुन्दर रूपको भी नष्ट कर दूँ। ऐसा विचारकर वह स्त्री रोषके वशीभूत हो उसपर भीषण दुर्वचनरूपी कोड़ोंका प्रहार करने लगी। उसे वह नित्य ही एक कटोरे भर रस-विहीन कोदोंका भात कांजीके साथ खानेको दे देती थी।

सा णिच्च देइ तहिं णव-णवउ ।
एत्तहि परमेट्ठि सु-भइरवउ ॥
गुरु-पाव-भाव-भर-ववसियउ ।
विसहेप्पिणु हर-दुव्विलसियउ ॥
सम-सत्तु-मित्त-जीविय-रमणु ।
अण्णहिं दिणि भव्व-समुद्धरणु ॥
पिंडत्थिउ जाणिय-जीव-गइ ।
कोसंबी-पुर-वरि पइसरइ ॥
घत्ता—णियल-णिरुद्ध-पयाइ चेडय-णिव-दुहियाइ ॥
आविवि संमुहियाइ पणवेप्पिणु दुहियाइ ॥४॥

५

कोद्दव-सित्थइँ सरावि कयइँ ।
सउवीर-विमीसइँ हयमयइँ ॥
मुणि-णाहहु करयलि ढोइयइँ ।
तेण वि णियदिट्ठिइ जोइयइँ ॥
जायाइँ भोज्जु रस-दिण्ण-दिहि ।
अट्ठारह-खण्ड-पयार-विहि ॥
जिण-दाण-पहावें दुरमइँ ।
आयस-घडियइँ रोहिय-कमइँ ॥
सज्जण-मण-णयणाणंदणहि ।
परिगलियइँ णियलइँ चंदणहि ॥
अमरहिं महुयर-मुह-पेल्लियइँ ।
कुंदइँ मंदारइँ घल्लियइँ ॥
रयणाइँ वण्ण-कब्बुरियाइँ ।
पसरंत-किरण-विप्फुरियाइँ ॥
हय दुंदुहि साहुक्कारु कउ ।
गुणि-संगें कासु ण जाउ जउ ॥
कण्णहि गुणोहु विउसेहिं थुउ ।
सहुँ बंधवेहिं संजोउ हुउ ॥
बारह-संवच्छर-तव-चरणु ।
किउ सम्मइणा दुव्वक्कय-हरणु ॥

इसी बीच रुद्रके द्वारा किये गये उस अत्यन्त भयंकर तथा भीषण पापभावसे प्रेरित होकर किये गये उपसर्गको सहनकर वे परमेष्ठी भगवान् महावीर जो शत्रु-मित्र तथा जीवन और मरण आदि द्वन्द्वोंमें समता-भाव रखते थे, वे एक दिन भव्योंके उद्धारकी भावना रखते हुए तथा जीवोंकी विचित्र गतिको समझते हुए आहारके निमित्त कौशाम्बीपुरमें प्रविष्ट हुए। तभी साँकलसे बँधे हुए पैरोंसे युक्त उस दुःखी चेतकराज पुत्रीने भगवान्‌के सम्मुख आकर उन्हें प्रणाम किया ॥४॥

५

चन्दना द्वारा भगवान्‌को आहार-दान

चन्दनाने अपने कोदोंके भातको छाँछसे मिश्रित कर और कटोरेमें रखकर मुनिराजकी हथेलीमें अर्पित कर दिया। भगवान्‌ने जब उसे अपनी दृष्टिसे देखा तो वह अठारह प्रकारके स्वादिष्ट और नाना रसोंसे युक्त भोजन बन गया। चन्दनाके भगवान्‌को दिये उस आहार-दानके प्रभावसे उसकी गतिमें बाधा डालनेवाली वे लोहेकी बनी साँकलें टूटकर गिर गयीं जिससे सज्जनोंके अन्तःकरण और नेत्रोंको बड़ा आनन्द हुआ। देवोंने भ्रमरोंके मुखसे प्रेरित झंकारयुक्त मन्दार पुष्पोंकी वर्षा की। उन्होंने नाना वर्णोंसे विचित्र तथा अपनी फैलती हुई किरणोंसे स्फुरायमान रत्नोंकी भी वृष्टि की, दुन्दुभि भी बजायी और साधु-साधुका उच्चारण भी किया। भला गुणीजनोंके संसर्गसे किसे उल्लास नहीं होगा? विद्वानोंने उस कन्याके गुणोंकी स्तुति की। उसका अपने माता-पिता आदि बान्धवोंके साथ संयोग भी हो गया।

सन्मति भगवान्‌ने दुष्कर्मोंका हनन करते हुए बारह वर्ष तक तपश्चरण किया। अपनी उस चन्दना नामक बहनके अहिंसा और

पोसंतु अहिंस खंति ससहि ।
भयवंतु संतु विहरंतु महि ॥
मउ जिम्हिय-गामहु अइ-णियडि ।
सुविउलि रिजुकूला-णइहि तडि ॥

२५ घत्ता—मोर-कीर-सारस-सरि उज्जाणम्मि मणोहरि ॥
साल-मूलि रिसि-राणउ रयण-सिलहि आसीणउ ॥५॥

६

छट्ठेणुववासें हयदुरिएं ।
परिपालिय-तेरह-विह-चरिएं ॥
वइसाह-मासि सिय-दसमि दिणि ।
अवरण्हइ जायइ हिमं-किरणि ॥
हत्थुत्तर-मज्झ-समासियइ ।
पहु वड्ढिवण्णउ केवल-सियइ ॥
घणघणहँ घाइकम्महँ हयहँ ।
खुहियाहँ झत्ति तिण्णि वि जयहँ ॥
घंटा-रव हरि-रव पडह-रव ।
आया असंख सुर संख-रव ॥
वंदियउ तेहिं वीराहिवइ
सुत्तामउ चरण-जुयलु णवइ ॥
किउ समवसरणु गय-सर-सरणु ।
उक्कट्ठउ तिहुवण-जण-सरणु ॥
आहंडलेण पप्फुल्ल-मुहु ।
सेणिय हउँ आणिउ दिय-पमुहु ॥
महु संसयेण संभिण्ण मइ ।
जिणु पुच्छिउ जीवहु तणिय गइ ॥
णाहें महु संसउ णासियउ ।
मइँ अप्पउ दिक्खइ भूसियउ ॥
मइँ समउ समण-भावहु गयहँ ।
पावइयहँ दियहँ पंचसयहँ ॥

घत्ता—पत्ते मासे सावणि बहुले पाडिवए दिणि ॥
उप्पण्णउ चउ-बुद्धिउ महु सत्त वि रिसि-रिद्धिउ ॥६॥

क्षमा-भावोंका पोषण करते हुए तथा पृथ्वीपर विहार करते हुए वे भगवान् ऋषिराज जृम्भिका नामक ग्रामके अति निकट ऋजुकूला नदीके विशाल तटवर्ती मनोहर उद्यानमें जहाँ मयूर, शुक और सारस क्रीड़ा कर रहे थे वहाँ सालवृक्षके मूलमें पड़ी हुई रत्नशिलापर विराजमान हुए ॥५॥

६

भगवान्‌को केवलज्ञानकी उत्पत्ति

पापका हरण करनेवाले षष्ठोपवास करते हुए तथा तेरह प्रकारके चारित्रका पालन करते हुए भगवान् अपनी तपस्यामें लीन रहने लगे। फिर वैशाखमासके शुक्लपक्षकी दशमी तिथिको अपराह्णमें जब चन्द्र हस्त और उत्तरा फाल्गुनि नक्षत्रके मध्यमें स्थित था तब भगवान्‌को केवल-ज्ञानरूपी लक्ष्मीकी प्राप्ति हुई। उनके सघन घातिकर्म विनष्ट हो गये। उस समय तीनों लोकोंमें जागृति उत्पन्न हुई। घण्टा, पटह तथा शंखोंकी ध्वनि एवं सिंहनाद करते हुए असंख्य देव आ उपस्थित हुए। उन्होंने महावीर भगवान्‌की वन्दना की। इन्द्रने भी उनके चरण-युगलमें नमन किया। फिर उन्होंने समवशरणकी रचना की जिसके मध्यमें कामको दूर करने-वाले एवं भुवनके लोगोंको आश्रयभूत भगवान् विराजमान हुए। गौतम गणधर राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे श्रेणिक, उस समय इन्द्र प्रसन्नमुख होकर मुझ द्विज-प्रमुखको यहाँ ले आया। उस समय मेरी मति संशयसे भ्रान्त थी, अतएव मैंने जिनेन्द्रसे जीवकी गतिके विषयमें प्रश्न किया। भगवान्‌ने मेरे संशयको दूर कर दिया, तब मैंने अपनेआपको मुनि-दीक्षासे विभूषित किया। मेरे साथ अन्य पाँच सौ द्विज भी प्रव्रज्या लेकर श्रमण बन गये। तत्पश्चात् श्रावणमासके कृष्णपक्षकी प्रतिपदाका दिन आनेपर मुझे चारों प्रकारकी बुद्धि तथा सातों ऋषि-ऋद्धियाँ भी उत्पन्न हो गयीं ॥६॥

७

महंतो महाणाणवंतो सभूई ।
गणी वाउभूई पुणो अग्गिभूई ॥
सुधम्मो मुणिंदो कुलायास-चंदो ।
अणिंदो णिवंदो चरित्ते अमंदो ॥
इसी मोरि मुंडी सुओ चत्त-गावो ।
समुप्पण्ण-वीरंघि-राईव-भावो ॥
सया सोहमाणो तवेणं खगामो ।
पवित्तो सचित्तेण मित्तेय णामो ॥
सयाकंपणो णिच्चलंको पहासो ।
विमुक्कंग-राओ रई-णाह-णासो ॥
इमे एवमाई गणेसा मुणिल्ला ।
जिणिंदस्स जाया असल्ला महल्ला ॥
स-पुव्वंग-धारीण मुक्कावईणं ।
पसिद्धाइँ गुत्ती-सयाइं जईणं ॥
दहेक्कूणयाइं तहिं सिक्खुयाणं ।
समुम्मिल्ल-सव्वावही-चक्खुयाणं ॥

घत्ता—मोहें लोहें चत्तउ तिहिँ सएहिं संजुत्तउ ॥
एक्कु सहसु संभूयउ खम-दम-भूसिय-रूवउ ॥७॥

८

पंचेव चउत्थ-णाण-धरहं ।
सत्तेव सुकेवलि-जइ-वरहं ॥
चत्तारि सयइं वाई-वरहं ।
दिय-सुगय-कविल-हर-गय-हरहं ॥
छत्तीस सहासइँ संजईहिं ।
भणु एक्क लक्खु मंदिरजईहिं ॥
लक्खाइं तिण्णि जहिं सावइहिं ।
सुर-देवहिं मुक्क-संख-गइहिं ॥
संखेज्जएहिं तिरिएहिं सहुँ ।
परमेट्ठि देउ सोक्खाइँ महुँ ॥

७

भगवान्‌के इन्द्रभूति गौतम आदि एकादश गणधर

महाज्ञानवान् एवं विभूतियुक्त इन्द्रभूति गौतम महावीर भगवान्‌के श्रेष्ठ गणधर हुए। दूसरे वायुभूति, तीसरे अग्निभूति, चौथे सुधर्म मुनीन्द्र जो अपने कुलरूपी आकाशके चन्द्रमा थे, अनिंद्य, नर-वन्द्य तथा चारित्रमें अमंद थे। पाचवें ऋषि मौर्य, छठे मुण्ड (मौण्य), सातवें सुत (पुत्र) जो इन्द्रियोंकी आसक्तिसे रहित तथा वीरभगवान्‌के चरणकमलोंके भक्त थे। आठवें मैत्रेय जो महातपसे शोभायमान, इन्द्रियजित् व शुक्ल-ध्यानी तथा चित्तसे पवित्र थे। नवमें अकम्पन जो सदैव तपस्यामें अकम्प रहते थे। दसवें अचल और ग्यारहवें प्रभास जो देहके अनुरागसे रहित तथा कामदेवके विनाशक थे। जिनेन्द्र भगवान्‌के ये ग्यारह गणधर मुनि हुए जो शल्य-रहित और महान् थे। इनके अतिरिक्त भगवान्‌के तीन सौ शिष्य ऐसे थे, जो समस्त पूर्वों एवं अंगों के ज्ञाता थे, सुप्रसिद्ध थे एवं अव्रतोंके त्यागी अर्थात् महाव्रती थे। भगवान्‌के नौ सौ शिष्य ऐसे थे जिनके सर्वावधि ज्ञानरूपी चक्षु खुल गये थे अर्थात् जो सर्वावधि-ज्ञान-धारी थे। भगवान्‌के संघमें एक हजार तीन सौ ऐसे मुनि भी थे जो मोह और लोभके त्यागी तथा क्षमा और दम आदि गुणोंसे भूषित थे ॥७॥

८

भगवान्‌का मुनिसंघसहित विपुलाचल पर्वतपर आगमन

भगवान्‌के संघमें पाँच चतुर्थ-ज्ञान-धारी अर्थात् मनःपर्ययज्ञानी तथा सात केवलज्ञानी मुनि भी थे।

उनके चार सौ ऐसे श्रेष्ठ वादी मुनि थे जो द्विज, सुगत (बुद्ध), कपिल और हर (शिव) इनके सिद्धान्तोंका खण्डन करनेमें समर्थ थे। इन मुनियोंके अतिरिक्त संघमें छत्तीस सहस्र संयमिनी अर्थात् अर्जिकाएँ, एक लाख गृहस्थ श्रावक तथा तीन लाख श्राविकाएँ थीं। देव और देवियोंकी तो संख्या असंख्य थी। उन परमेष्ठी देवके साथ संख्येय तिर्यंच भी थे जो उनके साथ रहनेमें सुखका अनुभव करते थे।

णाणा-विहोय-रंजिय-सुरइं ।
विहरेप्पिणु वेउ गामपुरइं ।
सम्मत्त-धोय-मिच्छा-मलइं ।
संबोहिवि भव्व-जीव-कुलइं ॥
विहरंतु पसुह विद्धत्थ-रइ ।
विउलइरि पराइउ भुवणगुरु ॥
आवेप्पिणु दुह-णिण्णास-यरू ।
सेणिय पइँ वंदिउ तित्थयरू ॥
पुच्छियउ पुराणु महंतु पइं ।
भासियउ असेसु वि तुज्झु मइं ॥

घत्ता—णिसुणिवि गोत्तमभासियं भरहाणंद-विहूसियं ॥
संबुद्धा विसहर-णरा पुप्फयंत-जोईसराँ ॥८॥

इय वीरजिणिंदचरिए केवलणाणुप्पत्तिवण्णणो णाम
विदिओ सन्धी ॥२॥

इस विशाल चतुर्विध संघसहित एवं नाना विभूतियों द्वारा देवोंको भी अनुराग उत्पन्न करते हुए भगवान्‌ने अनेक ग्रामों एवं नगरोंमें विहार किया तथा भव्य जीवोंके विशाल समुदायोंका सम्बोधन करके सम्यक्-दर्शनरूपी जलसे उनके मिथ्यात्वरूपी मलको धो डाला। वे त्रिभुवन-नाथ वसुधापर विहार करते हुए तथा काम-व्यसनको दूर करते हुए राजगृहके समीप विपुलाचल पर्वतपर पहुँचे। गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे श्रेणिक, तूने विपुलाचलपर आकर उन दुःख-विनाशक तीर्थंकर भगवान् महावीरकी वन्दना की। तूने महापुराण सम्बन्धी प्रश्न भी किये जिनके उत्तरमें मैंने तुझे समस्त पुराण कह सुनाया। गौतम गणधरके उस भाषणको सुनकर समस्त भारतदेश आनन्दसे विभूषित हो गया तथा पुष्पदन्त कवि कहते हैं, नाग मनुष्य तथा योगेश्वर सभीका संबोधन हो गया ॥८॥

इति वीरजिनेन्द्र चरितमें केवलज्ञानोत्पत्ति विषयक
द्वितीय सन्धि समाप्त ॥ सन्धि २॥

(महापुराणु सन्धि ९७ से संकलित)

सन्धि ३

वीर-जिणिंद-णिव्वाण-पत्ति

१

अंत-तित्थणाहु वि महि विहरिवि ।
जण-दुरियाइँ दुलंघइँ पहरिवि ॥
पावा-पुरवरु पत्तउ मणहरि ।
णव-तरु-पल्लवि वणि बहु-सरवरि ॥
संठिउ पविमल-रयण-सिलायलि ।
रायहंसु णावइ पंकय-दलि ॥
दोण्णि दियहँ पविहारु मुएप्पिणु ।
सुक्क-झाणु तिज्जउ झाएप्पिणु ॥

घत्ता—णिव्वत्तिइ कत्तिह तम-कसणि पक्ख चउद्दसि-वासरि ।
थिइ ससहरि दुहँहरि साइवइ पच्छिम-रयणिहि अवसरि ॥१॥

२

कय-तिजोय-सुणिरोहु अणिट्ठउ ।
किरिया-छिण्णइ झाणि परिट्ठउ ॥
णिहयाघाइ-चउक्कु अदेहउ ।
वसु-सम-गुण-सरीरु णिण्णेहउ ॥
रिसि-सहसेण समउ रय-छिंदणु ।
सिद्धउ जिणु सिद्धत्थहु णंदणु ॥
तियस-विलासिणि णच्चिउ तालहिं ।
अमरिंदहिँ णव-कुवलय-मालहिं ॥
णिव्वुइ वीरि गलिय-मय-रायउ ।
इंदभूइ गणि केवलि जायउ ॥
सो विउलइरिहि गउ णिव्वाणहु ।
कम्म-विमुक्कउ सासय-ठाणहु ॥

सन्धि ३

वीर जिनेन्द्रकी निर्वाण-प्राप्ति

१

भगवान्‌का विपुलाचलसे विहार करते हुए पावापुर आगमन

वे अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर विपुलाचलसे चलकर पृथ्वीपर विहार करते हुए एवं जनताके दुर्लंघ्य दुष्कर्मोंका अपहरण करते हुए पावापुर नामक उत्तम नगरमें पहुँचे। उस नगरके समीप एक मनोहर वन था, जहाँ वृक्ष नये पल्लवों से आच्छादित थे और अनेक सरोवर थे। उस वन में भगवान् एक विशुद्ध रत्नशिला पर विराजमान हुए, जैसे मानो एक राजहंस कमल-पत्रपर आसीन हो। वहाँसे उन्होंने दो दिन तक कोई विहार नहीं किया और वे तृतीय शुक्लध्यानमें मग्न रहे। फिर कार्तिक मासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके दिन रात्रिके अन्तिम भागमें जब चन्द्र सुखदायी स्वातिनक्षत्रमें स्थित था, तब उन्हें निर्वाणकी प्राप्ति हो गयी ॥१॥

२

भगवान्‌का निर्वाण तथा उनकी शिष्य-परम्परा

भगवान्‌ने अपने मन, वचन और काय इन तीनों योगोंका भले प्रकार निरोध करके छिन्न-क्रिया-निवृत्ति नामक ध्यान धारण किया। उन्होंने चारों अघाति कर्मोंका नाश कर डाला। और इस प्रकार ये सिद्धार्थ राजाके पुत्र जिनेन्द्र महान् जिन, राग-द्वेषरहित होकर तथा समस्त पाप रूपी रजको दूर करके, शरीर-रहित होते हुए, सम्यक्त्व आदि अष्टगुणोंसे युक्त सिद्ध हो गये। उनके साथ अन्य एक सहस्र मुनि भी सिद्धत्वको प्राप्त हुए। उस समय नये कमल-पुष्पोंकी मालाओंको धारण किये हुए सुरेन्द्रोंने ताल दे देकर, देवलोककी अप्सराओंका नृत्य कराया।

वीर भगवान्‌के निर्वाण प्राप्त करनेपर मद और रागको विनष्ट कर इन्द्रभूति गणधरने केवलज्ञान प्राप्त किया। वे अपने कर्मोंसे मुक्त होकर,

तहिँ वासरि उप्पण्णउ केवलु ।
मुणिहि सुधम्महु पक्खालिय-मलु ॥
तण्णिव्वाणइ जंबू-णामहु ।
पंचमु दिव्व-णाणु हय-कामहु ॥
णंदि सु-णंदिमित्तु अवरु वि मुणि ।
गोवद्धणु चउत्थु जलहर-झुणि ॥
ए पच्छइ समत्थ सुय-पारय ।
णिरसिय-मिच्छायम णिरु णीरय ॥
पुणु वि विसह-जइ पोट्ठिलु खत्तिउ ।
जउ णाउ वि सिद्धत्थु हयत्तिउ ॥
दिहिसेणंकु विजउ बुद्धिल्लउ ।
गंगु धम्मसेणु वि णीसल्लउ ॥
पुणु णक्खत्तउ पुणु जसवालउ ।
पंडु णाम धुवसेणु गुणालउ ॥
घत्ता—अणुकंसउ अप्पउ जिणिवि थिउ पुणु सुहद्दु जग-सुहयरु ॥
जसभद्दु अखुद्दु अमंद-मइ णाणें णावइ गणहरु ॥२॥

३

भद्दबाहु लोहंकु भडारउ ।
आयारंग-धारि जग-सारउ ॥
एयहिँ सव्वु सत्थु मणि माणिउ ।
सेसहिँ एक्कु देसु परियाणिउ ॥
पुव्वयालि सुइ णिसुणिय भरहें ।
राएं रिउ-बहु-दाविय-विरहें ॥
एव राय-परिवाडिइ णिसुणिउ ।
धम्मु महा-मुणि-णाहहिँ विसुणिउ ॥
सेणिय-राउ धम्म-सोयारहँ ।
पच्छिल्लउ वज्जिय-भय-भारहँ ॥
जिणसेणेण वीरसेणेण वि ॥
जिण-सासणु सेविउ मय-गिरि-पवि ॥
ताहँ वि पच्छइ बहु-रस-णडियइ ।
भरहें काराविउ पद्धडियइ ॥

विपुलगिरि पर्वतपर निर्वाणरूपी शाश्वत स्थानको प्राप्त हो गये। उसी दिन सुधर्म मुनिको पापमलका प्रक्षालन करनेवाला केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। सुधर्म मुनिका निर्वाण होनेपर कामको जीतनेवाले जम्बू नामक गणधरको वहीं पंचम दिव्यज्ञान अर्थात् केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। उक्त तीन प्रधान केवलज्ञानी गणधरोंके पश्चात् क्रमशः नन्दि, नन्दिमित्र अपर (अपराजित), और चौथे गोवर्धन तथा पाँचवें भद्रबाहु, ये मेघके समान गम्भीर ध्वनि करनेवाले समस्त श्रुतज्ञानके पारगामी अर्थात् श्रुतकेवली हुए जिन्होंने मिथ्यात्वरूपी मलको दूर कर शुद्ध वीतराग भाव प्राप्त किया। उनके पश्चात् (ग्यारह अंगों तथा दशपूर्वोंके ज्ञाता क्रमशः निम्नलिखित एकादश मुनि हुए)—विशाख, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जय, नागसेन, सिद्धार्थ, धृतिसेन, विजय, बुद्धिल, गंग और निःशल्य धर्मसेन। इनके पश्चात् नक्षत्र, यशपाल, पाण्डु, ध्रुवसेन और कंस, ये पाँच ग्यारह अंगधारी हुए। कंसके पश्चात् सुभद्र व यशोभद्र मुनि हुए जो आत्मजयी, जनसुखकारी, महान् तीव्रबुद्धि तथा गणधरके समान ज्ञानी थे॥२॥

३

प्रस्तुत ग्रन्थकी पूर्व परम्परा

यशोभद्रके पश्चात् भद्रबाहु तथा लोहाचार्य भट्टारक हुए। ये (चारों आचार्य) जगत्के सारभूत आचारांगके धारी थे। इन्होंने आचारांग शास्त्रका पूर्णज्ञान अपने मनमें धारण किया था, तथा शेष आगमोंका उन्हें केवल एकदेश अर्थात् संक्षिप्त ज्ञान था। पूर्व कालमें जिस श्रुत-ज्ञानको शत्रुओंकी वधुओंको वैधव्य दिखलानेवाले (शत्रु-विजयी) राजा भरतने सुना था, वही राजपरिपाटीसे निरन्तर सुना जाता रहा और उसी धर्मको महा मुनिनाथोंने प्रकट किया। उन संसारके भयरूपी भारको दूर करनेवाले धर्मश्रोताओंमें सबसे पिछले राजा श्रेणिक हुए। आचार्य वीरसेन और जिनसेनने भी उस जैन शासनकी सेवा की जो मदरूपी पर्वतका वज्रके समान विनाशक है। उनके पश्चात् उसे नाना

पढिवि सुणिवि आयण्णिवि णिम्मलि ॥
पयडिउ मामइएं इय महियलि ॥
कम्म-क्खय-कारणु गणि-दिट्ठउ ।
एव महापुराणु मइँ सिट्ठउ ॥
एत्थु जिणिंद-मग्गि ऊणाहिउ ।
दुट्ठि-विहीणें जं मइँ साहिउ ॥
तं महु खमहु तिलोयहु सारी ।
अरुहुग्गय सुयएवि भडारी ॥
चउवीस वि महु कलुस-खयंकर ।
देंतु समाहि बोहि तित्थंकर ॥

घत्ता—दुहु छिंदउ णंदउ सुयणयलि णिरुवमु कण्ण-रसायणु ॥
आयण्णउ मण्णउ ताम जणु जाम चंदु तारायणु ॥३॥

४

वरिसउ मेह-जालु वसुहारहिं ।
महि पिच्चउ बहु-धण्ण-पयारहिं ॥
णंदउ सासणु वीर-जिणेसहु ।
सेणिउ णिग्गउ णरय-णिवासहु ॥
लग्गउ पहवणारंभहु सुरवइ ।
णंदउ पय सुहु णंदउ णरवइ ॥
णंदउ देसु सुहिक्खु वियंभउ ।
जणु-मिच्छत्तु दुचित्तु णिसुंभउ ॥
पढिवण्णिय-परिपालण-सूरहु ।
होउ संति भरहहु वर-वीरहु ॥
होउ संति बहु-गुण-गणवंतहँ ।
संतहं दयवंतहं भयवंतहँ ॥
होउ संति संतहु दंगइयहु ।
होउ संति सुयणहु संतइयहु ॥
जिण-पय-पणामण-वियलिय-गव्वहँ ।
होउ संति णीसेसहँ भव्वहँ ॥

घत्ता—इय दिव्वहु कव्वहु तणउ फलु लहु जिणणाहु पयच्छउ ॥
सिरि-भरहहु अरुहहु जहिं गमणु पुप्फयंतु तहिं गच्छउ ॥४॥

रसोंसे जटित पद्धडिया छन्दमें महामन्त्रि भरतने लिखवाया। उसे पढ़कर, सुनकर व कानोंमें देकर मामैया द्वारा वही निर्मल महीतल पर प्रकट किया गया। गणधरों द्वारा उपदिष्ट यह पुराण कर्मक्षयका कारण है। इसी दृष्टिसे मैंने इस महापुराणकी सृष्टि की है। इस जिनेन्द्र मार्गके कथनमें मुझ बुद्धिहीन द्वारा जो कुछ कम या अधिक कहा गया हो उसे त्रैलोक्यको सारभूत अरहंत भगवान् द्वारा प्रादुर्भूत पूज्य श्रुतदेवी क्षमा करें! वे चौबीसों तीर्थंकर, जो समस्त पापोंका क्षय करनेवाले हैं, मुझे समाधि और बोधि प्रदान करें। यह अनुपम कर्ण-रसायनरूप रचना भुवनतल पर दुःखोंका नाश करे और आनन्द उत्पन्न करे, तथा लोग उसे तब तक श्रवण और मनन करें जबतक आकाशमें चन्द्र और तारा-गण विद्यमान हैं ॥३॥

४

कविकी लोक-कल्याण भावना

मेघ-समूह यथासमय संपत्तिधाराओंसे वर्षा करें। पृथ्वी प्रचुर धन-धान्यसे भरी रहे। वीर जिनेन्द्रका शासन जीवोंको आनन्ददायी हो। राजा श्रेणिक अपने नरक-निवाससे बाहर निकलें और आगामी तीर्थंकरके रूपमें देवेन्द्र उनकी अभिषेक-विधिमें लग जावें। समस्त प्रजा सुखसे आनन्द करे और शासकगण भी प्रसन्न रहें। देशभरमें आनन्द हो और सुभिक्ष फैला रहे। लोग अपने मिथ्यात्व और दुश्चिन्तनका विनाश करें। अपनी प्रतिज्ञाके परिपालनमें शूरवीर श्रेष्ठ सुभट भरतको शान्ति प्राप्त हो। नाना गुण-समूहोंके धारी दयावान् सन्त और मुनियोंको भी शान्ति प्राप्त हो। सज्जन, दंगय्या और सुजन संतैयाको भी शान्ति मिले। शेष उन समस्त भव्योंको भी शान्ति मिले जिनका गर्व व अभिमान जिनेन्द्र भगवान्के चरणोंमें प्रणाम करनेसे दूर हो गया है। इस दिव्य काव्यकी रचनाका फल जिनेन्द्र भगवान् मुझे शीघ्र प्रदान करें तथा मुझ पुष्पदन्त कविका गमन भी वहीं हो जहाँ श्री भरत और भगवान् अरहंत गये हैं ॥४॥

५

सिद्धि-विलासिणि-मणहर-दूएं।
मुद्धाएवी-तणु-संभूएं॥
णिद्धण-सधण-लोय-समचित्तें।
सव्व-जीव-णिक्कारण-मित्तें॥
सद्द-सलिल-परिवड्ढिय-सोत्तें।
केसव-पुत्तें कासव-गोत्तें॥
विमल-सरासइ-जणिय-विलासें।
सुण्ण-भवण-देवउल-णिवासें॥
कलि-मल-पबल-पडल-परिचत्तें।
णिग्घरेण णिप्पुत्त-कलत्तें॥
णइ-वावी-तलाय-कय-ण्हाणें।
जर-चीवर-वक्कल-परिहाणें॥
धीरें धूली-धूसरियंगें।
दूरयरुज्झिय-दुज्जण-संगें॥
महि-सयणयलें कर-पंगुरणें।
मग्गिय-पंडिय-पडिय-मरणें॥
मण्णखेड-पुरवरि णिवसंतें।
मणि अरहंत-धम्मु झायंतें॥
भरह-मण्णणिज्जें णय-णिलएं।
कव्व-पबंध-जणिय-जण-पुलएं॥
पुप्फयंत-कइणा धुय-पंकें।
जइ अहिमाणमेरु-णामंकें॥
कयउ कव्वु भत्तिए परमत्थें।
जिण-पय-पंकय-मउलिय-हत्थें॥
कोहण-संवच्छरि आसाढइ।
दहमइ दियहि चंद-रुइ-रूढइ॥

घत्ता—णिह णिरहहु भरहहु बहुगुणहु कइकुलतिलएं भणियउ॥
सुपहाणु पुराणु तिसट्ठिहिं मि पुरिसहँ चरिउ समाणियउ॥५॥

इय वीरजिणिंदचरिए णिव्वाणगमणो णाम तइओ सन्धी ॥३॥

(महापुराण सन्धि १०२ से संकलित)

५

कवि-परिचय

इस पुराणकी रचना कश्यपगोत्रीय केशव भट्ट तथा मुग्धा देवीके पुत्र पुष्पदन्त द्वारा की गयी है। वे सिद्धिरूपी विलासिनीके मनोहर दूत हैं। उनकी चित्तवृत्ति निर्धन और धनी लोगों के प्रति समान रहती है। वे समस्त जीवों के निष्कारण मित्र हैं। उनके कान शब्दरूपी जलसे भरे हुए हैं। वे स्वच्छ निर्मल सरस्वतीका आश्रय लेकर प्रसन्न रहते हैं। वे शून्य गृह या देवालयको अपना निवास बना लेते हैं। वे कलिकालकी मलिनताके प्रबल पटलसे रहित हैं। उनका न कोई अपना निजी घर है और न कोई पुत्र व स्त्री है। वे कहीं भी किसी नदी, कुएँ या तालाबमें स्नान कर लेते हैं और कैसे भी जीर्णवस्त्र या वल्कलको पहन लेते हैं। वे धूलिसे धूसरित अंग भी रह लेते हैं। वे धैर्यवान् हैं और दुर्जनोंके संगका दूरसे ही परित्याग करते हैं। वे भूमितलको ही अपनी शैया बना लेते हैं और अपने ही हाथका तकिया लगा लेते हैं। वे पण्डित-पण्डित-मरण अर्थात् श्रेष्ठ मुनियों जैसे समाधिमरणकी याचना करते हैं। उन्होंने इस उत्तम मान्यखेट नगरमें निवास किया व मनमें अरहन्त धर्मका ध्यान रखा। वे भरत मन्त्री द्वारा सम्मानित हुए। वे नय-निधान अपने काव्य-प्रबन्धकी रचना द्वारा लोगोंको रोमांचित कर देते थे। अपने मनोमालिन्यको दूरकर, भक्ति सहित परमार्थकी भावनासे जिनेन्द्रके चरणकमलोंमें हाथ जोड़कर प्रणामकर जगत्में अभिमान-मेरु नाम से विख्यात उन्हीं पुष्पदन्त कविने इस काव्यकी रचना की और उसे क्रोधन-संवत्सरके आषाढ़ मासके शुक्लपक्षकी दशमी तिथिको पूर्ण किया।

इस प्रकार निःशेष पापोंसे रहित बहुगुणी भरतके निमित्त उक्त-कविकुलतिलक पुष्पदन्त द्वारा वर्णित यह त्रेसठ-शलाका-पुरुष-चरित रूपी सुप्रधान पुराण समाप्त हुआ ॥५॥

इति वीर-जिनेन्द्र-चरितमें निर्वाणप्राप्ति विषयक
तृतीय संधि समाप्त ॥ ३ ॥

सन्धि ४

जम्बूसामि-पवज्जा

१

आहिंडिवि मंडिवि सयल महि
धम्में रिसि परमेसरु ।
ससिरिहि विउलइरिहि आयउ
काले वीर-जिणेसरु ॥ध्रुवकं॥
सेणिउ गउ पुणु वंदण-हत्तिइ ।
समवसरणु जोयंतउ भत्तिइ ॥
पुणु मगहाहिउ भावें घोसइ ।
देव चरम-केवलि को होसइ ॥
भारह-वरिसि गणेसरु भासइ ।
एहु सु विज्जुमालि सुरु दीसइ ॥
भूसिउ अच्छराहिँ गुणवंतहिँ ।
विज्जुवेय-विज्जुलिया-कंतहिँ ॥
पिक्क सालि-छेत्तु अलिओ सिहि ।
मय-मत्तउ करिंदु बहु-मय-णिहि ॥
देव-दिण्ण-जंबूहल-दायइ ।
इय सिविणय-दंसणि संजायइ ॥
अरुहयास-वणियहु वण-थणियहि ।
सुरवरु जिणदासिहि सेट्ठिणियहि ॥
सत्तम-दिवसि गब्भि थाएसइ ।
जंबू सुरहु पुज्ज पावेसइ ॥
जंबूसामि णाम इहु होसइ ।
तक्कालइ णिव्वुइ जाएसइ ॥
वड्ढमाणु पावापुर-सर-वणि ।
णिद्ध-णील-णव-चउरंगुल-तणि ॥

सन्धि ४

जम्बूस्वामिकी प्रव्रज्या

१

राजा श्रेणिक द्वारा अन्तिम केवली विषयक प्रश्न व गौतम गणधरका उत्तर

भगवान् महावीर विचरण करते हुए तथा अपने धर्मोपदेशसे समस्त जगत्को अलंकृत करते हुए यथा समय सुन्दर विपुलाचल पर्वतपर आकर विराजमान हुए। तब मगधके राजा श्रेणिक भक्तिपूर्वक उनकी वन्दनाके लिए गया और भगवान्के समोसरणके दर्शन किये। फिर मगध नरेशने धर्मभावसे प्रश्न किया—हे देव, इस भारतवर्षमें अन्तिम केवलज्ञानी कौन होगा? इसपर गौतम गणधर बोले—हे राजन्, यह जो तुम अपने सम्मुख विद्युत्के समान कान्तिवान् और गुणवती अप्सराओं सहित विद्युन्माली देवको देख रहे हो, वही आजसे सातवें दिवस अरहदास सेठुकी उस जिनदासी सेठानीके गर्भमें उत्पन्न होगा। जब वह पके हुए शालिक्षेत्र, जलती हुई अग्नि, मदोन्मत्त तथा बहुतसे मदसे आच्छादित हाथी और देव द्वारा दिये हुए जम्बूफलके उपहारको अपने स्वप्नमें देखेगी, तब उस स्वप्नके फलस्वरूप उनका पुत्र जम्बू देव द्वारा पूजा प्राप्त करेगा, और इस पृथ्वीपर उसका नाम जम्बूस्वामी होगा और वह उसी जन्ममें निर्वाण प्राप्त करेगा।

उसी समय स्निग्ध नीलवर्ण चौरानबे अंगुल ऊँचे शरीरके धारी भगवान् वर्धमान पावापुरके सरोवर युक्त वनमें ऐसे निर्वाणको प्राप्त होंगे, जो

तइयहुँ जाएसइ णिव्वाणहु ।
अचलहु केवल-णाण-पहाणहु ॥
घत्ता—इउँ केवलु अइणिम्मलु पाविवि समउ सुहम्में ॥
एउ जि पुरु वोसिय-सुरु आवेसमि हय-कम्में ॥१॥

२

सुणि सेणिय कूणिउ तुह णंदणु ।
संबोहेसमि सुयणाणंदणु ॥
जंबूसामि वि तहिं आवेसइ ।
अरुह-दिक्ख भत्तिइ मग्गेसइ ॥
सयणहिँ सो णिज्जेसइ मइइ ।
णिय-पुरि सत्त-भूमि-थिय-मंडइ ॥
तहु विवाहु तेहिँ पारंभेव्वउ ।
तेण वि णिय-मणि अवहेरिव्वउ ॥
सायरदत्त-तणय पोमावइ ।
अवर सुलक्खण सुर-गय-वर-गइ ॥
पोमसिरि त्ति कणयसिरि सुंदरि ।
विणयसिरि त्ति अवर वर धणसिरि ॥
भवण-मज्झि माणिक्क-पईवइ ।
रयण-चुण्ण-रंगावलि भावइ ॥
एयहिँ सहुँ तहिँ अच्छइ मणहरु ।
कण्णाँविय इय णव-कंकण-करु ॥
वरु वहुयहुँ करयलु करि ढोयइ ।
जणणि तासु पच्छण्णु पलोयइ ॥
तहिँ अवसरि सुरम्म-देसंतरि ।
विज्जुराय-सुउ पोयणपुरवरि ॥
विज्जुप्पहु णामें सुहडग्गणि ।
कुद्धउ सो अरि-गिरि-सोदामणि ॥
केण वि कारणेण णं दिग्गउ ।
णिय-पुरु मेल्लिवि सहसा णिग्गउ ॥
अइंसणु कवाड-उग्घाडणु ।
सिक्खिवि लोय-बुद्धि-णिद्धाडणु ॥

अचल है और केवलज्ञानप्रधान है। उस समय मैं अर्थात् गौतम गणधर अति निर्मल केवलज्ञान प्राप्त करूँगा और कर्मघाती गणधर सुधर्म सहित इसी देवोंको सन्तुष्ट करनेवाले राजगृह नगरमें आऊँगा ॥१॥

२

जम्बूस्वामी-विवाह व गृहमें चोर-प्रवेश

गौतम गणधर कहते हैं कि हे श्रेणिक, तुम्हारे पुत्र कुणिक को मैं संबोधित करूँगा और वह श्रुतज्ञान पाकर आनन्दित होगा। उसी समय जम्बूस्वामी भी वहाँ आवेगा और वह भक्तिपूर्वक अरहन्तदीक्षा माँगेगा। किन्तु उसके बन्धुजन उसे बलपूर्वक रोकेंगे और वह अपने नगरमें सप्त भूमिप्रासाद अर्थात् सतखण्डे महलमें रहने लगेगा। फिर उसके विवाहकी तैयारी की जायगी। किन्तु वह अपने मनमें उसकी अवहेलना करेगा तथापि सागरदत्त सेठकी पुत्री पद्मावती, देवगजगामिनी सुलक्षणा, पद्मश्री, सुन्दरी कनकश्री, विनयश्री, धनश्री, भवनके मध्य माणिक्य प्रदीपके समान माणिक्यवती और रत्नोंके चूर्णसे निर्मित रंगावलीके समान सुन्दरी रंगावलि, इनके साथ वह वरके रूपमें नये कंकन बाँधे अपना हाथ उठाकर उन वधुओंका पाणिग्रहण करेगा। उसी रात्रि जब उसकी माता चुपचाप देख रही थी, तभी उनके घरमें एक चोरने प्रवेश किया। यह चोर यथार्थतः उसी समय सुरम्यदेशकी राजधानी पोदनपुरके विद्युत्शय नामक राजाका पुत्र था। उसका नाम विद्युच्चर था और वह सुभटोंका अग्रणी था। वह शत्रुरूपी पर्वतोंके लिए वज्रसमान दिग्गज किसी कारणसे क्रुद्ध हो गया और अकस्मात् अपना नगर छोड़कर चला गया। उसने अदृश्य होने, कपाट खोलने तथा लोगोंकी बुद्धिको विनष्ट करनेकी विद्या

विज्ज-चोरु णिय-णाउ कहेप्पिणु ।
पंचसयाइँ सहायहँ लेप्पिणु ॥

घत्ता—बलवंतहिँ मंतहिँ तंतहिँ गाविउ दुक्कउ तक्कउ ॥
अंधारइ घोरइ पसरियइ रयणिहि दूसिय-भक्खरु ॥२॥

३

माणवेण णउ केण वि दिट्ठउ ।
अरुहदास-वणि-भवणि पइट्ठउ ॥
दिट्ठी तेण तेत्थु पसरिय-जस ।
जिणवरदासि णट्ठ-णिद्दालस ॥
पुच्छिय कुसुमालें किं चेयसि ।
भणु भणु माइरि किं णउ सोवसि ॥
ताइँ पबोल्लिउ महु सुउ सुह-मणु ।
परइ बप्प पइसरइ तबोवणु ॥
पुत्त-विओय-दुक्खु तणु तावइ ।
तेण णिद्द महु किं पि वि णावइ ॥
बुद्धिमंतु तुहुँ बुह-विण्णायहिँ ।
एहु णिवारहि सुहडोवायहिँ ॥
पइँ हउँ बंधवु परमु घियप्पमि ।
जं मग्गहि तं दविणु समप्पमि ॥
तं णिसुणिवि णिरुक्कु गउ तेत्तहि ।
अच्छइ सहुँ वहुयहि वरु जेत्तहि ॥
जंपइ भो कुमार णउ जुज्जइ ।
जणु परलोय-गाहेण जि खिज्जइ ॥
णियडु ण माणइ दूरु जि पेच्छइ ।
पल्लउ तणु-सुण्णवि महु वंछइ ॥
णिवडिउ कक्करि सेलि सिलायलि ।
जिह सो तिह तुहुँ मरहि म णिप्फलि ॥
तवि किं लग्गइ माणहि कण्णउ ।
ता पभणइ वरु तुहुँ वि जि सुण्णउ ॥
जीवहु तित्ति भोइ णउ विज्जइ ।
इंदिय-सोक्खें तिट्ठ ण छिज्जइ ॥

सीख लीं एवं अपना नाम विद्युच्चोर रख लिया। वही अपने पाँच सौ सहायकोंको लेकर तथा बलवान मन्त्र-तन्त्रोंका गर्व रखता हुआ रात्रिके घोर अन्धकारमें दूषित अन्नभक्षी तस्करके रूपमें उस घरमें पहुँचा ॥२॥

३

चोरकी जम्बूस्वामीकी मातासे बातचीत और फिर जम्बूस्वामीसे वार्तालाप

अरुहदास सेठके भवनमें प्रवेश करनेपर भी उसे किसी भी मनुष्यने नहीं देख पाया। उस चोरने वहाँ यशस्विनी जिनदासी सेठानीको निद्रा और आलस्य रहित जागती हुई देखा। तब चोरने उससे पूछा कि हे माता, तुम जाग क्यों रही हो, सोती क्यों नहीं। सेठानीने कहा—मेरा शुद्धमन पुत्र अगले दिन तपोवनमें प्रवेश करेगा। यही पुत्रवियोग का दुःख मेरे शरीरको तप्त कर रहा है, और इसी लिए हे बाबू, मुझे तनिक भी निद्रा नहीं आती। तू बुद्धिमान् है अतएव हे सुभट, किन्हीं बुद्धिमानों द्वारा जाने हुए उपायोंसे इसको रोक ले। मैं तुझे अपना परमबन्धु समझती हूँ। अतएव यह काम कर देनेपर तू जितना धन माँगेगा मैं उतना ही दूँगी। सेठानीकी वह बात सुनकर विद्युच्चोर उसी स्थानपर गया जहाँ अपनी वधुओंके साथ वर बैठा था। वह चोर बोला—हे कुमार, यह तुम्हें उचित नहीं कि अपने परलोकके आग्रहसे तुम अपने स्वजनोंको खेद उत्पन्न करो। तुम निकट की वस्तुको तो देखते नहीं, दूर की वस्तु देखते हो। जिस प्रकार हाथीका शावक निकटवर्ती पल्लव और तृणको छोड़कर ऊपर लगी हुई मधुकी इच्छा करता हुआ कंकर-पत्थरोंसे पूर्ण शिलातलपर गिर कर मरणको प्राप्त होता है, उसी प्रकार तुम निष्फल अपना मरण मत करो। तपस्यामें क्यों लगते हो? इन कन्याओंसे प्रेम करो। इसपर वरने कहा—तू बुद्धिसे शून्य है। भोगसे जीवकी तृप्ति नहीं होती। इन्द्रिय-सुखोंसे उसकी तृष्णा नहीं बुझती।

घत्ता—ता घोरें चोरें बोल्लियउ सवरें विद्धउ कुंजरु ॥
सो भिल्लु ससल्लु दुमासिएण फणिणा दट्ठउ दुद्धरु ॥३॥

४

तेण वि सो तं मारिउ विसहरु ।
मुउ करि मुउ सवरुल्लु धणुद्धरु ॥
तेत्थु समीहिवि मासाहारउ ।
तहिं अवसरि आयउ कोट्टारउ ॥
लुद्धउ णिय-तणु-लोहें रंजइ ।
चाव-सिंथणाऊ किर भुंजइ ॥
तुट्ट-णिबंधणि मुहरुह मोडिइ ।
तालु विहिण्णु सरासण-कोडिइ ॥
मुउ जंबुउ अइतिट्ठइ भग्गउ ।
जिह तिह सो परलोयहु भग्गउ ॥
म मरु म मरु रइ-सुहु अणुहुंजहि ।
भणइ तरुणु तक्कर पडिवज्जहि ॥
सुलहहँ पेच्छवि विविहहँ रयणहँ ।
गउ पंथिउ ढंकिवि णिय-गयणहँ ॥
जिणवर-वयणु जीउ णउ भावइ ।
संसरंतु विविहावइ पावइ ॥
कोहें लोहें मोहें मुज्झइ ।
अट्ठ-पयारें कम्में बज्झइ ॥
कहइ थेणु एक्केण सियालें ।
मास-खंडु छंडिवि तिट्ठालें ॥
तणु घल्लिय उप्परि परिहच्छहु ।
तीरिणि-सलिलुच्छलियहु मच्छहु ॥
आमिसु गहियउ पक्खिणि-णाहें ।
सो कड्ढिवि णिउ सलिल-पवाहें ॥
मुउ गोमाउ मच्छु जलि अच्छउ ।
ता लंपेक्खु वरें णिब्भच्छउ ॥
वणिवरु पंथि को वि सुहु सुत्तउ ।
रयण-करंडउ तहु तहिं हित्तउ ॥

जम्बूस्वामीकी इस बातपर उस घोर चोरने कहा—किसी एक शबरने अपने बाणसे एक हाथीको बेधा। उस बाणधारी दुर्धर, दुष्ट भिल्लको वृक्ष-वासी सर्पने डस लिया ॥३॥

४

जम्बूस्वामी और विद्युच्चर चोरके बीच युक्तियों और दृष्टान्तों द्वारा वाद-विवाद

इसपर उसने साँपको भी मार डाला। इस प्रकार वह हाथी भी मरा, धनुर्धारी शबर भी मरा और सर्प भी। उसी समय एक शृगाल मांसाहारकी इच्छासे वहाँ आया। उस लोभीने उस धनुषकी प्रत्यंचा रूप स्नायुको खाना प्रारम्भ किया और वह अपने ही शरीरके रक्तसे प्रसन्न होने लगा। धनुषके छोरोंसे बन्धन टूट जानेके कारण शृगालके दाँत मुड़ गये और तालु छिद गया। इस प्रकार अपनी अति तृष्णाके कारण बेचारा शृगाल भी मारा गया। इसी प्रकार उसकी दशा होती है जो परलोकके पीछे दौड़ता है। अतएव मरो मत! भोग-विलासके सुखका उपभोग करो। इसपर युवकने कहा—हे चोर, सुन! एक पथिकने मार्गमें नाना रत्नोंको देखा। उनको सुलभ जान वह अपने नेत्रोंको ढाँककर इसलिए आगे चला गया कि इन्हें कोई दूसरा न देख पाये और मैं लौटते हुए इन्हें लेता जाऊँगा। किन्तु लौटनेपर उसे वे रत्न नहीं मिले। इसी प्रकार जिनेन्द्रके वचनरूपी रत्न जिस जीवको नहीं भाते वह संसारमें भ्रमण करता हुआ नाना प्रकारकी विपत्तियाँ पाता है। वह क्रोध, लोभ, और मोहसे मूढ़ बनकर आठों प्रकारके कर्म-बन्धनमें पड़ता है। तब चोर कहता है—एक शृगाल मांसका टुकड़ा लिये हुए नदी पार जा रहा था। उस ने देखा कि उस वेगवती नदीके पानीमें एक मत्स्य अपने शरीरको ऊँचा कर उछल रहा है। उसकी तृष्णावश शृगालने अपने मुँहके मांस-खण्डको छोड़कर मत्स्यको पकड़नेका प्रयत्न किया। मत्स्य मुँहमें न आया। किन्तु उसके मुखसे छूटे मांस-खण्डको एक गृद्ध झपटकर ले उड़ा। शृगाल स्वयं जलके प्रवाहमें बहकर मर गया और मत्स्य जलमें जीवित बच गया। इसपर वरने चोरकी पुनः भर्त्सना की और कहा—एक वणिक् मार्गमें सुखसे सो गया, और वहीं उसके रत्नोंकी पिटारीको कोई चुरा

वणि तुम्हारिसेहिं अण्णाणहिं ।
सो कुसीलु कउ हिंसिय-पाणहिं ॥
घत्ता—दुप्पेक्खें दुक्खें पीडियउ वणिवइ आवइ पत्तउ ॥
जिण-वयणें रयणें वज्जियउ जीउ वि णरइ णिहित्तउ ॥४॥

५

गउ पाविट्ठु दुट्ठु उम्मग्गें ।
विसय-कसाय-चोर-संसग्गें ॥
तं आयण्णिवि-पर-धण-हारें ।
उत्तरु दिण्णु बुद्धि-णित्थारें ॥
सासुय कुद्ध सुण्ह गहणालइ ।
मरण-काम दिट्ठी तरु-मूलइ ॥
णिसुणि सुवण्णदारु पाडहिएं ।
आहरणहु लोहें मइ-रहिएं ॥
मरणोवाउ सिट्ठु धवलच्छिहि ।
गय-मयणहि घर-पंकय-लच्छिहि ॥
महलि पाय दिण्णु गलि पासउ ।
तण्णिवाइ मुउ दुट्ठु दुरासउ ॥
सो मुउ जोइवि णीसासुण्हइ ।
गेह-गमणु पडिवण्णउ सुण्हइ ॥
जिह सो मुउ धण-कंकण-मोहें ।
तिह तुहुँ म मरु मोक्ख-सुह-लोहें ॥
भणइ कुमारु धुत्तु ललियंगउ ।
एक्कहिं णयरि अत्थि रइ-रंगउ ॥
तं जोयंति का वि मणि-मेहल ।
कय मयणें महएवि विसंठुल ॥
आणिउ धाइइ पच्छिमदारें ।
देविइ रमिउ सुणिउ परिवारें ॥
राएं जाणिउ सो लिहक्काविउ ।
असुइ-पवण्णि विवरि घल्लाविउ ॥
किमि-खज्जंतु दुक्खु पावेप्पिणु ।
गउ सो णरयहु पाण मुएप्पिणु ॥

ले गया। उसी वनमें तुम्हारे समान अज्ञानी प्राणि-हिंसकोंने उस वणिक्-को कुशील बना दिया और वह आपत्तिमें पड़ कर घोर दुःखोंसे पीड़ित हुआ। यही दशा होती है उस जीवकी जो जिन-वचन रूपी रत्नोंसे रहित होकर नरकमें पहुँचता है ॥४॥

५

वृष्टान्तों द्वारा वाद-विवाद चालू

विषय और कषाय रूपी चोरोंके संसर्गसे जीव उन्मार्ग-गामी, पापी और दुष्ट बन जाता है। जम्बूस्वामीकी यह बात सुनकर उस पराये धनका अपहरण करनेवाले चोरने अपने बुद्धि-विस्तारसे इस प्रकार उत्तर दिया—कोई एक पुत्रवधू अपनी साससे क्रुद्ध होकर वनमें गयी और वहाँ वृक्षके मूलमें आत्मघातकी इच्छा करने लगी। इस अवस्थामें उसे सुवर्णदारु नामक एक मृदंग बजानेवालेने देखा। इसकी बात सुनकर उस मूर्खने उसके आभूषणोंके लोभसे उस घरकी कमल-लक्ष्मी धवलाक्षी काम-रहित जीवनसे विरक्त हुई महिलाको मरनेका उपाय बतलानेका प्रयत्न किया। उसने अपने मृदंगपर पैर रखकर वृक्षसे लटकते हुए पाशको अपने गलेमें डाला किन्तु इसी बीच वह मृदंग फिसलकर गिर गया और वह दुष्ट दुराशय फाँसीसे लटककर मर गया। उसको मरा देखकर उस पुत्रवधूने उष्ण निःश्वास छोड़ते हुए घर लौट जाना उचित समझा। जिस प्रकार वह मृदंगवादक उस वधूके धन-कंकन आदिके मोहसे मरा वैसे ही तू मोक्षसुखके लोभसे मत मर।

कुमारने उत्तर दिया—एक ललितांग धूर्त किसी नगरमें रहता था और राग-रंगमें आसक्त था। इसको देखकर राजाकी मणिमेखला-धारिणी एक रानी काम-पीड़ासे विह्वल हो उठी। उसने अपनी धात्रीके द्वारा उसे पश्चिम द्वारसे बुलवा लिया और उसके साथ रमण किया। यह बात परिवारको ज्ञात हो गयी और राजाको उसकी सूचना मिल गयी। तब रानी ने उसको छिपानेके लिए अपने अशुचि मलसे पूर्ण शौच-स्थानमें डलवा दिया। वहाँ कीड़े उसे खाने लगे और वह दुःख पाते हुए प्राण

जिह सो तिह जणु भोयासत्तउ ।
मरइ बप्प णारि-यणहु रत्तउ ॥

घत्ता—णिय-इच्छइ पच्छइ भीरुयहु जीवहु वेय-समग्गउ ॥
पासंतहु जंतहु भव-गहणि मच्चु-णाम करि लग्गउ ॥५॥

६

णिवडिउ जम्म-कूइ विहि-विहियइ ।
कुल-तरु-मूल-जाल-संपिहियइ ॥
लंबमाणु परमाउसु-वेल्लिहि ।
पंचिंदिय-महु-बिंदु-सुहेल्लिहि ॥
कालें कसण-सिएहिं विहिण्णी ।
सा दियहुंदुरेहिं विच्छिण्णी ॥
णिवडिउ णरय-भीम-विसहर-मुहि ।
पंच-पयार-घोर-दाविय-दुहि ॥
इय आयण्णिवि तहु आहासिउ ।
सव्वहिं धम्मि स-हियउ णिवेसिउ ॥
जणणिइ तक्करेण वर-कण्णहिं ।
मरगय-मणहर-कंचण-वण्णहिं ॥
ता अंबरि उग्गमिउ दिवायरु ।
जंबूदेउ पराइउ सायरु ॥
कूणिएण राएं गय-गामिहि ।
णिक्खवणाहिसेउ किउ सामिहि ॥
सिवियहि रयण-किरण-विप्फुरियहि ।
आरूढउ वर-मंगल-भरियहि ॥
णाणा-सुर-तरु-कुसुम-पसत्थइ ।
विउलि विउल-धरणीहर-मत्थइ ॥
बंभण-वणियहिं पत्थिव-पुत्तहिं ।
पुत्त-कलत्त-मोह-परिचत्तहि ॥
विज्जूचोरें समउ स-तेयउ ।
चोरहँ पंच-सएहिं समेयउ ॥
णिक्खारहिय-वीर-जिणिंदहु ।
पासि सधम्महु धम्माणंदहु ॥

छोड़कर नरकको गया। जिस प्रकार वह धूर्त भोगासक्त होनेके कारण इस विपत्तिमें पड़ा, वैसे ही स्त्रीके प्रेममें अनुरक्त हुआ मनुष्य मरणको प्राप्त होता है।

एक भीरु मनुष्य भवरूपी वनमें जा रहा था। उसके पीछे स्वेच्छासे मृत्यु नामक वेगवान् हाथी लग गया। उसके भयसे वह जीव भाग खड़ा हुआ ॥५॥

६

जन्मकूपका दृष्टान्त व जम्बूस्वामी तथा विद्युच्चरकी प्रव्रज्या

भागते-भागते वह एक विधि-विहित जन्मरूपी कूपमें जा गिरा जो कुलरूपी वृक्षकी जड़ोंके जालसे आच्छन्न था। कूपके मध्यमें ही वह उत्कृष्ट आयुरूपी बल्लीसे लटक गया। वहाँ उसे पंचेन्द्रिय रूपी मधुके बिन्दुका सुख प्राप्त हुआ। किन्तु उस बेलिको काल द्वारा कृष्ण और श्वेत वर्णोंसे विभिन्न रात्रि और दिवसरूपी चूहोंने काट डाला। उस बेलिके कटनेसे वह जीव नरकरूपी भयंकर सर्पके मुखमें जा पड़ा, जहाँ उसे पाँच प्रकारके घोर दुःखोंको भोगना पड़ा। कुमारके इस दृष्टान्तको सुनकर उन सभी श्रोताओं, अर्थात् कुमारकी माता, चोर और मरकत-मणि तथा सुवर्णके समान मनोहर-वर्णवाली उन श्रेष्ठ कन्याओंकी धर्ममें श्रद्धा उत्पन्न हो गयी। इसी समय आकाशमें सूर्यका उदय हो गया और जम्बूस्वामी घरसे निकल पड़े। राजा कुणिकने गजगामी जम्बूस्वामीका निष्क्रमण-अभिषेक किया। कुमार रत्नोंकी किरणोंसे स्फुरायमान तथा श्रेष्ठ मंगल द्रव्योंसे भरी हुई शिविका (पालकी) में आरूढ़ हुए। वे तेजस्वी कुमार नाना कल्पवृक्षोंके पुष्पोंसे शोभायमान विपुलाचल पर्वतके मस्तकपर पहुँचकर, अपने पुत्र और स्त्रियोंके मोहका परित्याग करनेवाले ब्राह्मण, वणिक् तथा क्षत्रिय पुत्रों सहित एवं उस विद्युच्चोर तथा उसके पाँच सौ साथी चोरों सहित वीर जिनेन्द्रके पास धर्मनन्दी सुधर्माचार्यसे

घत्ता—तउ लेसइ होसइ पर-जइ होएप्पिणु सुयकेवलि ॥
हय-कम्मि सुधम्मि सुणिव्वुयइ जिण-पय-विरइय-पंजलि ॥६॥

७

पत्तइ बारहमइ संवच्छरि ।
चित्त-परिट्ठिइ वियलिय-मच्छरि ॥
पंचमु णाणु एहु पावेसइ ।
भवु णामेण महारिसि होसइ ॥
तेण समउ महियलि विहरेसइ ।
दह-गुणियइँ चत्तारि कहेसइ ॥
वरिसइँ धम्मु सव्व-भव्वोहहँ ।
विद्धंसिय-बहु-मिच्छा-मोहहँ ॥
अंतिमकेवलि उप्पज्जेसइ ।
महु पहु-वंसहु उण्णइ होसइ ॥

इय वीरजिणिंदचरिए जम्बूसामि-पव्वज्जावण्णणो
णाम चउत्थो संधि ॥४॥

(महापुराणु संधि १०० से संकलित)

तप ग्रहण करेंगे, वा श्रेष्ठ यति होवेंगे और फिर सुधर्म आचार्यके कर्मों-का विनाश कर निर्वाण प्राप्त कर लेनेपर, वे जिनेन्द्र भगवान्‌के चरणोंमें हाथ जोड़कर श्रुतकेवली होवेंगे ॥६॥

७

जम्बूस्वामीको केवलज्ञान-प्राप्ति

इसके पश्चात् बारहवाँ वर्ष आनेपर वे अपने मनको समाधिमें स्थित कर रागद्वेष रहित होते हुए पंचमज्ञान अर्थात् केवलज्ञानको प्राप्त करेंगे। उनके शिष्य भव नामक ऋषि होवेंगे। उसके पास जम्बूस्वामी महीतल-पर बिहार करते हुए दश गुणित चार अर्थात् चालीस वर्ष तक समस्त भव्य जीवोंको धर्मका उपदेश देवेंगे, और उनके मिथ्यात्व और मोहका विध्वंस करेंगे। इस प्रकार जम्बूस्वामी अन्तिम केवली होवेंगे और मेरे विशालवंश रूपी शिष्य-परम्पराकी उन्नति होगी।

इति जम्बूस्वामि-प्रव्रज्या विषयक चतुर्थ सन्धि समाप्त

सन्धि ॥ ४ ॥

संधि ५

चंदणा-तवगहणं

१

पभणइ महियल-णाहु गय-मिच्छत्त-तमंधहि ॥
भणु चंदणहि भवाइँ सुरहिय-चंदण-गंधहि ॥
तं णिसुणेविणु भासइ गुणिवरु ।
सुणि सेणिय अक्खमि तुह वइयरु ॥
सिंधु-विसइ वइसाली-पुरवरि ।
घर-सिरि-ओहामिय-सुर-वर-घरि ॥
चेडउ णाम णरेसरु णिवसइ ।
देवि अखुद्द सुहद्द महासइ ॥
धणयत्तउ धणभद्दु उविंदउ ।
सुहयत्तउ हरियत्तु णियंगउ ॥
कंभोयउ कंपणउ पयंगउ ।
अवरु पहंजणु पुत्तु पहासउ ॥
धीयउ सत्त रूव-विण्णासउ ॥
सेयंसिणि सूहव पियकारिणि ।
अवर मिगावइ जण-मण-हारिणि ॥
सुप्पह देवि पहावइ चेलिणि ।
बाल-मराल-लील-गइ-गामिणि ॥
जेट्ठ विसिट्ठ भडारी चंदण ।
रूव-रिद्धि-रंजिय-संकंदण ॥
पियकारिणि वर-णाह-कुलेसहु ।
सिद्धत्थहु कुंडउर-णरेसहु ॥
दिण्ण सयाणीयस्स मिगावइ ।
सोम-वंस-रायहु मंथरगइ ॥
सूर-वंस-जायहु ससि-यर-गह ।
दसरह-रायहु दिण्णी सुप्पह ॥

सन्धि ५

चन्दना-तपग्रहण

१

राजा चेटक, उनके पुत्र-पुत्रियाँ तथा चित्रपट

धराधीश श्रेणिकने पूछा—हे भगवन् , मुझे उस आर्यिका चन्दनाका चरित्र सुनाइए,जिसके शरीरमें चन्दनकी सुगन्ध है तथा जिसने मिथ्यात्व-रूपी अन्धकारको दूर कर दिया है। राजाके इस प्रश्नको सुनकर गौतम मुनिवरने कहा—हे श्रेणिक, मैं चन्दनाका वृत्तान्त कहता हूँ, तुम सुनो। सिन्धु-विषय (नदी-प्रधान विदेह नामक प्रदेश) में वैशाली नामक नगर है जहाँके घर अपनी शोभासे देवोंके विमानोंकी शोभाको भी जीतते हैं। उस नगरमें चेटक नामक नरेश्वर निवास करते हैं। उनकी महारानी महासती सुभद्रासे उनके धनदत्त, धनभद्र, उपेन्द्र, शिवदत्त, हरिदत्त, काम्बोज, कम्पन, प्रयंग, प्रभंजन और प्रभास नामक पुत्र हुए। उनकी अत्यन्त रूपवती सात पुत्रियाँ भी हुईं जिनके नाम हैं, श्रेयांसिनी सुभगा प्रियकारिणी, जनमनोहारिणी मृगावती, सुप्रभा देवी, प्रभावती, चेल्लिनी, बालहंसलीलागामिनी ज्येष्ठा और विशेष रूपसे पूज्य चन्दना। ये सभी कन्याएँ अपनी रूपऋद्धिसे इन्द्रके मनको भी अनुरक्त करती थीं। प्रियकारिणीका विवाह श्रेष्ठ नाथवंशी कुण्डपुर नरेश सिद्धार्थके साथ कर दिया गया। मंदगामिनी मृगावती, कौशांबीके सोमवंशी राजा शतानीक को ब्याह दी गयीं। चन्द्र किरणोंके समान चमकीले नखोंवाली सुप्रभाका विवाह सूर्यवंशमें उत्पन्न दशरथ राजाके साथ हो गया। उर्वशी और

उद्दायणहु पहावइ राणी ।
सिप्पी उल्लास-रंग-समाणी ॥
महिउरि काम-बाण-परिहट्टउ ।
अलहमाणु अवरु वि आरुट्टउ ॥
जेट्ठहि कारणि सच्चइ णामें ।
आयउ जुज्झहुँ दुप्परिणामें ।
णट्ठउ आहवि चेडय-रायहु ।
को सकइ करवाल-णिहायहु ॥
अइ-दूसह-णिव्वेएं लइयउ ।
दमवर-मुणिहि पासि पव्वइयउ ॥
अण्णहिं दिणि चित्तयरें लिहियइँ ।
रूवइँ वर-पट्टंतर-णिहियइँ ॥
काम-विलास-विसेसुप्पत्तिहि ।
जोइयाइँ राएं णिय-पुत्तिहि ॥
पडिउ बिंदु चेलिणि-ऊरुयलि ।
दिट्ठउ कयली-कंदल-कोमलि ॥
तायें तोडु कयउ विवरेरउ ।
चित्तयरें बोल्लिउ सुइ-सारउ ॥
एवं विणु पडिबिंबु ण सोहइ ।
थाइ जाम ऊरुत्थलु चाहइ ॥
ता दिट्ठउ तहि लंछणु एयइ ।
अक्खिउ रायहु जाय-विवेयइ ॥

घत्ता—ता संकुद्धु णरिंदु गउ रायहरहु लीलइ ॥
जिण-पडिबिंबहँ पासि पडु संणिहिउ वणालइ ॥१॥

२

दिट्ठउ पडु पइँ पुच्छिय किंकर ।
तेहिं पवुत्तउ वइरि-भयंकर ॥
एयइँ लिहियइँ विणय-विणीयहँ ।
बिंबइँ चेडय-महिवइ-धीयहँ ॥
चउहुँ विवाहु हुयउ विहुरंतउ ।
तीहि मज्झि दो जोव्वणवंतउ ॥

रम्भाके समान प्रभावती उद्दायन नरेशकी रानी हुई। किन्तु महीपुरका राजा सात्यकि कामके बाणसे प्रेरित होते हुए भी उन कन्याओंमें-से किसीको न पाकर रुष्ट हो उठा और वह दुर्भावनाके वश ज्येष्ठाको बल-पूर्वक प्राप्त करने हेतु उसके पितासे युद्ध करने आ पहुँचा। किन्तु वह युद्धमें चेटक राजासे पराजित होकर भाग गया। कौन ऐसा है जो चेटक राजाके खड्गकी मारको सह सके? इस पर राजा सात्यकि अत्यन्त दुस्साह विरक्तिके वश होकर दमवर मुनिके पास प्रव्रजित हो गया।

एक दिन राजा चेटकके पास एक चित्रकार आया और उसने राजकुमारियोंके सुन्दर चित्रपट बनाये। राजाने अपनी पुत्रियोंके उन चित्रोंको देखा जो अपने सौन्दर्यसे काम-विलासकी भावनाको उत्पन्न करते थे। किन्तु उन्होंने देखा कि कदली-कंदल समान कोमल चेल्लिनी की जंघापर एक स्याहीका बिन्दु पड़ा है। उसे देख चेल्लिनीके पिताने अपना मुख फेर लिया। चित्रकारने राजाकी मनःस्थिति जान ली। उसने चित्र-शास्त्रके मर्मकी बात बताते हुए राजासे कहा—हे महाराज, इस बिन्दुके बिना यह चित्र शोभायमान नहीं होता। इसी बीच धात्रीने जाकर चेल्लिनी राजकुमारीके जंघा-स्थलका निरीक्षण किया और उसके वहाँ भी तिलका काला बिन्दु देखा। तब उस विवेकशालिनी धात्रीने आकर यह बात राजासे कही। इसपर नरेन्द्र बहुत रुष्ट हो उठे। उनके क्रोधसे भयभीत होकर वह चित्रकार चुपचाप वैशाली नगरसे निकल भागा। वह राजगृह पहुँचा और वहाँ उसने राजकुमारी चेल्लनाके चित्रपट को राजाके उद्यान मन्दिरमें जिन-प्रतिबिम्बके पास रख दिया ॥१॥

२

राजा श्रेणिकका चित्रपट देखकर चेल्लनापर मोहित होना और उसका राजकुमार द्वारा अपहरण

गौतम गणधर राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन्, तुमने उस चित्रपटको देखा और उसके विषयमें अपने किंकरोंसे पूछा। उन्होंने बतलाया—हे शत्रु-भयंकर नरेश, ये चित्रबिंब चेटक राजाकी विनयशील पुत्रियोंके लिखे गये हैं। इनमेंसे प्रथम चारका विवाह हो चुका है, किन्तु उनसे लघु तीनमेंसे दो यद्यपि यौवनको प्राप्त हो गयी हैं, तथापि अभी तक

अज्ज वि णिव दिज्जंति ण कासु वि ।
एक्क कण्ण लहुई खल-तम-रवि ॥
तें वयणेण मयण-सर-वणियउ ।
दुहुँ दुहु दंतिहिँ गुडु गुडु भणियउ ॥
हा हा हे कुमार तुह तायहु ।
वट्टइ कामावत्थ सरायहु ॥
चेडय-धीयहिँ अइ-आसत्तउ ।
सूरु व दिट्ठि-गम्मु अइ-रत्तउ ॥
ससुरु ण देइ जुण्ण-वयवंतहु ।
वट्टइ अवसरु मइ-दिहिवंतहु ॥
ता कुमरें तुह रूवें किउ पडु ।
तं णिवासु लेविणु गउ भडु पडु ॥
पंडिउ वोद्द-भणिय-कय-वेसउ ।
आयउ कण्णउ णय-थय-वेसउ ॥
पुच्छिउ ताहिँ लिहिउ तें भाणिउ ।
किं ण मुणह मगहाहिउ सेणिउ ॥
ता दोहँ मि कण्णहँ मय-मत्तहँ ।
पेम्म-कुसुंभहँ रत्तहँ गत्तहँ ॥
कुडिलइ चेलिणीइ सर-रुद्धइ ।
कयउँ इट्ठ जेट्ठ रइ-लुद्धइ ॥
भणिय जाहि आहरण लएप्पिणु ।
आवहि लहु वच्चहुँ लिहक्केप्पिणु ॥
लग्गहुँ गलकंदलि मगहेसहु ।
अलि-उल णील-णिद्ध-मउ-केसहु ॥

घत्ता—आहरणाइँ लएवि जा पडिआवइ वाली ॥
ता तहिं ताए ण दिट्ठ चेलिणि मयणमयाली ॥२॥

३

वहिणि-विओय-सोय-संतत्ती ।
खंतिहि जसमईहि उवसंती ॥
पाय-मूलि तवचरणु लएप्पिणु ।
थक्क जेट्ठ इंदियइँ जिणेप्पिणु ॥

उनका किसीके साथ विवाह-सम्बन्ध नहीं हुआ। हे खलरूपी अन्धकारके सूर्य, सबसे छोटी कन्या (चन्दना) अभी भी अबोध है। अपने किंकरोंके इन वचनोंसे तुम मदनके बाणसे आहत हो गये। तब तुम्हारे मन्त्रियोंने तुम्हारे पुत्रसे कहा—हाय, हाय, हे कुमार, तुम्हारे पिता कामासक्त होकर इस अवस्थाको प्राप्त हुए हैं। वे राजा चेटककी पुत्रीपर अत्यन्त आसक्त होकर ऐसे अनुरक्त दिखाई देते हैं जैसे सूर्य अत्यन्त रक्तवर्ण होकर सबके दृष्टिगोचर हो जाता है। किन्तु उनके प्रस्तावित श्वसुर अर्थात् राजा चेटक उन्हें इस कारण अपनी कन्या नहीं देना चाहते, क्योंकि वे आयुमें वृद्ध हो चुके हैं। यह अवसर है जब तुम अपनी बुद्धि और धैर्यका अच्छा परिचय दे सकते हो। गौतम मुनि राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन्, मन्त्रियोंकी उक्त बातको सुनकर राजकुमारने तुम्हारा चित्रपट बनवाया। चित्रपट बन जानेपर एक भट उसे कुमारके निवासस्थानपर ले गया। फिर वह राजकुमार पण्डित वोद्र (बैल लादने वाले ?) वणिक्का वेश बना कर वैशाली नगरमें पहुँचा। राजकन्याओंने चित्रपटमें लिखित नवयस्क तथा सुन्दर वेषयुक्त पुरुषको देखकर उसके सम्बन्धमें पूछताछ की। तब वणिक्-वेषधारी राजकुमारने कहा—क्या आप नहीं जानतीं कि ये मगधके नरेन्द्र श्रेणिक हैं। यह सुनकर उन दोनों कन्याओंके नेत्र मदोन्मत्त हो उठे और प्रेमरूपी केसरसे रंजित हो गये। दोनों बहिनोंमें चेलिनी अधिक चतुर थी। उसने कामसे पीड़ित तथा रति से लुब्ध होकर बहिन ज्येष्ठासे छलपूर्वक कहा—आप अपने निवासपर जाकर आभूषणोंको ले आइए, तब हम दोनों यहाँसे चुपचाप छिपकर निकल चलेंगे, तथा भ्रमर समूहके समान नील और स्निग्ध तथा मृदु केशोंसे युक्त मगधेशके गलेमें लगकर उनका आलिंगन करेंगे। किन्तु जब ज्येष्ठा आभूषण लेकर लौटी तब उसने वहाँ मदनोत्सुक चेलिनीको नहीं देखा ॥२॥

३

ज्येष्ठाका वैराग्य, चेलिनी-श्रेणिक विवाह तथा चन्दनाका मनोवेग विद्याधर द्वारा अपहरण व इरावती के तीरपर उसका त्याग

अपनी बहिनके वियोगके शोकसे संतप्त होकर ज्येष्ठा यशोमति नामक आर्यिकाके समीप जाकर उपशान्त हुई और उन्हींसे तपश्चरणकी दीक्षा

चेल्लिणि पुणु तुह पुत्तें ढोइय ।
पइँ स-सणेहें णिरु अवलोइय ॥
परिणिय सुंदरि जय-जय-सद्दें ।
घरु आणिय दइवेण सुहद्दें ॥
ताहि महएवी-पट्टु णिवद्धउ ।
सा रइ तुहुँ णावइ मयरद्धउ ॥
ताहि सुखंतिहि पासि णिहालिउ ।
चंदणाइ सावय-वउ पालिउ ॥
सहुँ सम्मत्तें चारु गुणड्ढइ ।
दाहिण-सेढिइ गिरि-वेयड्ढइ ॥
सोवण्णाहइ पुरि मणवेयउ ।
विहरमाणु णहि घरिणि-समेयउ ॥
आयउ उववणि णिच्च-वसंतइँ ।
दिट्ठी चंदण चंदणवंतइँ ॥
णियय-घरिणि णिय गेहे थवेप्पिणु ।
पडिआवेप्पिणु कण्ण लएप्पिणु ॥
सो जा गच्छइ पुणु णिय-भवणहु ।
आलोयणिय दिट्ठ ता गयणहु ॥
अवयरंति आहासइ वइयरु ।
देविहिँ तुहुँ जाणिउ मायायरु ॥
तुज्झु विज्ज कय-रोस-णिहाएं ।
ताडिय देवय वामें पाएं ॥
एवहिं किं कुमारि पइँ चालिय ।
अच्छइ कोव-जलण-पज्जालिय ॥
णिच्चमेव हियवइ संकंतहि ।
तं णिसुणिवि सो भीयउ कंतहि ॥

घत्ता—भूय-रमण-वण-मज्झि पवर-इरावइ-तीरइ ॥
साहिय तेण खगेण विज्ज फणीसर केरइ ॥३॥

४

पत्तलहुय णामेण णिहित्ती ।
ताइ पुत्ति संपत्त धरित्ती ॥

लेकर इन्द्रियोंको जीतते हुए उन्हींके चरणोंमें रहने लगी। उधर चेलिनी-को तुम्हारा पुत्र राजगृह ले आया और उसका तुमने अत्यन्त स्नेह-भावसे अवलोकन किया। तुमने जय-जय घोषके साथ उस सुन्दरीका परिणयन कर लिया और सौहार्दपूर्ण भाग्यसे उसे अपने घर ले आये। तुमने चेलनाको महादेवी पदपर प्रतिष्ठित किया। इस प्रकार वह रति और तुम कामदेवके समान सुखसे रहने लगे।

उधर चेटककी सबसे लहुरी पुत्री चन्दनाने धर्मभावसे प्रेरित होकर सुक्षान्ति नामक आर्यिकाके समीप श्रावक व्रत ग्रहण कर लिया। सम्यक्त्व भावसे सुन्दर गुण-प्रचुर वैताढ्यगिरिकी दक्षिण श्रेणीमें स्थित सुवर्णनाभ नामक पुरीमें मनोवेग नामक विद्याधर रहता था। एक दिन वह अपनी गृहिणीके साथ आकाशमें विहार करता हुआ उस उपवनमें आया जहाँ नित्य ही वसन्त ऋतु रहा करती थी और जहाँ चन्दनके वृक्षोंकी सुगन्ध रहती थी। वहाँ उसने चन्दना कुमारीको देखा। देखते ही उसने वापिस जाकर अपनी गृहिणीको तो अपने घरमें जा छोड़ा और पुनः उसी उपवनमें आकर कन्याका अपहरण कर लिया। उसे लेकर जब वह अपने घरको पुनः जाने लगा तब उसने आकाशसे उतरती हुई आलोकिनी विद्यादेवीको देखा। देवीने उससे बात कही कि देवी (तेरी पत्नी मनोवेगा) ने तुम्हें मायाचारी जान लिया है, और रोषपूर्ण होकर तेरी विद्याको अपने बायें पैरसे ठुकरा दिया है। तुमने इस प्रकार इस कुमारीको क्यों अपहृत किया? इसीलिए तेरी गृहिणी कोपाग्निसे प्रज्वलित हो रही है। यह सुनकर मनोवेग नित्य अपने हृदयमें विराजमान रहनेवाली अपनी कान्तासे भयभीत हो उठा। उस विद्याधरने विशाल इरावतीके तीर पर स्थित भूतरमण नामक वनके बीच फणीश्वर (नागेश्वर या गरुड) की विद्याको सिद्ध किया ॥३॥

४

चन्दनाका वनमें त्याग, भिल्लों द्वारा रक्षण तथा कौशाम्बीके सेठ धनदत्तके घर आगमन।

मनोवेगने पत्रलघु नामकी अपनी उसी विद्याके बलसे चन्दनाको उस वनमें फेंक दिया और वह उसीके प्रभावसे भूमितलपर उतर गयी।

पंचक्खरहँ चित्ति णिज्झायइ ।
धम्म-झाणु णिम्मलु उप्पायइ ॥
विथलिय णिस उग्गमिउ पयंगउ ।
वणयरु एक्कु पत्तु सामंगउ ॥
णामें कालु तासु जिण-वयणहँ ।
साहियाहँ मुद्धहँ जग-सयणहँ ॥
अण्णु वि तहु दिण्णहँ आहरणहँ ।
पहवंतहँ णं दिणयर-किरणहँ ॥
तें तुट्ठें णिय सुंदरि तेत्तहिं ।
भीम-सिहर-गिरि-णियडइ जेत्तहिं ॥
भिल्लु भयंकरि-पल्लिहि राणउ ।
णामें सीहु सीहु-रस-जाणउ ॥
तासु बाल कालेण समप्पिय ।
तेण वि कामालेण विलुंपिय ॥
काओसग्गें थिय परमेसरि ।
जा लग्गइ वणयरु वण-केसरि ॥
ता सो रुक्खु जेव उम्मूलिउ ।
सासण-देवयाहिं पडिकूलिउ ॥
रे चिलाय करु सुयहि म ढोयहि ।
अप्पउ काल-वयणि म णिवायहि ॥
ता सो तसिउ थक्कु तुण्हिक्कउ ।
पय-जुय-वडिउ वियार-विमुक्कउ ॥
कंद-मूल-फल-दाविय-सायइ ।
पोसिय देवि णिसायहु मायइ ॥
थिय कइवय दिणाइँ तहिं जइयहुँ ।
वच्छ-देसि कोसंबिहि तइयहुँ ॥
वसहसेणु वणिवइ धणइत्तउ ।
मित्तवीरु तहु-किंकरु भत्तउ ॥
मित्तु सो जि सीहहु वण-णाहहु ॥
घरु आयउ सुक्किय-जलवाहहु ॥
अप्पिय तासु तेण पत्थिव-सुय ।
बाल-मुणाल-वलय-कोमल-भुय ॥

वह अपने चित्तमें पंचाक्षर मन्त्रका ध्यान करती और निर्मल धर्मध्यान उत्पन्न करने लगी।

जब रात्रि व्यतीत हो गयी और सूर्यका उदय हुआ तब एक श्यामाङ्ग वनचर वहाँ आया। उसका नाम काल था। चन्दनाने उसे जगत्के आश्रयभूत जिनवचनोंका उपदेश दिया तथा सूर्यकी किरणोंके समान कान्तियुक्त आभरण भी दिये। वह इस प्रकार सन्तुष्ट होकर उस सुन्दरीको वहाँ ले गया जहाँ भीमशिखर नामक पर्वतके निकट एक भयंकरी नामक पल्लीमें मद्य-रस-पान करनेवाला सिंह नामक भिल्ल राजा रहता था। काल-वनचरने बालिकाको उसे ही समर्पित कर दिया और उसने भी कामासक्त होकर उसे छिपाकर रख लिया। वह परमेश्वरी वहाँ कायोत्सर्ग मुद्रामें ध्यान करने लगी। उस अवस्थामें जब वह वनकेसरी, वनचर उसका आलिंगन करनेको उद्यत हुआ तब वह उन्मूलित वृक्षके समान स्तब्ध रह गया और शासन-देवताने उसे फटकारा—देख किरात, खबरदार! तू उस पुत्रीको अपना हाथ नहीं लगाना। तू अपनेको कालके मुखमें मत डाल। इसपर वह भिल्लराज त्रस्त होकर मौन हुआ रुक गया और विकारको छोड़ उसके चरण-युगलमें आ पड़ा। तत्पश्चात् उस निषादकी माता, उसे स्वादिष्ट कन्द-मूल व फल देकर पोषण करने लगी।

इस प्रकार जब वह वहाँ कुछ दिनों तक रह चुकी तब एक दिन वत्स-देशकी कौशाम्बी नगरीका वृषभसेन नामक धनवान् वणिक् वहाँ आया। उसका मित्रवीर नामक एक भक्त किंकर वनराज सिंहका मित्र था। अतः वह सुकृतके जलप्रवाह रूप भिल्लके घर आया। वनराजने उस कमल-नालके समान कोमल भुजाओंवाली राजकन्याको उसीको अर्पित कर दी

ढोइय वणि-कुल-गयण-ससंकहु ।
भिच्चें वसहसेण-णामंकहु ॥

घत्ता—एक्कहिं वासरि जाव जोइवि सेट्ठि तिसाइउ ॥
बंधिवि कोंतल ताइ जल-भिंगारु समाइउ ॥४॥

५

णिड्ड-दुट्ठ-कट्ठाइं रउद्दइं ।
ता दिट्ठी सेट्ठिणिइ सुहद्दइ ॥
मुंडिउ सिरु पायइँ पम्मेल्लहिँ ।
आयस-णियलु णिच्चु णीसल्लहिँ ॥
कोद्दव-कूरु स-कंजिउ दिज्जइ ।
णिच्चमेव जा एव दमिज्जइ ॥
ता परमेट्ठि छिण्ण-संसारउ ।
आयउ भिक्खहिं वीरु भडारउ ॥
पडिलाहेवि विहीइ किउ भोयणु ।
दिण्णउ तं तहु सउवीरोयणु ॥
पत्त-दाण-तरु तक्खणि फलियउ ।
गयणहु कुसुम-णियरु परिघुलियउ ॥
गज्जिय दुंदुहि बहु-माणिक्कइँ ।
पडियइँ भा-भारें पइरिक्कइँ ॥
रयण-विचित्त-छिण्ण-विविहंगय ।
देवेहिं मि देविहिं वंदिय पय ॥
णियस-घोस-कोलाहल-सद्दें ।
जय-जय-जय-संजाय-णिणद्दें ॥
णमिय मिगावइए लहुयारी ।
बहिणि सपुत्तइ गुण गरुयारी ॥
वणि-सुयाइ पाविट्ठइ जं किउ ।
तो वि ण साहइ विलसिउ विप्पिउ ॥
सेट्ठिणि सेट्ठि वे वि कम-णमियइँ ।
अम्हइँ पावइँ पावें खवियइँ ॥
परमेसरि तुह सरणु पइट्ठइँ ।
एवहिं परितायहि पाविट्ठइँ ॥

और वह भृत्य उसे अपने कुलरूपी आकाशके चन्द्र वृषभसेन नामक वणिक्के पास ले आया। एक दिन उसने सेठको प्यासा देखकर अपने केशोंको बाँधा और वह जलका कलश उठाकर उसके पास आयी ॥४॥

५

सेठानी द्वारा ईर्ष्यावश चन्दनाका बन्धन, महावीरको आहारदान व तप-ग्रहण

इसी अवस्थामें उसे धृष्ट, दुष्ट, कष्टदायी व क्रोधी सुभद्रा नामक सेठानीने देख लिया। चन्दनाके पापवृत्तिसे मुक्त और निःशल्य होनेपर भी उस दुष्ट सेठानीने उसका सिर मुड़वा डाला और उसके पैरोंमें लोहेकी सांकल बाँध दी। वह उसे प्रतिदिन काँजीके साथ कोदोंका भात खानेको देती थी। इस प्रकार जब उसे दण्डित किया जा रहा था, तभी संसारके भ्रमणको छिन्न करनेवाले परमेष्ठी जिनभगवान् वहाँ भिक्षाके निमित्त आये। उनका पडगाहन करके चन्दनाने उन्हें वही काँजी और ओदनका आहार विधिपूर्वक दिया। यह पात्रदान रूपी वृक्ष तत्क्षण ही फलित हो उठा और आकाशसे पुष्पकलियोंकी वर्षा हुई। दुन्दुभि बजने लगी तथा बहुतसे माणिक्य चमचमाते हुए प्रचुरमात्रामें वहाँ गिरे। देवोंने आकर उस देवीको रत्नोंसे जड़े हुए नाना प्रकारके आभूषण प्रदान किये और उसके चरणोंकी वन्दना की। उन देवोंकी घोषणा व कोलाहलध्वनिसे तथा जय जयके शब्दोंके निनादसे आकृष्ट होकर रानी मृगावती अपने पुत्र सहित वहाँ आयी और उसने अपनी छोटी बहनको उसके गुणोंसे बड़ी होनेके कारण नमन किया। उस पापिनी वणिक् पत्नीने उसके साथ जो बुरा व्यवहार किया था, वह चन्दनाने नहीं बतलाया। सेठ और सेठानी दोनोंने उसके चरणोंमें नमन किया और कहा कि हम पापी पापसे पीड़ित थे। अब हम तुम्हारे शरण में प्रविष्ट हुए हैं। हे

ता चंदणाए भणिउ को दुज्जणु ।
को संसारि एत्थु किर सज्जणु ॥
धम्में सव्वु होइ भल्लारउ ।
पावें पुणु जण-विप्पिय-गारउ ॥
दस-दिसु पत्त पत्त जय-सिरि-धव ।
आइय परमाणंदें बंधव ॥
वंदिउ वीर-सामि परमप्पउ ।
एयाणेय-वियप्पसमप्पउ ॥

घत्ता—जिण-पय-पंकय-मूलि बारह-विहु वित्थिण्णउ ।
चंदणाइ तउ घोरु तहिं तक्खणि पडिवण्णउ ॥५॥

इय वीरजिणिंदचरिए चंदणासवणगहणं णाम पंचमो संधि ॥५॥

(महापुराण संधि ९८ से संकलित)

परमेश्वरि, अब हम पापिष्ठोंकी रक्षा कीजिए। तब चन्दनाने कहा—इस संसारमें यथार्थतः कौन दुर्जन है और कौन सज्जन है ? धर्मसे ही सबका भला होता है, और पाप ही लोकोंका बुरा करनेवाला बन जाता है। यह वार्ता दशों दिशाओंमें फैल गयी। तब राजश्रीके धनी चन्दनाके बन्धु-बान्धव भी परमानन्द सहित वहाँ आये। उन्होंने परमात्मा वीर भगवान्-की वन्दना की। उन जिन भगवान्के चरण-कमलोंमें बैठकर एक व अनेक भेद रूप बारह प्रकारका महान् घोर तप उसी क्षण चन्दनाने स्वीकार कर लिया ॥५॥

इति चन्दना-तपग्रहण विषयक पंचम सन्धि समाप्त

सन्धि ॥ ५ ॥

संधि ६

परसेणिय-सुय-चिलायपुत्त-परीसह

१

सव्वंगु वि मिलियहिं उज्जंगुलियहिं
चालणि व्व किउ धीर-मणु ।
तइवि हु निरवज्जहो न वि निय-कज्जहो
चलिउ चिलायपुत्तु समणु ॥
मगहा-विसइ आसि गुणवंतउ ।
गुणहिलु सत्थवाहि वणि हींतउ ॥
तेण सियालइ पंथे समत्थें ।
गच्छंतेण समेउ स-सत्थें ॥
मुणि गामंतरे तवधर-नामउ ।
भिक्खागउ निएवि जिय-कामउ ॥
सिद्धउ अन्नु नत्थि समभाविउ ।
गुलु तिल-वट्टि देवि भुंजाविउ ॥
तेण फलेण दीवे पढमिल्लइ ।
हइमवयम्मि खेत्ते सोहिल्लइ ॥
कालु करेप्पिणु कोस-पमाणउ ।
हुउ पलिओवम-जीविउ माणउ ॥
पुणु नंदणवणे सुरु तत्तो चुउ ।
मगहा-मंडले रायगिहे हुउ ॥
पसेणियहो नरिंदहो नंदणु ।
रूवें जण-मण-णयणाणंदणु ॥
जणिउ चिलायइ देविइ जेण जे ।
नामु चिलायपुत्तु किउ तेण जे ।

घत्ता—एक्कहिं दिणे राएँ बद्ध-कसाएँ
अउदायणु उज्जेणि-पुरि ।
संगरि संदाणहि बंधेवि आणहि
पेसिउ पज्जोयहो उवरि ॥१॥

सन्धि ६

चिलातपुत्र-परीषह-सहन

१

चिलातपुत्रका जन्म

उज्जंगुलि (काकी) ने आकर सर्वांग चालिनीके समान छेद डाला, तो भी धीर मनस्वी चिलातपुत्र श्रमण अपने निर्दोष तपस्या-कार्यसे विचलित नहीं हुए। प्राचीन कालमें मगध देशमें गुणवान्-गुनहिल (गुणधीर) नामक सार्थवाह वणिक् रहता था। एक दिन वह अपने सार्थ सहित वनमार्गमें गमन कर रहा था, तभी एक ग्राममें उसने भिक्षाके लिए आये हुए तपधर नामक कामविजयी मुनिको देखा। वणिक्के पास उस समय कोई सिद्ध अन्न नहीं था, अतएव उसने उन समभावी मुनिको गुड़ और तिलपट्टी देकर आहार कराया। इस पात्रदानके फलस्वरूप वह मरने पर प्रथम द्वीप अर्थात् जम्बूद्वीपके शोभायमान हेमवत् नामक क्षेत्रमें एक कोश-प्रमाण शरीरयुक्त व पल्योपमकाल तक जीवित रहनेवाला मानव उत्पन्न हुआ। फिर वह नन्दन वनमें देव हुआ और वहाँसे च्युत होकर मगधमण्डलके राजगृह नगरमें राजा श्रेणिकका चिलातदेवी द्वारा उत्पन्न तथा रूपसे लोगोंके मन और नयनोंको आनन्ददायी चिलातपुत्र नामक राजकुमार हुआ। एक दिन राजा श्रेणिकने क्रुद्ध होकर राजपुत्र उदायनको यह आदेश देकर उज्जयिनीपुरीको भेजा कि वहाँके राजा प्रद्योतको युद्धमें जीतकर और बन्धनोंसे बाँधकर मेरे पास ले आओ ॥१॥

२

ता तहिं गउड-उरगपुर-सामिउ ।
पज्जोएण वि रणे आयामिउ ॥
बंधेवि धरिउ सुणेप्पिणु धुत्तें ।
विजयक्खेण णराहिव-पुत्तें ॥
तत्थ सत्थ-वाहिणउ हवेप्पिणु ।
आणिउ गंपि छलेण हरेप्पिणु ॥
रोसें तेण देसु णासंतउ ।
सयलु होवि पज्जोउ पहुत्तउ ॥
आयन्नेप्पिणु पहु चिंताविउ ।
पट्टणम्मि पडहउ देवाविउ ॥
जो महु वइरि धरेप्पिणु दावइ ।
सो जं मग्गइ तं पुणु पावइ ॥
ता चिलायपुत्तें हेराविउ ।
सरे जरढ-कोढें भरंतउ पाविउ ॥
बंधेवि उज्जेणी-वइ आणिउ ।
तूसेप्पिणु णंदणु सम्माणिउ ॥
दिन्नउ मग्गिउ मगहा-राएँ ।
पुरे सच्छंद-विहारु पसाएँ ॥
घत्ता—बहुकालें राणउ सुदढु सयाणउ
घरु पुरु परियणु परिहरेवि ।
भव-सय मल हरणहो गउ तवयरणहो
रज्जे चिलायपुत्तु धरेवि ॥२॥

३

रज्जु करंतें आवइ पाविय ।
पय चिलायपुत्तें संताविय ॥
तहो अन्नाउ णियवि णयवंतहँ ।
जाउ अचिंतु मंति-सामंतहँ ॥
रइउ मंतु सव्वहँ मणे भाविउ ।
सेणिउ कंचिपुरहो आणाविउ ॥

२

चिलातपुत्रको राज्य-प्राप्ति

इसी बीच प्रद्योतने गौर उरगपुरके स्वामीको रणमें बाँध लिया। उसके बन्धनकी बात सुनकर मगध नरेशके विजय नामक पुत्रने सार्थवाहका वेश धारण करके छलपूर्वक उसे छुड़ा लिया और राजगृह ले आया। इस बातपर रुष्ट होकर प्रद्योतने अपने दल-बल सहित मगध देशपर आक्रमण कर दिया। यह बात सुनकर मगध नरेन्द्रको चिन्ता उत्पन्न हुई और उन्होंने राजधानीमें भेरी बजवायी कि जो कोई मेरे बैरीको पकड़कर मुझे दिखलायेगा वह जो कुछ माँगेगा वही दूँगा। तब चिलातपुत्रने उसपर घात लगायी और जब वह जलक्रीडा कर रहा था तभी उस उज्जयिनीपति प्रद्योतको पकड़ लिया और बाँधकर राजगृह ले आया। राजाने सन्तुष्ट होकर अपने पुत्रका सम्मान किया। मगधराजने प्रसन्नता पूर्वक चिलातपुत्रको मन माँगा दान तथा नगरमें स्वच्छन्द विहारका उपहार दिया।

इसके बहुत काल पश्चात् जब राजा श्रेणिक बहुत सयाने हो गये तब उन्होंने घर, पुर और परिजनोंका त्याग कर सैकड़ों भवों (जन्मों) के पापका हरण करनेवाला तपश्चरण स्वीकार कर लिया और राज्यपर चिलातपुत्रको प्रतिष्ठित कर दिया ॥२॥

३

चिलातपुत्रका राज्यसे निष्कासन व वनवास तथा श्रेणिकका राज्याभिषेक

राज्य करते-करते चिलातपुत्रपर एक आपत्ति आ गयी, क्योंकि उससे प्रजा सन्तप्त हो उठी थी। उसका अन्याय देखकर नीतिवान् मन्त्रियों और सामन्तोंका चित्त उससे हट गया था। उन्होंने मन्त्रणा की जो सभीके मनको भा गयी। उन्होंने कांचीपुरसे श्रेणिकको बुला लिया।

मिल्लिउ परिग्गहु सयलु वि एविणु ।
णीसारिउ वाइउ चप्पेविणु ॥
मायामहहो पासे जाएविणु ।
काणणे विससु कोइ विरएविणु ॥
रज्ज-भट्ठु होएवि अणिट्ठिउ ।
थिउ जीवइ मावइयहो विसिट्ठ ॥
भइमित्तु तहो मित्तु पियारउ ।
नं रामहो लक्खणु दिहि-गारउ ॥
दढमित्त-माउलयहो केरी ।
धीय सुहद्द सुहाइँ जणेरी ॥
सो परिणणहँ न पावइ अवरहो ।
दिज्जइ लग्गी साविय पवरहो ॥

घत्ता—इय वत्त सुणेप्पिणु तत्थावेप्पिणु
मेलावेप्पिणु सुहड सय ।
ते भड्डे हरेप्पिणु कन्न लएप्पिणु
जणहो नियंतहो बे वि गय ॥३॥

४

वत्त सुणेप्पिणु सेणिय-राणउ ।
अणुलग्गउ सेणाए समागउ ॥
राउत्तहिँ जाव ण हय-वाहिय ।
गंपिणु वण-पवेसि पडिगाहिय ॥
सुड्डु वि सूरा पउर भयंकर ।
रायहँ किं करंति किर तक्कर ॥
नट्ठा के वि निरुद्धा बद्धा ।
के वि कियंतहो जंपणे छुद्धा ॥
चप्पवि नियवि निरारिउ सेन्नहो ।
जिह अग्गहँ तिह होइ न अन्नहो ॥
एम भणेवि कुमारि वियारिय ।
सा चिलायपुत्तें संघारिय ॥

समस्त परिजन जाकर एकत्र हुए और उन्होंने दुर्बुद्धि चिलातपुत्रको नगर-से निकाल बाहर किया। उसने अपने मातामहके पास जाकर वनमें एक प्रबल कोट बनाया। वह राज्यभ्रष्ट होकर वहाँ अनीतिपूर्वक चौरवृत्तिसे जीवन-यापन करने लगा। उसका एक भद्रमित्र नामक प्रियमित्र था, जैसे रामको लक्ष्मण अत्यन्त प्रिय थे। उस के रुद्रमित्र नामक मामाकी एक सुखदायक सुभद्रा नामक पुत्री थी। चिलातपुत्र उसका परिणय नहीं कर पा रहा था, क्योंकि उसका वाग्दान किसी अन्य बलवान्‌को कर दिया गया था। यह बात सुनकर चिलातपुत्रने सैकड़ों सुभट एकत्र किये और वहाँ आकर बलपूर्वक कन्याका अपहरण कर लिया। लोगोंके देखते-देखते ही वे दोनों वहाँसे चले गये ॥३॥

४

चिलातपुत्र द्वारा कन्यापहरण, श्रेणिक द्वारा आक्रमण किये जानेपर उसका घात तथा वैभारगिरिपर मुनि-दर्शन

यह बात सुनकर राजा श्रेणिक सेना सहित उसका पीछा करने लगा। राजा व घुड़सवार जब वहाँ पहुँच भी न पाये तभी उसने एक वन-प्रदेशमें जाकर उस कन्यासे विवाह कर लिया। यद्यपि उसके पास बहुत-से भयंकर शूरवीर योद्धा थे, तब भी भला चोर राजाका क्या सामना कर सकते हैं? उनमें-से कितने ही त्रस्त हुए, निरुद्ध हुए और बाँध लिये गये तथा कितने ही यमराजकी पालकीमें डाल दिये गये। सेना द्वारा किये गये उस भारी संहारको देखकर चिलातपुत्रने विचार किया कि जब यह

दुई बंतरि तहिं जि वणंतरे ।
अप्पणु पाण-भएण दु-संचरे ॥
चडिउ पलाइऊण गरुयारए ।
पव्वयम्मि पावणे वइभारए ॥
घत्ता—मुणिदत्तु भडारउ भव-भय-हारउ
सहुँ संघेण णियच्छियउ ।
भय-वेविर - गत्तें पाव-विरत्तें
तेण णवेप्पिणु पुच्छियउ ॥४॥

५

कहि कहि साहु किं पि संखेवें ।
सारुवएसु कहिउ जो देवें ॥
ता उवएसु तासु सुहयारउ ।
कहिउ रिसीसें सव्वहँ सारउ ॥
जं इच्छसि तं णेच्छसु
जं पुण णेच्छसि तुमं पुरिस-सीह ।
तं इच्छसु जइ इच्छसि
संसार-महण्णवं तरिडुं ॥
विसयाइय पर-भाव विसज्जहि ।
णिव्विसयाइय णिय पडिवज्जहि ॥
सुणेवि एउ णिव्वेएँ लइयउ ।
संखेवेण जे सो पव्वइयउ ॥
आयण्णेवि थोवाउ विसेसें ।
थिउ पाउग्ग-मरणे संतोसें ॥
ता सेणिउ स-सेण्णु तत्थायउ ।
भाइ णिएवि साहु संजायउ ॥
चंगउ किय उ पसंस करेप्पिणु ॥
गउ अंचेवि पुज्जेवि पणवेप्पिणु ॥
एत्थंतरे बंतरिए णिहालिउ ।
वइर वसाए ताए खवभालिउ ॥
झाणत्थहो सचलियए हवेप्पिणु ।
कड्ढिय लोयण सिरि वइसेप्पिणु ॥

कन्या हमारी हो चुकी है तब उसे अन्य किसीकी नहीं होने देना चाहिए। ऐसा विचार कर उसने उस कुमारीकी हत्या कर दी। वह मरकर उसी वनमें व्यन्तर देवी हुई। और चिलातपुत्र अपने प्राणोंके भयसे भागकर दुर्गम और उच्च वैभार पर्वत पर जा चढ़ा। उस पुण्यभूमिमें उसे भव-भयहारक मुनिदत्त नामक मुनिके संघ सहित दर्शन हुए। चिलातपुत्रने भयसे काँपते हुए शरीर सहित पापसे विरक्त होकर मुनिको नमस्कार किया और उनसे पूछा ॥८॥

५

मुनिका उपदेश पाकर चिलातपुत्रकी प्रव्रज्या, व्यन्तरी द्वारा उपसर्ग तथा मरकर अहमिन्द्र पद-प्राप्ति

हे साधु, मुझे संक्षेपमें वह सारभूत उपदेश कहिए जो जिनदेवने कहा है। तब उन मुनीश्वरने उसे सबमें सारभूत और सुखकारी उपदेश कहा जो इस प्रकार है—हे पुरुषवर, तू जिसकी इच्छा करता है उसकी इच्छा मत कर, और जिसकी तू इच्छा नहीं करता उसकी इच्छा कर, यदि इस संसार रूपी महासमुद्रको पार करना चाहता है। जो इन्द्रियोंके विषय आदि परभाव हैं उनको छोड़ और जो विषयों से रहित आत्मभाव है, उनको ग्रहण कर। मुनिका यह उपदेश सुनकर चिलातपुत्रको वैराग्य उत्पन्न हो गया और संक्षेप यह कि उसने प्रव्रज्या धारण कर ली। मुनिसे यह सुनकर कि अब उसकी आयु थोड़ी ही शेष रह गयी है, उसने विशेष सन्तोषके साथ प्रायोग्य मरण नामक समाधि ले ली। तब राजा श्रेणिक वहाँ अपने सैन्य सहित आया। और उसने देखा कि उसका भाई साधु हो गया है तब 'यह बहुत अच्छा किया' ऐसी प्रशंसा करके तथा पूजा, अर्चा व प्रणाम करके वहाँसे गमन किया। यहाँ इसी बीच उस व्यन्तरीने उसे देखा और बैरके वश होकर उसने उसका उपसर्ग किया। उसने चील पक्षीका रूप धारण करके उसके ध्यानस्थ होते हुए सिरपर बैठकर

वङ्क-मुंड-कीडियहिँ निरंतरु ।
खज्जइ गि छित्र गिद्धेहि देहंतरु ॥
घत्ता—पयणिय-पाणंतउ दुक्खु महंतउ
तं सहिऊण समाहि-जुउ ।
सो सोक्ख निरंतरे पंचाणुत्तरे
सिद्धि - विमाणहमिंदु हुउ ॥५॥

इय वीरजिणिंदचरिए चिलायपुत्त-परीसह-सहणो णाम
छट्ठो संधि ॥६॥

(श्रीचन्द्रकृत कहाकोसु संधि ५० से संकलित)

उसकी आँखें निकाल लीं। उसने बड़ी-बड़ी मुण्डों वाले कीटोंके द्वारा उसके शरीरको चलनीके समान बेध डाला। ऐसी प्राणान्तकारी महान् दुःखकी वेदनाको सहकर भी समाधिमें तल्लीन रहकर चिलात-पुत्र मुनि निरन्तर सुखदायी पंचअनुत्तर विमानोंमें से सिद्धिविमानमें अहमिन्द्र देव हुए ॥५॥

इति चिलातपुत्र-परीषह विषयक छठी सन्धि समाप्त

॥ सन्धि ६ ॥

संधि ७

सेणिय-रज्ज-लंभो

१

धुवकं—पणवेप्पिणु जिणवरु सिद्धि-वहू-वरु
दूरोसारिय-दुच्चरिउ ।
आयण्णहु भवि-लोहणु जण-मण-सोहणु
आहासमि सेणिय-चरिउ ॥ धुवकं ॥
खंडयं—जंबू-दीवि दाहिणे भारह-खेत्ति सोहिणे ।
मगहा देसि सुंदरं अत्थि रायगिहं पुरं ॥
जहिं दोसु मणा-वि न गुणु जि सव्वु ।
तहिं अत्थि राउ पहयारि-गव्वु ॥
उवसेणिउ नामें परम-कित्ति ।
तहो सुप्पह देवि सु-सील-वित्ति ॥
हुउ पुत्तु ताहं सेणिउ कुमारु ।
गुण-गण-निवासु पच्चक्खु मारु ।
पुव्विल्लु सरेप्पिणु वइर-हेउ ।
पच्चंत-नरेण पयंड-वेउ ॥
एक्कहिं दिणि राएँ दुट्ठु आसु ।
अहिंधम्मे संपेसिउ हयासु ॥
पेक्खेप्पिणु परिओसिउ मणेण ।
थुउ वाहइ निवेण स-परियणेण ॥
तत्थारुहेवि दुज्जउ बलेण ।
गउ वाहियालि कोऊहलेण ॥
ता नर-हरि हरिणा हरिवि तेण ।
निउ भीसावणु वणु तक्खणेण ॥
चइऊण तुरउ तरु-तले निविट्ठु ।
तत्थ वि किराय-राएण दिट्ठु ॥

सन्धि ७

श्रेणिक-राज्य-लाभ

१

जम्बूद्वीप, भरतक्षेत्र, मगधदेश, राजगृहपुर, राजा उपश्रेणिक, रानी सुप्रभा, पुत्र श्रेणिक। सीमान्त नरेश अभिधर्मके प्रेषित अश्व द्वारा राजाका अपहरण व वनमें किरातराजकी पुत्री तिलकावतीसे विवाह

सिद्धिरूपी वधूके वर तथा दुश्चरित्र का दूरसे अपहरण करनेवाले जिनेन्द्रको प्रणाम करके मैं लोगोंके मनमोहक सुहावनी कथारूप श्रेणिक-चरितका वर्णन करता हूँ। उसे सुनो। जम्बूद्वीपके दक्षिण भागमें शोभायमान भरतक्षेत्र है और उसके मगध देशमें सुन्दर राजगृह नामक नगर है। वहाँ तनिक भी कोई दोष नहीं, और सभी गुण वर्तमान हैं। वहाँ शत्रुके गर्वका विनाश करनेवाले परमकीर्तिवान् राजा उपश्रेणिक राज्य करते थे। उनकी अत्यन्त शीलवती रानी सुप्रभा देवी थी। उनसे श्रेणिक कुमार नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जो नाना गुणोंका निवासभूत और साक्षात् कामदेवके समान सुन्दर था। एक दिन उनके सीमान्तवर्ती राजा अभिधर्मने पूर्व वैरका स्मरण कर मगधराजको एक प्रचण्डवेग, दुष्ट अश्व भेजा। उस अश्वको देखकर राजाके मनमें बड़ा सन्तोष हुआ तथा उसने अपने परिजनों सहित अश्वकी खूब प्रशंसा की। वह बलपूर्वक दुर्जेय राजा कुतूहलवश उस अश्वपर आरूढ़ होकर बाहर मैदानमें गया। तत्क्षण ही वह अश्व राजाका अपहरण करके एक भीषण वनमें ले गया। तुरगको छोड़कर राजा जब एक वृक्षके नीचे बैठे थे, तभी वहाँके किरातराजने उन्हें देखा।

जमदंडें दुट्ठ-कयंत-वासु ।
संगहिउ नमंसिवि निउ निवासु ॥
सम्माणिऊण अवितत्थ-संधु ।
काऊण तेण वाया-निबंधु ॥
जो होसइ आयहे देव पुत्तु ।
दायव्वु रज्जु तहो तइँ निरुत्तु ॥

घत्ता—इय भणिवि मणोहर पीण-पओहर तिलयावइ तम-हर-मुहिय ।
पेसिउ सुह-वट्टणु अरि-दलवट्टणु परिणावेप्पिणु निय-दुहिय॥१॥

२

खंडयं—ता तहिं तीए समं तहो रइ-सोक्खं माणंतहो ।
बहु-समएण स-धीरउ जायउ मयण-सरीरउ ॥
किउ ताएं नाउ चिलायपुत्तु ।
कालेण कुमारु पमाण-पत्तु ॥
एक्कहिं दिणि सक्क-समाणएण ।
पुच्छिउ नेमित्तिउ राणएण ॥
महु पच्चल्लइ पुत्तहँ मज्झु एत्थु ।
कहि होसइ को रज्जहो समत्थु ॥
आहासइ परियाणिय-समत्थु ।
जो निव-सिंघासण-मत्थयत्थु ॥
ताडंतु भेरि भीमारि तासु ।
सुणहाण देंतु चर-मइ-पयासु ॥
भुंजेसइ पायसु सो निरुत्तु ।
होसइ तुह रज्जहो जोग्गु पुत्तु ॥
ता तेण परिक्खा-हेउ सव्वु ।
सोहणि दिणि करणे सुलग्गे सव्वु ॥
हक्कारिवि पंच वि सुय-सयाइँ ।
भणियाइँ नरिंदें नुय-पयाइँ ॥
जं जं तुम्हहँ पडिहाइ वत्थु ।
तं तं निस्संकिय लेहु एत्थु ॥
निसुणेवि एउ पहसिय-मुहेहिं ।
सहसा पुहई-सर-तणुरुहेहिं ॥

वह यमदण्ड नामक किरात दुष्टोंके लिए यम-निवासके समान उस राजाको नमस्कार करके उसे अपने घर ले गया और राजाका खूब सम्मान किया। किरातराजकी सुन्दर यौवनवती पुत्रीको देखकर राजा उसपर मोहित हो गया। तब किरातराजने राजाके साथ यह शपथबन्ध किया कि जो उसकी पुत्रीका पुत्र होगा उसे ही राज्य दिया जाये। ऐसा पक्का निबन्धन करके उसने अपनी मनोहर पीनपयोधर चन्द्रमुखी पुत्री—तिलकावतीका विवाह राजाके साथ कर दिया तथा उसके साथ सुखीभूत शत्रुविजयी राजाको उनके नगरको प्रेषित कर दिया ॥१॥

२

किरात कन्यासे चिलातपुत्रका जन्म। राजा द्वारा राजकुमारोंकी परीक्षा

अपनी राजधानी राजगृहमें पहुँचकर राजा उपश्रेणिक अपनी इस नयी पत्नीके साथ रतिसुखका अनुभव करते हुए रहने लगा। बहुत समयके पश्चात् उनके मदनके समान सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ। पिताने अपने इस पुत्रका नाम चिलातपुत्र रखा। यथा समय कुमार अपनी तरुणावस्थाको प्राप्त हुआ।

एक दिन उस इन्द्रके समान राजाने एक नैमित्तिकसे पूछा कि यह बतलाओ कि मेरे इन अनेक पुत्रोंके बीच कौन मेरे पश्चात् राज्यका भार सँभालनेमें समर्थ हो सकेगा। समस्त बातोंको जाननेवाले उस नैमित्तिक ने कहा—हे राजन्, जो राजपुत्र, राजसिंहासनके ऊपर बैठकर भेरी बजाता हुआ तथा श्वानोंको भी कुछ खानेको देता हुआ पायस (खीर) का भोजन करेगा वही अपनी श्रेष्ठ बुद्धिको प्रकाशित करनेवाला, भयंकर शत्रुओंको त्रस्त करनेवाला, तुम्हारे राज्यको सँभालने योग्य पुत्र होगा, इसमें सन्देह नहीं। यह सुनकर राजाने एक शुभ दिन, शुभकरण और शुभ लग्नमें परीक्षाके हेतु अपने सभी पाँच सौ पुत्रोंको बुलवाया। वे आकर राजाको प्रणाम कर बैठ गये। तब नरेन्द्रने उनसे कहा कि तुम्हें जो-जो वस्तु पसन्द हो, उस-उसको निःशंक होकर ले लो। राजाकी यह बात सुनकर उन राजकुमारोंने प्रसन्नमुख होते हुए किन्हींने आभूषण

घत्ता—केहिं वि आहरणहँ हरि-करि-रयणहँ गंधहँ तंबोलहँ वरइं।
लइयहँ सुविचित्तहँ वर-वाइत्तहँ केहिं मि कुसुमहँ सुंदरइं ॥२॥

३

खंडयं—सेणिओ सिंहासणे मणि-गण-किरणुब्भासणे।
आरुहेति भेरिं वरि थक्को काऊणं करि॥
परिवाडिए सूयारहिं कुमार।
वइसारिय सयल वि णं कुमार॥
रायाएसेण सुवण्ण-थाल।
दाऊण खीरि वड्ढिय-रसाल॥
भुंजंतहँ ताहँ ललंतजीह।
पविमुक्का मंडल नाइँ सीह॥
आवंत निएप्पिणु भीम साण।
सहसा भएण सयल वि पलाण॥
गंभीरु धीरु परि एक्कु थक्कु।
सेणिय-कुमारु भय-भाव-मुक्कु॥
ताडंतु विणोएँ भेरि दिंतु।
सुणहाण थोव-थोवं हसंतु॥
जेमिउ वीसत्थउ मइ-विसालु।
जायउ निच्चिंय-मणु भूमिपालु॥
जो रज्जहो जोग्गु अणंत-विज्जु।
सो सव्व-पयत्तें पालणिज्जु॥
इय चिंतिवि दायज्जहँ भएण।
पुहईसरेण जाणिय-नएण॥
मंडल-विट्ठालिउ एहु पाउ।
जो देसइ आयहो को वि ठाउ॥
सो हउँ वि सु-निच्चिंउ तासु सव्वु।
अविचारु हरेसमि पाण-दव्वु॥

घत्ता—इय देप्पिणु घोसण खल-मण-पोसण
नीसारिउ नयरहो तुरिउ।
तिस-भुक्खायासिउ सिंधुर-गासिउ
नंदगासु सो पइसरिउ ।३॥

लिये, किन्होंने घोड़े, हाथी व रत्न लिये, किन्होंने उत्तम गन्ध व ताम्बूल लिये, किन्होंने विचित्र-विचित्र उत्तम वादित्र लिये, और किन्होंने सुन्दर पुष्प ही ग्रहण किये ॥२॥

३

राजपुत्र श्रेणिक परीक्षामें सफल, किन्तु भ्रातृ-वैरकी आशंकासे उसका निर्वासन

किन्तु राजकुमार श्रेणिक मणि-समूहोंकी किरणोंसे दीप्तिमान् सिंहासन-पर अपने सुन्दर हाथमें भेरी लेकर जा बैठा। रसोइयोंने उन सब कुमारों को, जो कार्तिकेयके सदृश थे, क्रमशः बैठाया और राजाके आदेशानुसार उन्हें स्वर्णके थालोंमें स्वादिष्ट खीर परोस दी। ज्यों ही उन्होंने अपना भोजन प्रारम्भ किया त्यों ही सिंहके समान जीभ लपलपाते हुए श्वान छोड़ दिये गये। सभी राजकुमार उन भयंकर श्वानोंको आते देख सहसा भयसे भाग उठे। किन्तु एकमात्र गम्भीर और धीर श्रेणिक कुमार भयकी भावनासे मुक्त होते हुए अपने आसनपर बैठे रहे। वे विनोदपूर्वक भेरी बजाते जाते थे और हँसते हुए थोड़ा-थोड़ा, भोजन कुत्तोंको भी देते जाते थे। इस प्रकार उस विशाल बुद्धिमान् राजकुमारने विश्वस्त भावसे अपना भोजन समाप्त किया। यह देख भूपालने अपने मनमें निश्चय कर लिया कि यही राजकुमार राज्य करने योग्य है। साथ ही उन्होंने यह भी विचार किया कि, जो राजकुमार अनन्त विद्याओंका धनी है, और राज्य करने योग्य है उसका समस्त प्रयत्नपूर्वक संरक्षण करना चाहिए। ऐसा चिन्तन कर उस नीतिज्ञ धराधीशने दायादों (राज्यके भागीदार भ्राताओं) के बीच वैर के भयसे श्रेणिक कुमारको इस घोषणाके साथ नगरसे बाहर निकाल दिया कि इसने कुत्तोंके जूठे भोजन करनेका पाप किया है, अतएव जो कोई इसे अपने यहाँ ठहरनेको स्थान देगा, उसके समस्त धन और प्राणोंका भी मैं निश्चयरूपसे हरण कर लूँगा। ऐसे खल पुरुषोंके मनको प्रसन्न करनेवाली घोषणा कराकर राजाने तुरन्त ही श्रेणिक कुमारको नगरसे निकाल दिया। तब वह गजगामी राजकुमार भूख और प्याससे त्रस्त होता हुआ नन्दग्राममें जाकर प्रविष्ट हुआ ॥३॥

४

अच्छइ तहिं भीयासत्तु जाम ।
एत्तहे वि तासु ताएण ताम ॥
दाऊण चिलायसुयस्स रज्जु ।
धीरेण अणुट्ठिउ अप्प-कज्जु ॥
संजायउ राउ चिलायपुत्तु ।
सो करइ कयावि न किं पि जुत्तु ॥
ता मंतिहिं दूउ लहेवि सुद्धि ।
संपेसिउ कंचीपुरु सुबुद्धि ॥
गंतूण तेण सुमइ-सुयासु ।
उवएसिउ वइयरु णिव-सुयासु ॥
रज्जम्मि थवेवि चिलायपुत्तु ।
संजायउ ताउ मुणी ति-गुत्तु ।
सयल वि पय रज्जु करंतएण ।
संताविय तेण कयंतएण ॥
किं बहुणा गच्छहुँ एहि सिग्घु ।
कुरु रज्जु णिवारहि लोय-विग्घु ॥
घत्ता—जण-वल्लह णोमिणि जिह गय-गोमिणि परिपीडिय दोसायरेण ।
संभरइ पहायरु देउ दिवायरु तिह पइँ पय परमायरेण ॥४॥

५

खंदयं—अभयमई वसुमित्तउ पुच्छेवि कंतो कंतउ ।
रायाणं स-पुरोहियं आयउ सो णिलयं णियं ॥
गंपिणु चप्पेवि चिलायपुत्तु ।
णीसारेवि घल्लिउ अणय-जुत्तु ॥
सुह-दिणे सुहि-सयणहिं बद्धु पट्टु ।
सुंदर-मइ अरि-गय-घड-घरट्टु ॥
तोसेवि सु-वयणहिं सव्व-लोय ।
थिउ रज्जे दिव्व भुंजंतु भोय ॥५॥

इय वीर-जिणिंदचरिए सेणिय-रज्ज-लंभो णाम
सत्तमो संधि ॥७॥

(श्रीचन्द्रकृत कहाकोसु संधि १२ से संकलित)

४

चिलातपुत्रका राज्याभिषेक व अन्यायके कारण मन्त्रियों द्वारा श्रेणिकका आनयन

यहाँ भोगोंमें आसक्त रहते हुए एक दिन राजा उपश्रेणिकने अपना राज्यभार चिलातपुत्रको सौंप दिया और धीरतापूर्वक आत्मकल्याणका कार्य अर्थात् दीक्षा-ग्रहण सम्पन्न किया। चिलातपुत्र राजा तो हो गया, किन्तु वह उचित कार्य कदापि नहीं करता था। तब मन्त्रियोंने श्रेणिक-कुमारका पता लगाया और यह जानकर कि वे अब कांचीपुरमें जा पहुँचे हैं, उन्होंने एक बुद्धिमान् दूतको कांचीपुर भेजा। उसने सुप्रभाके पुत्र श्रेणिक राजकुमारके पास जाकर उन्हें वृत्तान्त सुनाया कि तुम्हारे पिता तो चिलातपुत्रको राज्यपर बैठाकर त्रिगुप्तिधारी मुनि हो गये, और इधर राज्य करते हुए चिलातपुत्रने यमके समान समस्त प्रजाको सन्तापित कर दिया है। बहुत कहनेसे क्या लाभ, आप शीघ्र ही हमारे साथ चलिए, राज्य सँभालिए और प्रजाके कष्टोंका निवारण कीजिए। जिस प्रकार लोकप्रिय पद्मिनी सूर्यके अस्त होनेपर दीपाकर अर्थात् निशाधीश चन्द्रसे परिपीड़ित होती हुई प्रभाकर सूर्यदेवका स्मरण करती है, उसी प्रकार प्रजा परम आदर भावसे आपकी प्रतीक्षा कर रही है ॥४॥

५

चिलातपुत्रका निर्वासन और श्रेणिकका राज्याभिषेक

श्रेणिक कुमार अपनी नयी परिणीता अभयमती और वसुमित्रा नामकी प्रियपत्नियोंसे तथा राजा व पुरोहितसे पूछकर अपने पूर्व निवास राजगृहमें आया। आते ही उसने अनीतिवान् चिलातपुत्रको पराजित कर वहाँसे निकाल बाहर किया। फिर एक शुभ दिन समस्त सुहृद् और सुजनोंने उस सुन्दर बुद्धिशाली शत्रुरूपी गज समूहको नष्ट करनेवाले राजकुमारको राजपट्ट बाँध दिया। अपने मधुर वचनों द्वारा सब लोगोंको सन्तुष्ट करता हुआ राजा श्रेणिक राजसिंहासनपर प्रतिष्ठित हुआ और दिव्यभोगोंका उपभोग करने लगा ॥५॥

इति श्रेणिक-राज्य-लाभ विषयक सप्तम सन्धि समाप्त

॥ सन्धि ७ ॥

संधि ८

सेणिय-धम्म-लाहो तित्थंकर-गोत्त-बंधो य

१

एक्कहिं दिणे किंकर-परियरिउ ।
पारद्धिहे नरवइ नीसरिउ ॥
अडविहि पइसारि समण्ण-परु ।
परमेसरु अवही-नाण-धरु ॥
मुणि जसहरु पेच्छिवि जसहरु
पडिमा-जोएं दुरिय-हरु ।
कहिं दिट्ठउ एहु अणिट्ठउ
अ-सउणु कज्ज-विणास-यरु ॥
अइ-रोस-वसेण मुणीसरहो ।
पुहईसरेण परमेसरहो ॥
वह-हेउ कयंत व जणिय-भया ।
सुणहाण विमुक्का पंच-सया ॥
मुणि-माहप्पेण विणीय किया ।
दाऊण पयाहिण पुरउ थिया ॥
ते निएवि नरिंदें नि-प्पसरा ।
करे करिवि सरासणु मुक्क सरा ॥
मुणि-नाहहो होवि पुप्फ-पयरु ।
चलणोवरि पडिउ बाण-निवरु ॥
पुणु सप्पु वित्तु मुउ झत्ति गले ।
तवयरण-करण-णिट्ठविय-मले ॥
रिसि-वह-परिणामें तहिं समए ।
नरयम्मि नरेसरु सत्तमए ॥
बद्धाउ हवेप्पिणु उवसमिउ ।
तं चोज्जु निएवि मुणिहे नमिउ ॥

सन्धि ८

श्रेणिक-धर्म-लाभ व तीर्थंकर गोत्र-बन्ध

१

राजा श्रेणिककी आखेट-यात्रा मुनि-दर्शन व भाव-परिवर्तन

एक दिन राजा श्रेणिक अपने किंकरों सहित आखेटके लिए निकला। वनमें पहुँचते ही उसने आत्म और परको समदृष्टि से देखने वाले अवधि-ज्ञानधारी यशस्वी परम मुनीन्द्र यशोधरको कर्मोंको नष्ट करनेवाले प्रतिमा योगमें स्थित देखा। उन्हें देखकर राजाने सोचा—अरे! कार्य-विनाश करनेवाला यह अनिष्ट—अपशकुन मुझे कहाँसे दिख गया? इस प्रकार अत्यन्त क्रोधके वशीभूत होकर राजाने उन परमेश्वर मुनीन्द्रका वध करनेके लिए उनपर यमराजके समान भयंकर पाँच सौ श्वान छोड़े। किन्तु मुनिके माहात्म्यसे वे विनययुक्त हो गये और उनकी प्रदक्षिणा करके उनके सम्मुख बैठ गये। यह देख कर राजाने अपने हाथमें धनुष लेकर तीक्ष्ण बाण छोड़े। किन्तु वह बाणोंका समूह भी पुष्पपुंज बनकर मुनिराज-के चरणोंमें जा पड़ा। तब राजाने एक मृत सर्प उठाकर तुरन्त उनके गलेमें डाल दिया जो कि अपने तपश्चरण द्वारा पापमलको दूर कर चुके थे। मुनिका वध करने की भावनाके कारण उसी समय राजाने सप्तम नरकमें उत्पन्न होनेका आयु-बन्ध किया। किन्तु उसी समय मुनिका उक्त आश्चर्य देखकर उनका मन उपशम भावसे व्याप्त हो गया और उन्होंने

घत्ता—भव्वत्तें सम-रिउ-मित्तें
जाणेप्पिणु उवसंत-मणु ।
वर-भासए पुण्ण-पयासए
उच्चारिवि आसी-वयणु ॥१॥

२

दुक्किय-कम्मिंधण-जलण-सिह ।
किय धम्म-स्सवण अणेय-विह ॥
निसुणेवि अणोवमु मुणि-वयणु ।
निवु निंदिवि अप्पुणु पुणु जि पुणु ॥
जायउ जिण-सासणि लीण-मणु ।
पडिवन्नउ खाइउ सद्दहणु ॥
नह-यलि सुरेहिं अहिणंदियउ ।
ता राउ जाउ आणंदियउ ॥
वंदेप्पिणु सिरि-जसहर-सवणु ।
आयउ पुहई-वइ निय-भवणु ॥
दूरुज्झिय मिच्छा-समय-मणु ।
सुहुं करइ रज्जु पालिय-सुयणु ॥
चेल्लण-महएविए परियरिउ ।
रामु व सीयाए अलंकरिउ ॥
एक्कहिं दियहम्मि सहा-भवणे ।
जामच्छइ पहु नर-नियर-घणे ॥
घत्ता—आवेप्पिणु कर मउलेप्पिणु
ता वणवालें विन्नविउ ।
परमेसरु नाण-दिणेसरु
देव-देउ सुर-नर-नविउ ॥२॥

३

सामिय तइलोय-लोय-सरणु ।
अमराहिव-रइय-समोसरणु ॥
जिय-दुज्जय-काम-कसाय-रणु ।
दूरीकय-जाइ-जरा-मरणु ॥

मुनिको नमन किया। वे भगवान् मुनि तो शत्रु और मित्रके प्रति समदृष्टि रखते थे। उन्होंने राजाको उपशान्तमन हुए जानकर पुण्यप्रकाशी उत्तम भाषामें आशीर्वादका उच्चारण किया ॥१॥

२

श्रेणिक राजा जैन-शासनके भक्त बनकर राजधानीमें लौटे

राजा श्रेणिकने यशोधर मुनिसे दुष्कृत कर्मरूपी ईंधनको जलाने वाले अग्निके समान अनेक प्रकारका धर्म श्रवण किया। मुनिके उन अनुपम वचनोंको सुनकर राजाने बारम्बार अपने आपकी निन्दा की। वे अब जिन-शासनमें लीन-मन हो गये और उन्होंने आधिक सम्यक् दर्शनका लाभ प्राप्त किया। आकाशमें देवोंने उनका अभिनन्दन किया। इससे राजाको और भी अधिक आनन्द हुआ। फिर उन श्रमणमुनि यशोधरकी वन्दना करके राजा अपने भवनमें लौट आये। वे अब अपने मनसे मिथ्या मतोंको दूर छोड़कर सज्जनोंका पालन करते हुए, सुखपूर्वक राज्य करने लगे। चेलना महादेवीके साथ वे सीताके साथ रामके सदृश अलंकृत दृष्टिगोचर होते थे। एक दिन जब वे नर-समूहसे भरे हुए अपने सभा-भवनमें बैठे थे, तभी वनपालने आकर और हाथ जोड़कर विनती की कि हे महाराज, देवों और मनुष्यों द्वारा नमित, ज्ञान-दिवाकर, देवोंके देव, परमेश्वर महावीरका आगमन हुआ है ॥२॥

३

महावीरके विपुलाचलपर आनेकी सूचना और श्रेणिकका उनकी वन्दना हेतु गमन

वनपालने कहा—हे स्वामी, त्रिलोकके लोगोंके शरणभूत, इन्द्र द्वारा जिनके समोशरणकी रचना की जाती है, जिन्होंने दुर्जय काम और कषायके रणको जीत लिया है, जन्म-जरा और मृत्युको दूर कर दिया है

दुग्गइ-दुह-पंक-णिदाह-दिणु ।
विउल-इरि पराइउ वीर-जिणु ॥
आयण्णेवि एउ धरा-धरणु ।
तहो देंवि सव्व-अंगाहरणु ॥
सहसत्ति कयासण-परिहरणु ।
पय सत्त सु-विणयालंकरणु ॥
परिओसिउ तद्दिसि कय-गमणु ।
जय देव भणंति पसन्न-मणु ॥
पणवेप्पिणु भू-यलि लुलिय-तणु ।
भेरी-रव-परिपूरिय-भुवणु ॥
सम्मत्तें संगय-सव्व-जणु ।
गउ वंदण-हत्तिए करि व खणु ॥
गच्छंतु संतु संपय-भवणु ।
संपत्तउ सेल-समीव-वणु ॥

घत्ता—वर-वंसउ लद्ध-पसंसउ
स-करि स-हरि स-चमरु स-सिरि ।
धर-धारउ रयणहिं सारउ
निय-समु राएँ दिट्ठु गिरि ॥३॥

४

पणवेप्पिणु सम-परिणइ सणाहु ।
संथुउ पय-भत्ति-भरेण साहु ॥
तेण वि सुह-दुह-गइ-गमण-हेउ ।
उवएसिउ धम्माहम्म-भेउ ॥
निसुणेप्पिणु सासय-सुह-निहाणु ।
पडिवन्नेउ खाइउ सद्दहाणु ॥
जो विहिउ साहु-वह-करणि भाउ ।
तं सत्तम-निरए निबद्धु आउ ॥
कड्ढिवि तउ निरु निम्मल-मणेण ।
पुणु बद्धु पढमि दंसण-बलेण ॥
गुरु-संवेगेण मणोहिरासु ।
एत्थज्जिउ पइँ तित्थयर-नामु ॥

तथा जो दुर्गतिके दुःखरूपी कीचड़को सुखानेके लिए ग्रीष्मकालीन दिनके समान हैं, ऐसे वीर जिनेन्द्र विपुलाचल गिरिपर आकर विराजमान हुए हैं। यह बात सुनकर राजा श्रेणिकने अपने समस्त देहके आभूषण वनपालको दे दिये और तत्काल अपने सिंहासनको छोड़कर सद्विनयसे अपनेको अलंकृत करते हुए वे सात पद आगे बढ़े। उन्होंने प्रसन्न होकर उसी दिन भगवान्‌की वन्दनाके लिए जानेका निश्चय कर लिया। उन्होंने 'जय देव' कहकर प्रसन्न मनसे भूमितलपर अष्टांग प्रणाम किया, और वन्दन-यात्राकी सूचना-रूप भेरी बजवा कर उसकी ध्वनिसे समस्त भुवन-को परिपूरित कर दिया। सब लोगोंके एकत्र हो जानेपर, राजा श्रद्धा-पूर्वक वन्दनाभक्तिसे प्रेरित हो उत्सव सहित चल पड़ा। चलते-चलते वह राज्यलक्ष्मीका निधान राजा श्रेणिक पर्वतकी भूमिके समीपवर्ती वनमें पहुँचा। वहाँसे राजाने उस पर्वतको देखा जो उसके ही समान श्रेष्ठवंश (उत्तम कुल अथवा अच्छे बाँस वृक्षों) से युक्त था, प्रशंसा-प्राप्त था, हाथी, घोड़ों, चमर और शोभासे युक्त था, धराधारक तथा रत्नोंका सार था ॥३॥

४

महावीरका उपदेश सुनकर राजा श्रेणिकको क्षायिक-सम्यक्त्वकी उत्पत्ति

राजाने समता भावसे युक्त होकर भगवान्‌को प्रणाम किया और उनके चरणोंकी भक्तिके भारसे प्रेरित हो उनकी स्तुति की। भगवान्‌ने भी राजाको शुभगतिमें जानेके हेतु धर्म तथा दुर्गति-गमनके हेतुभूत अधर्ममें भेद करनेका उपदेश दिया। वह उपदेश सुनकर राजाने शाश्वत सुखके निधान क्षायिक सम्यक्त्वको प्राप्त किया। उन्होंने जो पहले साधु-का वध करनेके भावसे सातवें नरककी आयुका बन्ध किया था, उसको काटकर अत्यन्त निर्मल भावसे अपने सम्यक् दर्शनके बल द्वारा उसे प्रथम नरकके आयुबन्धमें बदल दिया। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपने विशेष संवेग भावसे मनोहर तीर्थंकर नाम-कर्मको अर्जित किया। गौतम गण-

भुवण-वइ-पणय-पायारविंदे ।
निव्वुइ-परे सम्मइ-जिण-वरिंदे ॥
तिण्णि जि संवच्छर अट्ठ मास ।
दस अवर वियाणहि पंच दिवस ॥
एत्तिए अच्छंतिए तुरिए काले ।
पंचत्तु हवेसइ तुह वयाले ॥
सीमंत-नरए दुक्खहो खणीहिं ।
जाएवउ पइँ पढमावणीहि ॥
नारइउ निरंतर-दुक्ख-वरिसु ।
होसहि चउरासी वरिस-सहसु ॥
नीसरेवि तओ हय-दुक्ख-जालि ।
ओसप्पिणीहे तइयम्मि कालि ॥

घत्ता—सिरिचंदुज्जल-कित्ति जग-गुरु सव्व-सुहंकरु ।
नामें पोमु महाइ होसहि तुहुँ तित्थंकरु ॥४॥

इय वीरजिणिंदचरिए सेणिय-धम्मलाह-तित्थयर-गोत्त-बंधो णाम
अट्ठमो संधि ॥८॥

(श्रीचन्द्रकृत कहाकोसु संधि १३-१४ से संकलित)

धरने राजा श्रेणिकसे कहा कि हे राजन्, जब भुवनपतियों द्वारा जिनके चरणारविन्दको नमन किया जाता है वे सन्मति जिनेन्द्र निर्वाण प्राप्त कर लेंगे, तब उसके तीन वर्ष, आठ मास और पन्द्रह दिवस इतना समयमात्र चतुर्थकालका शेष रह जायेगा, तभी वयोवृद्ध होते हुए तुम्हारी मृत्यु होगी और तुम दुःखकी खानि प्रथम पृथ्वीके सीमन्त नामक नरकमें जाकर उत्पन्न होगे। वहाँ तुम निरन्तर दुःखकी वृष्टि सहते हुए चौरासी सहस्र-वर्षों तक नारकीयके रूपमें रहोगे। वहाँसे अवसर्पिणीके तृतीयकालमें अपने सब दुःख-जालको दूर कर निकलोगे और चन्द्रके समान उज्ज्वल कीर्तिसे युक्त सर्वसुखकारी जगद्गुरु महापद्म नामक तीर्थंकर होगे ॥४॥

इति श्रेणिक-धर्मलाभ व तीर्थंकर-गोत्रबन्ध विषयक
अष्टम सन्धि समाप्त ॥ सन्धि ८ ॥

संधि ९

सेणिय-धम्म-परिक्खा

१

अन्नु वि उवगूहण-अक्खाणउ ।
कहमि समुज्झिय-दोसट्ठाणउ ॥
चउ-विह-सुर-निकाय-मज्झत्थें ।
सुय-णाणोहि-णाण-सामत्थें ॥
मिच्छा-धम्म-करिंद-मइंदें ।
अणुरंजणिए कहाए सुरिंदें ॥
धम्म-स्सवण करंतें संतें ।
फेडिय-पुच्छय-जण-मण-भंतें ॥
भूयलि राया सेणिय-सन्निउ ।
दिढ-सम्मत्तु भणेप्पिणु वन्निउ ॥
तं निसुणेवि अ-सद्दहमाणउ ।
एप्पिणु नहि चोइय-स-विमाणउ ॥
निएवि सराहिउ एंतु ससेणउ ।
मग्ग-सरोवरि कड्ढिय-मीणउ ॥
चामरवाहिहाणु विक्खायउ ।
सुर-वरु जाल-हत्थु रिसि जायउ ॥
ता तहिं मगहेसरु संपत्तउ ।
जइ आलोएवि जालु धिवंतउ ॥
गुरु-हारजाहें मीणप्पंतउ ।
पणवेप्पिणु विणएण पउत्तउ ॥
मइं दासें होंतेणाहम्मउ ।
जुज्जइ तुम्हहं एउ न कम्मउ ॥

घत्ता—जइ कज्जु भसेहिं तो तुम्हइं पासत्थ पहु ॥
अक्खहु होएवि हउं संपाडमि मच्छ-बहु ॥१॥

सन्धि ९

श्रेणिक-धर्म-परीक्षा

१

श्रेणिक के सम्यक्त्वकी परीक्षा हेतु देवका धीवररूप धारण

कवि कहते हैं कि अब मैं यहाँ उपगूहन गुणके दृष्टान्त स्वरूप राजा श्रेणिक विषयक आख्यान कहता हूँ, जो सम्यक्त्वमें उत्पन्न होते हुए दोषों का निवारण कराता है। एक बार श्रुतज्ञान और अवधिज्ञानका सामर्थ्य रखनेवाले तथा मिथ्याधर्मरूपी गजेन्द्रके लिए मृगेन्द्रके समान सुरेन्द्रने चतुर्विध देव-निकायोंके मध्य बैठे हुए सभासदोंके मनोरंजनार्थ धर्मकथा कही, और प्रश्न-कर्ताओंकी भ्रान्तियोंको दूर किया। इस सम्बन्धमें उन्होंने पृथ्वीतलपर वर्तमान राजा श्रेणिकको दृढ़ सम्यक्त्वधारी कहकर उसकी प्रशंसा की। उसे सुनकर एक देवको उसके सच होनेका विश्वास नहीं हुआ। अतएव इसकी परीक्षा करने हेतु अपने विमानको आकाशमें चलाता हुआ वह देव वहाँ आया। उसने देखा कि राजा श्रेणिक अपनी सेना सहित कहीं गमन कर रहा है। अतएव वह देव चामरव नामक विख्यात ऋषिका रूप धारण कर तथा अपने हाथमें जाल लेकर राजाके मार्गवर्ती एक सरोवरमें मछलियाँ पकड़ने लगा। जब मगधेश्वर वहाँ पहुँचे तब उन्होंने देखा कि एक ऋषि जाल फेंककर मछलियोंको पकड़ रहे हैं और उन्हें एक भारवाही अजिकाको देते जा रहे हैं। यह देख राजाने उन्हें प्रणाम किया और विनयपूर्वक कहा कि—हे मुनिराज, मुझ दासके होते हुए, आपको स्वयं यह अधर्म-कार्य करना उचित नहीं है। यदि आपको मत्स्योंसे काम है तो आप एक तरफ हो जाइए और मैं आपका यह मत्स्यवधका कार्य सम्पादित कर देता हूँ ॥१॥

२

पिआणिय निम्मल-राउ मणेण ।
पउत्तु पवंचु मुणिंदें तेण ॥
धराहिव एत्तिय-मेत्तहिँ चेव ।
पओयणु मीणहिँ अन्नहिँ नेव ॥
तओ चिरइंहु कराउ लएवि ।
करे अणिमेस सभिक्खहो देवि ॥
गओ मगहावइ गेहि नवेवि ।
विसज्जिउ संजउ संजइ वे वि ॥
निएविणु तारिसु ताण विधम्मु ।
दुगुंछइ लोउ दियंबर-धम्मु ॥
मुणेवि वियड्ढिण अन्न-दिणम्मि ।
भिडंसणु संदरिसाविउ रम्मि ॥
स-लेह-दलाउ नियंक-धराहु ।
करेप्पिणु मुद्दउ जीवणु ताहु ॥
चिदिन्नउ सव्वहँ राय-सुयाहँ ।
[पुरीस-विलित्तउ कारिवि ताहँ] ॥
नवेप्पिणु निव्विदिगिंछ-मणेहिं ।
करेवि कयंजलि सव्व-जणेहिं ॥
चडाविउ ताउ लएवि स-सीसे ।
स-सेहरे चंपय-वास-विमीसे ॥

घत्ता—तं निएवि णिवेण भणिय सव्व-सामंत-वरे ।
मुद्दियउ कियाउ किं तुम्हहिं विरुयाउ सिरे ॥२॥

३

जिय-सत्तु-चक्केण सुय-सामि-चक्केण ।
विणएण संलविउ सामंत-चक्केण ॥
एह्म्ह जीवस्स चेयणए लगु जेम ।
संपुज्जणिज्जादि-वंदणिय फुडु तेम ॥
तं वयणु निसुणेवि कुल-कुमुय-चंदेण ।
विहसेवि तं भणिय सेणिय-नरिंदेण ॥

२

देवमुनिके घोर-कर्मसे लोगोंमें दिगम्बरधर्मके प्रति घृणा तथा श्रेणिक द्वारा उसका निवारण

राजाकी उस बातसे देवने अपने मनमें जान लिया कि राजाका सम्यक्त्वभाव सर्वथा विशुद्ध है। तथापि उन्होंने बहाना बनाकर कहा—हे राजेन्द्र, हमें इतने ही मत्स्योंसे प्रयोजन है, हमें और नहीं चाहिए। तब राजाने उस विरक्त आर्यिकाके हाथसे मत्स्योंको ले लिया और अपने सेवकको सौंप दिया। फिर उन्हें नमस्कार करके मगध नरेश अपने घर चले गये तथा उस संयमी और संयमिनी दोनोंको विदा कर दिया। उस मुनि और अजिकाके उस अधर्म-कार्यको देखकर लोग दिगम्बर धर्मसे घृणा करने लगे। यह बात जानकर उस बुद्धिमान् राजाने एक दिन, एक निदर्शन (उदाहरण) उपस्थित करके दिखलाया। उन्होंने जीवन वृत्ति-सम्बन्धी लेखपत्रोंको अपनी नाम-मुद्रासे अंकित करके तथा उन्हें गलसे विलिप्त करके सब राजपुत्रोंको वितरण कर दिया। उन्होंने उन दान-पत्रोंको पाकर मनमें किसी प्रकारके घृणाभाव धारण किये बिना हाथ जोड़कर राजाको नमन किया, और दानपत्रोंको अपने मुकुटयुक्त तथा चम्पक पुष्पोंकी बाससे सुगन्धित सिरोंपर चढ़ा लिया। यह देखकर राजाने उन सब श्रेष्ठ सामन्तोंसे कहा कि तुमने मेरी उन मलिन मुद्राओं को अपने सिरपर कैसे रख लिया ? ॥२॥

३

मलिन मुद्राओंके उदाहरणसे सामन्तोंकी शंका-निवारण व देव द्वारा राजाको वरदान

राजाके उक्त प्रकार पूछनेपर शत्रु-चक्रको जीतनेवाले तथा अपने स्वामीके भक्त उन सभी सामन्तोंने विनय पूर्वक उत्तर दिया—हे देव, जिस प्रकार हमारा यह शरीर मलिन होनेपर भी चेतना गुणके कारण श्रेष्ठ माना जाता है, उसी प्रकार आपके द्वारा दिये हुए ये मुद्रांकित पत्र मलिन होते हुए भी हमारी जीविकाके साधन हैं, अतएव वे सब प्रकार पूजनीय और वन्दनीय हैं। उनके इस वचनको सुनकर अपने कुलरूपी कुमुदको चन्द्रमाके समान प्रसन्न करनेवाले श्रेणिक नरेन्द्रने मुसकराते हुए

जइ निहिल-जिय-नाह-जिण-मुद्द-धारस्स ।
गुरु-विणय-पुण्णेण सम्मइंसि-गेहस्स ॥
मइँ मुयवि विदिगिंछ नवयारु किउ तासु ।
ता तुम्ह किं कारणं करहु उवहासु ॥
ता तेहिँ तं मन्नियं कय-पणामेहिँ ।
मन्नाविओ सामिओ विहिय-सामेहिँ ॥
तुहुँ एक्कु पर धण्णु भो राय-राएस ।
जसु अचलु मणु धम्मे कय-पाव-विद्देस ॥
निरवज्जु जय-पुज्ज पर एक्कु जिण-धम्मु ।
दोसें अ-सक्कस्स किं होइ नउ गम्मु ॥
तं सुणिवि आवेवि देवेण नर-नियर ।
मज्झे नवो भणिउ हो भावि-तित्थयर ॥
धुत्तो सि तुहुँ जारिसो देव-राएण ।
अहिएण फुडु तारिसो धम्म-राएण ॥
इय भणिवि पुज्जेवि वित्तंतु अक्खेवि ।
गउ अमरु सुरलोउ तहो हारु वरु देवि ॥
तं नियवि वित्तंतु मिच्छत्ति पविरत्तु ।
संजाउ जणु सव्वु जिण-समए अणुरत्तु ॥
घत्ता—अवरेण वि एव सासय-मोक्खसुक्खकंखिरिण ॥
कायव्वु सया वि उवगूहणु समय-ट्ठिएण ॥३॥

इय वीरजिणिंदचरिए सेणिय-धम्म-परिक्खा-णाम
णवमो संधि ॥९॥

(श्रीचन्द्रकृत कहाकोसु संधि ३ से संकलित)

उनसे कहा—यदि ऐसा है तो मैंने यदि, समस्त दुष्कर्मोंको जीतनेवाले जिनेन्द्र भगवान्‌की मुद्रा धारण करनेवाले, धीवर मुनिको भी गुरुविनय-पूर्वक, घृणा छोड़कर, नमस्कार किया तो तुम लोग किस कारण मेरा उपहास करते हो ? राजाके इस दृष्टान्तसे उन सभी सामन्तोंने धर्मके मर्मकी बात समझ ली। उन्होंने राजाको प्रणाम किया और समताभाव सहित अपने स्वामीको मना लिया। उन्होंने कहा—हे राजराजेश्वर, हे पाप-विद्वेषी, आप ही एक धन्य हैं, जिनका मन धर्ममें इस प्रकार अचल है। यह जिनधर्म ही निर्दोष और सर्वोपरि जगत्-पूज्य है। जो कोई दोषोंमें अनासक्त है उसके लिए वह गम्य क्यों नहीं होगा ? यह सब देख-सुनकर वह देव वहाँ आया, और समस्त जनसमूहके मध्य राजासे बोला—हे भावी तीर्थंकर, तुम्हारा जिस प्रकार वर्णन देवराजने किया था, उससे भी कहीं स्पष्टतः, कहीं अधिक तुम्हारा धर्मानुराग है। ऐसा कहकर, राजा की पूजाकर तथा अपना पूर्व वृत्तान्त सुनाकर वह देव राजाको एक सुन्दर हार देकर देवलोकको चला गया। इस वृत्तान्तको देखकर सब लोग मिथ्यात्वसे विरक्त तथा जैनधर्ममें अनुरक्त हो गये। अन्य जो कोई भी धर्मावलम्बी शाश्वत सुखरूप मोक्षके लिए उत्कण्ठित हो उसे भी सदा इसी प्रकार उपगूहन अंगका पालन करना चाहिए ॥३॥

इति श्रेणिक-धर्म-परीक्षा विषयक नवम सन्धि समाप्त

॥ सन्धि ९ ॥

संधि १०

सेणिय-सुय-वारिसेण-जोय-साहणं

१

सिरिसेविए चेल्लण-देविए
कालें जंतें मल-विलउ ।
संजणियउ णामें भणियउ
वारिसेणु सुउ गुण-निलउ ॥
रायगेहि पइ-साहिय-रायहो ।
वारिसेणु सुउ सेणिय-रायहो ॥
दंसण-णाण-चरित्त-समिद्धउ ।
पालिय-पव्वोवासु पसिद्धउ ॥
एयंवरु निसि पडिमा-जोएँ ।
अच्छइ पिउवणे पाव-विओएँ ॥
तम्मि चेय नयरम्मि सत्तासउ ।
अत्थि चोरु विज्जुच्चर-नामउ ॥
थंभण-मोहणाइ-बहु-विज्जउ ।
अंजण-सिद्धु कयंतु व विज्जउ ॥
साहस-पउ बहु-वसणाकंतउ ।
गणियासुंदरि-गणिया-कंतउ ॥
एक्कहिं दियहिं जाम तहे मंदिरु ।
जाइ निसहिं सो नयणाणंदिरु ॥
ताम भज्ज पेच्छइ विच्छाई ।
विगय-चंद चंदिम नं राई ॥
पुच्छिय मन्नावेवि वराणणि ।
रुट्ठ ममोवरि काहें अ-कारणि ॥
भासइ गणियासुंदरि दुल्लह ।
नउ तुज्झुवरि कोहु मइ वल्लह ॥

सन्धि १०

श्रेणिक-पुत्र वारिषेणकी योग-साधना

१

वारिषेणकी धार्मिक वृत्ति। विद्युच्चर चोरकी प्रेयसी गणिकासुन्दरीको चेलना रानीका हार पानेका उन्माद

कुछ समय जानेपर लक्ष्मी द्वारा सेवित चेलनादेवीने वारिषेण नामक पुत्रको जन्म दिया, जो पाप-विनाशक तथा गुणोंके निधान हुए। राजगृहमें नीतिसे समस्त राजाओंको नीतिके मार्गसे अपने वशमें करनेवाले राजा श्रेणिकका यह वारिषेण नामक पुत्र दर्शन, ज्ञान और चारित्र से सम्पन्न पर्वोपवासका पालन करनेवाला प्रसिद्ध हो गया। एक बार वह एक वस्त्र धारण किये हुए श्मशानमें रात्रिके समय पाप-विनाशक प्रतिमा-योगसे स्थित था। उसी नगरमें लोगोंको त्रास देनेवाला विद्युच्चर नामक चोर रहता था। वह स्तम्भन, मोहन आदि बहुत सी विद्याओंको जानता था, और अंजनसिद्ध (अंजन द्वारा अदृश्य होनेकी कलाका ज्ञाता) था, जैसे मानो साक्षात् यमराज हो। वह बड़ा साहसी तथा अनेक व्यसनोंके वशीभूत था। इसका प्रेम नगरकी प्रसिद्ध वेश्या गणिका-सुन्दरीसे था। एक दिन जब वह अपनी उस प्रेयसीके नेत्रोंको सुखद निवासपर रात्रिके समय गया, तब उसने अपनी उस प्रेयसीको उदास-मन देखा, जैसे मानो चन्द्रमाकी चाँदनीसे रहित रात्रि हो। चोरने उसे मनाकर पूछा, हे सुन्दरमुखी, तू बिना कारण मेरे ऊपर रुष्ट क्यों हो गयी है? इसपर गणिकासुन्दरीने कहा, हे मेरे दुर्लभ वल्लभ, मेरा तुम्हारे

किंतुज्झाण-धणक्मि महा-पहु ।
चिल्लण-देविहिं कंठि सुहावहु ॥
हारु नियवि मज्झ उम्माहउ ।
जाउडिवट्टु भोय-धण-लाहउ ॥
थिय पहेवि पिय तेणुद्देएँ ।
ता धीरिय भण कय-जण-खेएँ ॥

घत्ता—उद्दुहहि देवि करि सिंगारु चिंत हणहि ।
किं एक्कें तेण अवरु वि आणमि जं भणहि ॥१॥

२

रंजिऊण भामिणीहिं चित्तु हंस-गामिणीहिं ।
अद्धरत्ति रायगेहु गंपि बद्ध लच्छि-नेहु ।
निग्गओ लएवि हारु लुंचिऊण पास-चारु ।
नं कयंत बद्ध-कोहु धाइया नरिंद-जोह ।
हार-तेय-मग्गि लग्ग तासु मग्गया समग्ग ।
जे मसाणे ढुक्कमाण थाण-जालु मेल्लमाण ।
काउसग्गि अच्छमाणु अप्पि अप्पु झायमाणु ।
तत्थ पाव-पक्खि-सेणु पेच्छिऊण वारिसेणु ।
घल्लिऊण चंदहासु पाय-मूलि हारु तासु ।
नं किलेसु सिद्धु कोवि सो थिओ अ-लक्खु होवि ।
तं नियवि हारु लेवि गंपि सामिणो नवेवि ।
तेहिं भासियं सुणेवि. राइणा सिरं धुणेवि ।
पेसिया भडा भणेवि एहु तासु कं लुणेवि ।
दुट्ठएण किं सुएण कु-स्सुएण किं सुएण ।
किंकरा सुणेवि वाणि पत्थिवस्स खग्ग-पाणि ।
झत्ति पत्त तं पएसु जत्थ सो विसुद्ध-लेसु ।

घत्ता—चउदिसु वेढेवि झंकोलिउ सो तेहिं किह ।
रयणायर-वेल-जल-कल्लोलेहिं सेलु जिह ॥२॥

ऊपर कोई क्रोध नहीं है। किन्तु उद्यानवनमें मैंने चेलनादेवीके गलेमें महाकान्तिवान् और सुहावना हार देखा है, जिससे मुझे उसे पानेका ही उन्माद हो उठा है और अन्य भोग व धनके लाभकी कोई इच्छा नहीं रही है। हे प्रिय, उसी उद्वेगसे सब कुछ छोड़कर बैठी हूँ। अपनी प्रेयसीकी यह बात सुनकर लोगोंको दुःख देनेवाले उस चोरने अपनी उस प्रियाको धैर्य बँधाया। उसने कहा—हे देवी, उठो-उठो, अपना शृंगार करो और चिन्ताको छोड़ो। उस एक हारकी तो बात ही क्या है, और भी जो वस्तु तुम कहो उसे लाकर दे सकता हूँ ॥१॥

२

विद्युच्चर चोर द्वारा रानीके हारका अपहरण तथा राजपुरुषों द्वारा पीछा किये जानेपर ध्यानस्थ वारिषेणके पास हार फेंककर पलायन। राजा द्वारा वारिषेणको मार डालनेका आदेश

अपनी उस हंसगामिनी भामिनीके चित्तको इस प्रकार प्रसन्न करके विद्युच्चर चोर अर्द्धरात्रिके समय धनके लोभसे राजमहलमें जा घुसा और रानीका हार लेकर वहाँसे निकल भागा। उसके पैरोंकी आहट सुनकर राजाके योद्धा सेवक क्रोधपूर्वक यमराजके समान उसके पीछे दौड़ पड़े। वे चोरके हाथमें जो हार था, उसके तेजके मार्गसे ही उसके पीछे लगे थे। वे हाँकें लगा रहे थे और बाणजाल छोड़ रहे थे। जब वह चोर श्मशानमें पहुँचा, तब उसने वहाँ कायोत्सर्ग मुद्रामें स्थित अपनेमें अपनी आत्माका ध्यान करते हुए वारिषेणको देखा। वह पापी चोर श्येन पक्षीके समान वारिषेणके चरणोंमें, अपने उस चन्द्रहास हारको फेंककर, किसी सिद्ध हुए क्लेशके समान अदृश्य होकर ठहर गया। राजसेवकोंने हारको देखा और उसे लेकर वे राजाके पास गये। उन्होंने राजाको सब वृत्तान्त सुना दिया। उनकी बात सुनकर राजाने अपना सिर हिलाया और अपने भटोंको यह कहकर भेजा, कि तुम जाकर वारिषेणका सिर काट डालो। दुष्ट पुत्रसे क्या लाभ? कुत्सित शास्त्रके सुननेसे क्या हित होता है? राजाकी वाणी सुनकर वे किंकर हाथमें खड्ग लेकर तत्काल उस स्थानपर पहुँचे जहाँ शुद्ध भावनाओंसे युक्त वारिषेण ध्यानमग्न था। भटोंने उसे चारों ओरसे घेरकर ऐसा झकझोरा जैसे समुद्र तटपर जलकी कल्लोलोंसे पर्वत ॥२॥

३

जाइँ जाइँ पहरणइँ सरोसहिं ।
मुक्कइँ रायाएसें दासहिं ॥
ताइँ ताइँ होइवि सयमत्तइँ ।
धम्म-फलेण धरायलु पत्तइँ ॥
पुणु असि-लट्ठि पमेल्लिय कंठहो ।
विज्जु व मेहहिं गिरि-उवकंठहो ॥
सा वि माल संजाय सुहिल्लिय ।
नं तव-वहुए सयंवरि घल्लिय ॥
तहिं अवसरि नहि दुंदुहि वज्जिय ।
एवि सुरेहिं तासु पय पुज्जिय ॥
तं सुणेवि किय-पउर-पवेसाएँ ।
गंपि पुत्तु मन्नाविउ राएँ ॥
अच्छिउ तो वि नेव कुल-मंडणु ।
जाउ महा-रिसि कोह-विहंडणु ॥
एक्कहिँ वासरि पालिय-दिक्खहे ।
गासु पलासखेडु गउ भिक्खहे ॥
तत्थ फुप्फ-डालेण नियच्छिउ ।
बाल-सहाएँ एंतु पडिच्छिउ ॥
भुंजाविवि बोलाविउ मुणिवरु ।
निग्गउ पिय पुच्छेप्पिणु दियवरु ॥
रम्म-पएस-सयाइँ कहंतउ ।
गउ दूरंतहो पय पणवंतउ ॥
तो वि नियत्तहे भणइ न संजउ ।
गय वेण्णि वि जण जहिं रिसि-आसउ ॥
घत्ता—केण वि तहिं वुत्तु वक्करेण गुण-मणि-खणिहे ।
तवचरणहो आउ सहयरु वारिसेण-मुणिहे ॥३॥

४

तं सुणेवि लज्जए पव्वइयउ ।
अच्छिउ रइ-संभरणें लइयउ ॥
बारह वरिसइँ महि विहरंतउ ।
समवसरणु स-मित्तु संपत्तउ ॥

३

देवों द्वारा वारिषेणकी रक्षा। राजाके मनानेपर भी मुनि-दीक्षा एवं पलाससेड़ ग्राममें आहार-ग्रहण

राजाके आदेशानुसार उसके दासोंने रोषपूर्वक जो-जो अस्त्र-शस्त्र छोड़े वे सभी वारिषेणके धर्मफलसे कमलपुष्प होकर धरातल पर गिरे। तब राज-पुरुषों ने उसके कण्ठ पर खड्गसे प्रहार किया, जैसे मेघपर्वतकी उपकण्ठ भूमिपर बिजलीका प्रहार हुआ हो। किन्तु वह खड्ग भी सुखदायी पुष्पमाला बनकर उसके कण्ठपर ऐसा गिरा जैसे मानो तपरूपी वधूने उनके गलेमें स्वयंवर-माला अर्पित की हो। उस अवसरपर आकाशमें दुन्दुभी बजी और देवोंने आकर उनके चरणोंकी पूजा की। इस अतिशयका वृत्तान्त सुनकर राजाको बहुत खेद हुआ और उसने स्वयं जाकर अपने पुत्रको मनाया। किन्तु इसपर भी वे कुलभूषण वारिषेण घरमें न रहे। वे क्रोधके विनाशक महाऋषि बन गये।

अपनी दीक्षाके व्रतोंका पालन करते हुए, एक दिन वारिषेण मुनि भिक्षाके लिए पलाससेड़ नामक ग्राममें गये। वहाँ उनका बालकपनका साथी पुष्पडाल नामक ब्राह्मण रहता था। उसने जब वारिषेणको गाँवमें आते देखा तो उन्हें आमन्त्रित किया और आहार कराया। वह मुनिवर-के मुखसे कुछ बुलवाना चाहता था, अतएव अपनी भार्यासे पूछकर मुनिके साथ ग्रामसे चला गया। वह सैकड़ों रम्य प्रदेशोंका वर्णन करता जाता था। बहुत दूर तक चले जानेपर उसने मुनिके चरणोंमें प्रणाम किया, किन्तु इसपर भी उन संयमी मुनिने उसे लौट जानेको नहीं कहा, और वे दोनों जन उस स्थानपर पहुँच गये जहाँ ऋषि-आश्रम था। वहाँ किसी एकने व्यंगात्मक वाणीमें कहा, देखो, इस गुणरूपी मणियोंके खान वारिषेण मुनिका एक सहचर तपश्चरणकी दीक्षा लेने यहाँ आया है ॥३॥

४

पुष्पडाल ब्राह्मणकी दीक्षा, मोहोत्पत्ति और उसका निवारण

पूर्वोक्त बात सुनकर वह ब्राह्मण लज्जित हुआ और उसने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। तथापि उसे अपनी गृहस्थीके भोगविलासका स्मरण बना रहता था। उसने अपने मित्रके साथ बारह वर्ष तक विहार किया और

तत्थ नवेप्पिणु वीर-जिणिंदहो ।
बे वि वइट्ठ मज्झि मुणि-विंदहो ॥
धम्माहम्मु सुहासुह-संगमु ।
अप्पणांचियत्-तव-कय णिग्गमु ॥
अंतहँ ताहँ लथा-हर-मंडवि ।
गायउ केण वि सुर-यण-संडवि ॥
"मइल कुचेली दुम्मणा नाहें पवसिएण ।
किम जीवेसइ धणिय घर उज्झंती विरहेण ॥"
सुणवि एउ दिय-मुणि मणि सल्लिउ ।
पियहे पासु निय-गामहो चल्लिउ ॥
चलमणु परियाणेप्पिणु धुत्तें ।
निउ निय-नयरहो भोलिवि मित्तें ॥
पुणु स-मित्तु एंतु पेक्खेप्पिणु ।
सहसा अब्भुट्ठाणु करेप्पिणु ॥
नविवि परिक्खा-हेउ रवण्णइँ ।
चेल्लणाए आसणइँ विइण्णइँ ॥
वीरायासणम्मि वइसेप्पिणु ।
निय-अंतेउर कोक्कावेप्पिणु ॥
लइ लइ एयउ मित्त स-रज्जउ ।
भणिउ वारिसेणेण मणोज्जउ ॥
किं मणु एक्कए ताए निहीणए ।
बंभणीए दोगच्चें खीणए ॥
तं निसुणेवि सुट्ठु सो लज्जिउ ।
दिढ-मणु दु-प्परिणाम-विवज्जिउ ॥
तहो दिवसहो लग्गिवि संजायउ ।
गुरु-आलोयण-तित्थें पहायउ ॥

घत्ता—अवरेण वि एव चल-चित्तहो दुक्किय-हरणु ।
कायव्वु अवस्स पवर-पवित्तिहिं ठिदिकरणु ॥४॥

इय वीरजिणिंदचरिए सेणिय-सुय-वारिसेण-जोय-साहणं
णाम दहमो संधि ॥१०॥

(श्रीचन्द्रकृत कहाकोसु संधि ३ से संकलित)

तत्पश्चात् वे भगवान् महावीरके समवशरणमें जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने वीर जिनेन्द्रको नमन किया और दोनों जन मुनिवृन्दके बीच जा बैठे। उन्होंने वहाँ धर्मके द्वारा शुभकर्म और अधर्मके द्वारा अशुभ कर्मके आगमनका उपदेश सुना और तत्पश्चात् वे वहाँसे बाहर निकल आये। जब वे जा रहे थे, तब एक स्थानपर लतागृह-मण्डपमें देवगणोंके ताण्डव नृत्यके साथ किसीके द्वारा गाया हुआ एक गीत सुनाई पड़ा जो इस प्रकार था – अपने पतिके प्रवासमें जानेपर उसकी मैली-कुचैली उदासमन पत्नी विरहसे जलती हुई कैसे जीवित रह सकती है? यह गीत सुनकर उस द्विज-मुनिके मनमें शूल उत्पन्न हुआ और वह अपनी प्रियाके पास पहुँचनेके लिए अपने ग्रामकी ओर चल पड़ा। उसको विचलित मन हुआ जानकर उसका चतुर मित्र भुलावा देकर उसे अपने नगरकी ओर ले गया। अपने पुत्रको मित्र सहित आते देख रानी चेलना ने अकस्मात् उठकर उनका स्वागत किया, नमन किया और परीक्षा-हेतु, उन्हें रमणीय आसन बैठनेको दिये। किन्तु वारिषेण त्यागियोंके योग्य आसनपर ही बैठे। फिर उन्होंने अपने अन्तःपुरकी स्त्रियोंको बुलवाया और कहा— हे मित्र, इनमें जो तुम्हें मनोज्ञ दिखाई दें, उन्हें राज्य-सहित ग्रहण कर लो। भला बतलाओ, इनके आगे उस एकमात्र दीन-हीन तथा दुर्गतिसे क्षीण ब्राह्मणीसे क्या लाभ? वारिषेणकी यह बात सुनकर वह ब्राह्मण बहुत लज्जित हुआ। उसने अपने मनकी दुर्भावनाओंको छोड़ दिया और वह धर्ममें दृढ़मन हो गया। उस दिनसे लेकर वह सच्चा संयमी बन गया और उसने अपनी पाप-भावनाकी आलोचनारूपी तीर्थमें स्नान कर लिया।

इसी प्रकार दूसरोंके द्वारा भी जिसका मन धर्मसे चलायमान हो, उसका अवश्य ही उत्तम उक्तियों और उदाहरणोंसे पाप विनाशक स्थितिकरण करना चाहिए।

इति श्रेणिकपुत्र वारिषेणकी योगसाधना विषयक
दशवीं सन्धि समाप्त ॥सन्धि १०॥

संधि ११

सेणिय-सुय-गयकुमार-दिक्खा

१

पेच्छइ जिणिंद-धम्महो पहाउ ।
तित्थियहँ वि पुणु लहुयारें जाइ ॥
अट्ठारह-जल-निहि-जीवियंति ।
पुरे रायगेहि मगहा-जणंते ॥
धणसिरियहे सेणिय-निय-धणाहे ।
अवइन्नु उयरे नव-जोव्वणाहे ॥
सिविणंतरे देविए दिट्ठु नाउ ।
पंचमए मासे डोहलउ जाउ ॥
पुरि परियणेण सहुँ रइय-सोहे ।
आरूहवि दुरए चल-महुयरोहे ॥
वरिसंते विमले जले दुद्दिणम्मि ।
मह-उच्छवेण गंपिणु वणम्मि ॥
कीलेवए अत्थि पियाणुराउ ।
चिंताविउ तं णिसुणेवि राउ ॥
सो अभयकुमारें चारू-चित्तु ।
पूरविउ सरेप्पिणु खयरु मित्तु ॥
सोहण-दिणे जण-मण-जणिय-हरिसु ।
उप्पन्नउ धन्नउ पुन्न-पुरिसु ॥
सिविणए गउ देविए दिट्ठु जेण ।
किउ गयकुमारु तहो नामु तेण ॥

घत्ता—वड्ढिउ जाउ जुवाणउ सयल-कला-कुसलु ।
मयणु व रूवें जिणेसर-पाय-पोम-भसलु ॥१॥

सन्धि ११

श्रेणिक-पुत्र गजकुमारकी दीक्षा

१

श्रेणिक-पत्नी धनश्रीका गर्भधारण, दोहला तथा गजकुमारका जन्म

जैनधर्मके इस प्रभावको देखिए कि एक तिर्यंच भी सहस्रार स्वर्गमें देव हुआ। वहाँ अपनी अठारह सागरोपम आयुके पश्चात् वह मगध देशके राजगृह नगरमें श्रेणिक राजाकी नवयौवना पत्नी धनश्रीके उदरमें अवतीर्ण हुआ। रानीने अपने स्वप्न में एक नाग (हस्ती) देखा और तदनुसार ही गर्भके पाँचवें मासमें उसे एक दोहला उत्पन्न हुआ। उसकी इच्छा हुई कि पुरीके परिजनों सहित शोभायमान व भ्रमरसमूहोंसे युक्त हाथी-पर आरूढ़ होकर जब आकाश मेघाच्छादित हो और शुद्ध जलवृष्टि हो रही हो, तब महान् उत्सवके साथ वनमें जाकर क्रीडा की जाये। अपनी प्रियपत्नीकी यह इच्छा जानकर प्रियानुरागी राजा श्रेणिक चिन्तित हो उठे। किन्तु इस दोहलेकी पूर्ति अभयकुमारने अपने सद्भावपूर्ण विद्याधर मित्रके स्मरणसे की। तत्पश्चात् एक शुभ दिन वह धन्य पुण्यशाली पुरुष उत्पन्न हुआ, जिसने सब लोगोंकी मनःस्थितिमें हर्ष उत्पन्न कर दिया। देवीने अपने स्वप्नमें एक गजको देखा था, अतएव उनके उस पुत्रका नाम गजकुमार रखा गया। बढ़ते-बढ़ते गजपुत्र यौवनको प्राप्त हो गये। वे समस्त कलाओंमें कुशल, मदनके समान सुरूप तथा जिनेश्वरके चरण-कमलोंके भ्रमर समान सेवक हुए ॥१॥

२

एक्कहिं वासरि वीरु जिणेसरु ।
आगउ गउ तं नवहुँ नरेसरु ॥
आयन्नेवि धम्मु वित्थारें ।
लइय दिक्ख तहिं तेण कुमारें ॥
संचरंतु आणइ तित्थयरहो ।
गउ कलिंग-विसयहो दंतिउरहो ॥
पच्छिम-दिसिहे दियंवर-सारउ ।
गयकुमारु गिरि-सिहरे भडारउ ॥
थिउ आयावणे जोय-निरोहें ।
पणविउ गंपिणु भव्व-नरोहें ॥
तन्नयराहिवेण णर-सीहें ।
विसम-वइरि-दाणव-नरसीहें ॥
तिव्वायउ विसहंतु नियच्छिउ ।
बुद्धदासु सिय-मंति पपुच्छिउ ॥
संघहि काहुँ एउ एमच्छइ ।
ता पच्चुत्तरु पिसुणु पयच्छइ ॥

घत्ता—एहु अणाहु समीरे सुट्ठु कयत्थियउ ।
तेणत्थच्छइ सामि तिव्वायवे थियउ ॥२॥

३

पुच्छिउ पुणु वि णरिंदें आयहो ।
फिट्टइ केम पहंजणु कायहो ॥
भणिउ अमच्चें एत्तिउ किज्जइ ।
एयहो सिल तावेप्पिणु दिज्जइ ॥
ता पुहईसें सो जे पउत्तउ ।
कारावहि पडियारु निरुत्तउ ॥
तेण वि पावियं-रायाएसें ।
सिल तावावेवि मुक्क विसेसें ॥
एत्तहे चरिय करेवि नियत्तउ ।
तत्थारूढउ चारु-चरित्तउ ॥

२

गजकुमारकी दीक्षा, दन्तीपुरकी यात्रा तथा वहाँ पर्वतपर आतापन योग

एक दिन वहाँ वीर जिनेन्द्रका आगमन हुआ। उनको नमन करनेके लिए राजा श्रेणिक उनके पास गये, उस अवसरपर विस्तारपूर्वक धर्मोपदेशका श्रवण करके गजकुमारने वहीं दीक्षा ले ली। वे फिर तीर्थंकरकी आज्ञानुसार विचरण करते हुए कलिंग देशके दन्तीपुर नामक नगरमें पहुँचे। नगरकी पश्चिम दिशामें पर्वतके शिखरपर वे श्रेष्ठ और पूज्य दिगम्बर मुनि गजकुमार योग-निरोध करके आतापन योगमें स्थित हो गये। भव्यजनोंने जाकर उन्हें प्रणाम किया। उस नगरके राजा नरसिंह, जो अपने वैरीरूपी दानवोंके लिए नरसिंह थे, ने गजकुमार मुनिको तीव्र आताप सहते हुए देखा और अपने मन्त्री शुद्धदाससे पूछा कि इस मुनि-संघमें यह एक मुनि इस प्रकार क्यों आताप सह रहा है? इसपर उस दुष्ट मन्त्रीने उत्तर दिया—यह बेचारा अनाथ वातरोगसे अत्यन्त पीड़ित हो गया है और इसलिए वह इस तीव्र सूर्यकी गर्मीमें स्थित है ॥२॥

३

शिला-तापनसे उपसर्ग, गजकुमारका मोक्ष और राजा तथा मन्त्रीका जैनधर्म-ग्रहण

मन्त्रीकी यह बात सुनकर राजाने उससे पूछा कि मुनिके शरीरका यह वातरोग किस प्रकार मिटाया जा सकता है? अमात्यने कहा—महाराज, ऐसा करना चाहिए कि इनके बैठनेकी शिलाको तप्तायमान कर दिया जाये। तब इसपर राजाने मन्त्रीसे कहा कि तुरन्त मुनिके रोगका यह प्रतिकार करा दो। मन्त्रीने भी राजाका आदेश पाकर उस शिलाको खूब अग्नि द्वारा तापित कराके छोड़ दिया। इधर जब गजकुमार मुनि नगरमें आहारनिमित्त चर्या करके लौटे तब वे शुद्ध चारित्रवान् उसी तपी

सो उवसग्गु सहेप्पिणु धीरउ ।
गउ मोक्खहो जायउ अ-सरीरउ ॥
देवागमणु निएवि उवसंतउ ।
जायउ बुद्धदासु जिण-भत्तउ ॥
नरसीहु वि नरपालहो पुत्तहो ।
रज्जु समप्पेवि गुण-गण-जुत्तहो ॥
राय-सहासें सहुँ पव्वइयउ ।
हुयउ पसिद्धु तवम्मि अइसइयउ ॥

घत्ता—सिरिचंदुज्जल-कायउ देव-निकाय-थुउ ।
जायउ गेवज्जामरु कालें कलुस-चुउ ॥३॥

इय वीरजिणिंदचरिए सेणियसुय-गयकुमार-दिक्खा-वण्णणो
णाम एयदहमो संधि ॥ ११ ॥

(श्रीचन्द्रकृत कहाकोसु ४९ से संकलित)

हुई शिलापर आसीन हो गये। उस उपसर्गको धैर्यके साथ सहन करके वे मोक्षगामी और अशरीरी सिद्ध हो गये। उस समय उनके निर्वाण-उत्सवके लिए जो देवोंका आगमन हुआ, उसे देखकर बुद्धदास मन्त्रीके मनमें भी उपशम भाव उत्पन्न हो गया और वह जिन भगवान्‌का भक्त हो गया। राजा नरसिंह भी अपने गुणशाली पुत्र नरपालको राज्य समर्पित करके अन्य एक सहस्र राजाओंके साथ प्रव्रजित हो गये, और वे अपनी तपस्या द्वारा अत्यन्त प्रसिद्ध हुए। वे चन्द्रके समान उज्ज्वल-काय होते हुए, देवसमूहों द्वारा प्रशंसित होते हुए, यथासमय पापोंसे मुक्त होकर, ग्रैवेयक स्वर्गमें देव हुए ॥३॥

इति श्रेणिकसुत गजकुमारकी दीक्षा विषयक ग्यारहवीं सन्धि समाप्त ॥ सन्धि ११ ॥

संधि १२

तित्थंकर-देसणा

१

कय-पंजलि-यरु पणमंत-सिरु
भत्ति-हरिस-वियसिय-वयणु ।
संसार-दुक्ख-णिव्वेइयउ
जोयवि मिलियउ भव्व-यणु ॥
ता णिग्गंत-धीर-दिव्व-ज्झुणि-
तोसिय-फणि-णरामरो ।
जीवाजीव-णाम-कय-भेयहँ
तच्चहँ कहइ जिणवरो ॥
स-भवाभव जीव दुभेय होंति ।
ते स-भव स-कम्में परिणमंति ॥
चउरासी-जोणिहि परिभमंति ।
अण्णण्ण-देह-राएं रमंति ॥
वियलिंदिय सयलिंदिय अणेय ।
एकिंदिय भासिय पंच-भेय ॥
आहार-सरीरिंदिय-मणाहँ ।
आणा-भासा-परमाणुयाहँ ॥
जं कारणु णिव्वत्तण-समत्थु ।
तं पज्जत्ति-त्ति भणंति एत्थु ॥
तं लब्भिहु परमेसें पत्तु ।
अहमेण ठाइ अंतोमुहुत्तु ॥
जिह णारएसु तिह सुर-वरेसु ।
दस-वरिस-सहासहँ वसइ तेसु ॥
परमें ति-तीस सायर-समाइँ ।
मणुएसु तिण्णि पलिओवमाइँ ॥

सन्धि १२

तीर्थंकरका धर्मोपदेश

१

भव्योंकी प्रार्थनापर जिनेन्द्रका उपदेश—जीवोंके भेद-प्रभेद

जब जिनेश्वर भगवान्‌ने भव्यजनोंको हाथ जोड़, सिरसे प्रणाम करते हुए, भक्तिपूर्वक हर्षसे प्रफुल्ल-मुख तथा संसारके दुःखोंसे उद्विग्न होकर वहाँ एकत्र होते देखा, तब उन्होंने अपने मुखसे निकलती हुई धीर और दिव्य ध्वनिसे नागों, मनुष्यों और देवोंको सन्तुष्ट करते हुए तत्त्वोंके स्वरूपका वर्णन किया। उन्होंने कहा कि संसारके समस्त तत्त्व मुख्यतः दो भागोंमें बाँटे जा सकते हैं। एक जीव और दूसरा अजीव। जीव पुनः दो प्रकारके हैं—सभव अर्थात् संसारमें भ्रमण करनेवाले, और दूसरे अभव अर्थात् मुक्त जीव जो निर्वाणको प्राप्त हो गये हैं और जिनको अब पुनर्जन्म-मरणकी बाधा नहीं रही। जो वे संसारी जीव हैं, वे अपने-अपने कर्मानुसार परिणमन कर रहे हैं। वे जीवोंकी चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमण कर रहे हैं, और अन्य-अन्य शरीर धारण करके उन्हींके अनुरागमें रमण करते हैं। इन्द्रियोंकी अपेक्षा जीव तीन प्रकारके हैं—एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और सकलेन्द्रिय। इनमें एकेन्द्रियके पुनः पाँच भेद कहे गये हैं जिनका आगे वर्णन किया जायेगा। इन सभी प्रकारके जीवोंके आहार, शरीर, इन्द्रिय, आनप्राण, भाषा और मनरूप परमाणुओंकी विशिष्ट रचना करनेका जो सामर्थ्य है उसे पर्याप्ति कहा जाता है। यह पर्याप्ति आहार आदि उक्त भेदोंके अनुसार छह प्रकारकी कही गयी है। जीवकी एक भवमें कमसे कम आयु-स्थिति अन्तर्मुहूर्त अर्थात् एक मुहूर्तकालके भीतर है। किन्तु नारकीय जीवों तथा देवोंकी जघन्य आयु दस सहस्र वर्षकी तथा उत्कृष्ट आयु तेतीस सागरोपम कालकी कही गयी है। मनुष्योंकी उत्कृष्ट आयु तीन

एइंदिएसु चत्तारि होंति ।
वियलिंदिएसु पंच जि कहंति ॥
ता जाम असण्णिउ पंच-करणु ।
सण्णिउ पज्जत्ती-छक्क-धरणु ॥
एयहिं जे पज्जप्पंति णेय ।
ते जंति अपज्जत्ता अणेय ॥
पज्जप्पंतहु लग्गइ खणालु ।
जगि सव्वहं भिण्णमुहुत्तु कालु ॥

घत्ता—ओरालिउ तिरियहुँ माणवहुँ
सुर-णारयहुँ विउव्वियउ ।
आहार-अंगु कायु वि मुणिहि
कम्मु तेउ सयलहँ वि थिउ ॥१॥

२

तिरिय हवंति दुविह तस थावर
थावर पंच-भेयया ।
पुहवी आउ तेउ वाऊ वि य
बहु-विह हरिय-कायया ॥
कसिणारुण हरिय सु-पीयलिय
पंडुर अवर वि धूसरिय ।
एही महि-कायहुँ मउय महि
पंच-वण्ण महँ वज्जरिय ॥

पल्योपमकालकी, एकेन्द्रिय जीवोंकी चार पल्योपम तथा विकलेन्द्रिय जीवोंकी पाँच पल्योपम कही गयी है। पूर्वोक्त आहारादि छह पर्याप्तियोंमें असंज्ञी जीवोंके प्रथम पाँच अर्थात् आहार, शरीर, इन्द्रिय, आनप्राण और भाषा ये पाँच पर्याप्तियाँ होती हैं। उनके मन नहीं होता। किन्तु संज्ञी जीवोंके मन भी होता है और इस प्रकार उनके सभी छह पर्याप्तियाँ होती हैं। जीवके नये जन्म धारण करते समय जबतक उनके ये पर्याप्तियाँ पूरी नहीं होतीं, अर्थात् वे आहारादि ग्रहण करके पूर्ण शरीर व इन्द्रियाँ धारण करने तथा श्वासोच्छ्वास करने व शब्दोच्चारण करनेकी योग्यता प्राप्त नहीं कर लेते, तबतक वे अपर्याप्त कहलाते हैं। अनेक जीव ऐसे भी होते हैं जो अपनी अपर्याप्त अवस्थामें ही जन्म-मरण करते रहते हैं। ऐसे जीव लब्ध्यपर्याप्त कहलाते हैं। पर्याप्त जीवोंको अपनी पर्याप्तियाँ पूर्ण करनेमें कमसे कम एक क्षण तथा अधिकसे अधिक भिन्न-मुहूर्त अर्थात् एक मुहूर्तके लगभग समय लगता है। संसारी जीवोंके शरीर पाँच प्रकारके होते हैं—औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, कार्मण और तैजस। इनमें से तिर्यंच और मनुष्योंके स्थूल शरीर औदारिक कहलाते हैं। देवों और नारकी जीवोंके शरीर ऐसे स्थूल नहीं होते कि वे इच्छानुसार बदल न सकें। उनके ये शरीर वैक्रियिक कहलाते हैं। आहार शरीर केवल कुछ विशेष ऋद्धिधारी मुनियोंके ही होता है जिसके द्वारा वे अन्य क्षेत्रमें जाकर विशेष ज्ञानियोंसे अपनी शंकाओंका निवारण करते हैं। कार्मण और तैजस शरीर सभी संसारी जीवोंके सदैव ही बने रहते हैं। कार्मण शरीरमें उनके कर्म-संस्कार उपस्थित रहते हैं और तैजस शरीर द्वारा उनके अन्य शरीरोंसे मेल बना रहता है ॥१॥

२

एकेन्द्रियादि जीवोंके प्रकार

तिर्यंच जीव दो प्रकारके होते हैं—त्रस और स्थावर। इनमें से स्थावर जीवोंके पाँच भेद हैं—पृथ्वी-कायिक, जल-कायिक, अग्नि-कायिक, वायु-कायिक तथा नाना प्रकारके हरित वनस्पति-कायिक। पृथ्वी-कायिक जीव वे होते हैं, जिनका शरीर काला, लाल, हरित, पीला, श्वेत अथवा धूसरवर्ण ही होता है, और इस कारण इन पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय जीवोंके ये ही पाँच वर्ण कहे गये हैं। ये मृदुल, पृथ्वीकायिक जीव होते हैं।

कंचण तउय तंब मणि रुप्पय
खर-पुहई पयासिया ।
वारुणि-खीर-खार-घय-महु-सम
जल-जाई वि भासिया ॥
दूरहु दरिसाविय-धूम-मलिणु ।
अरणी तडि वडि दीवि जोइ जलणु ॥
उक्कलि मंडलि गुंजा-णिणाउ ।
दिस-विदिसा-भेएं भिण्णु वाउ ॥
गुच्छेसु गुम्म-वल्ली-तणेसु ।
पव्वेसु रुक्ख-साहा-घणेसु ॥
सु-पसिद्धु वणासइ-काउ एसु ।
उप्पज्जइ जह घोसइ जईसु ॥
पज्जत्तेयर सुहुमेयरा वि ।
दुम साहारण पत्तेय के वि ॥
साहारणाहँ साहारणाइँ ।
आणापाणाइँ आहारणाइँ ॥
पत्तेयहुँ पत्तेयइँ गयाइँ ।
छिंदण-भिंदण-णिहणं गयाइँ ॥
तुंदाहि-कुक्खि-किमि खुल्ल संख ।
बी-इंदिय महि भासिय असंख ॥
ती-इंदिय गोमि-पिपीलियाइँ ।
चउरिंदिय मच्छिय-महुयराइँ ॥
घत्ता—परिवाडिए किं पि णाण-मवणु
एयहँ जुत्तिइ साचडइ ।
रसु गंधु णयणु फासहु उवरि ।
एक्केक्कउ इंदिउ चडइ ॥२॥

३

पज्जत्तीउ पंच कम-संठिय
छह सत्तहु भाणया ।
तेसिं होंति एम पभणंति
महा-मुणि विमल-णाणया ॥

सुवर्ण, ताँबा, त्रिपुष् अर्थात् शीशा, मणि और चाँदी, ये खर पृथ्वीकायिक कहे गये हैं। जलकायिक जीवोंका शरीर वारुणि अर्थात् मद्य, क्षीर, क्षार, घृत, मधु और जल आदि रूप कहा गया है। अग्निकायिक वे होते हैं जो दूरसे ही अपना स्वरूप धूम्रसे मलिन हुआ दिखलाते हैं, अथवा जो वज्र, विद्युत्, रवि, मणि व ज्वालारूप ज्योतिर्मय होते हैं। दिशाओं और विदिशाओंमें जो उत्कलि (झंझावात), मण्डली (चक्रवात) अथवा गुंजा-निनाद स्वरूप वायु बहती है वह वायुकाय है। वनस्पतिकायिक जीव सुप्रसिद्ध ही हैं जो गुच्छोंमें, गुल्मोंमें, वल्लियोंमें और तृणोंमें, पर्वोंमें तथा वृक्षोंकी सघन शाखाओंमें उत्पन्न होते हैं, ऐसा यतीश्वरने कहा है।

वृक्षरूप वनस्पतिकाय जीव पर्याप्त भी होते हैं, और अपर्याप्त भी; सूक्ष्म भी होते हैं और बादर अर्थात् स्थूल भी, और साधारण भी होते हैं एवं प्रत्येक भी। साधारण जीव वे होते हैं, जिनका श्वासोच्छ्वास और आहार साधारण अर्थात् एक साथ ही होता है। प्रत्येक वनस्पति जीव वे होते हैं जो एक-एक वृक्षमें एक-एक रूपसे रहते हैं तथा जो छेदन और भेदन क्रियाओंसे मृत्युको प्राप्त हो जाते हैं।

द्वीन्द्रियजीव तुन्दाधि अर्थात् पेटके कीटाणु कुक्षिकृमि व क्षुब्ध (पानी में डूबे हुए) शंख आदि असंख्य भेदरूप कहे गये हैं। गोमी और पिपीलिका अर्थात् चींटियाँ आदि त्रीन्द्रिय एवं माखी और भ्रमर आदि चौइन्द्रिय जीव हैं। इन जीवोंमें क्रमशः एकेन्द्रियसे लेकर चार इन्द्रियों तककी ज्ञानेन्द्रियाँ होती हैं, अर्थात् एकेन्द्रिय जीवके स्पर्शमात्रकी एक ही इन्द्रिय होती है। द्वीन्द्रियोंमें स्पर्श और रस ये दो इन्द्रियाँ होती हैं। त्रीन्द्रियोंके स्पर्श, रस और गन्ध ये तीन इन्द्रियाँ तथा चतुरिन्द्रिय जीवोंके स्पर्श, रस, गन्ध और नेत्र ये चारों इन्द्रियाँ होती हैं ॥२॥

३

जीवोंके संज्ञी-असंज्ञी भेद व दश प्राण

उक्त प्रकारके एकसे लेकर चार इन्द्रियों तकके जीवोंमें क्रमशः तीन, चार और पाँच पर्याप्तियाँ होती हैं। अर्थात् एकेन्द्रियोंमें आहार, शरीर तथा स्पर्शेन्द्रिय; द्वीन्द्रियोंमें आहार, शरीर व प्रथम दो इन्द्रियाँ और आनप्राण ये चार पर्याप्तियाँ; त्रीन्द्रियोंमें आहार, शरीर, प्रथम तीन इन्द्रियाँ और आनप्राण ये चार पर्याप्तियाँ; तथा चतुरिन्द्रिय जीवोंमें आहार, शरीर, चार

पंचिंदिय सण्णि असण्णि दोण्णि ।
मण-वज्जिय जे ते धुवु असण्णि ।
सिक्खालावाहँ ण लेंति पाव ।
अण्णाण-गूढ-दढ-मूढ-भाव ॥
असु णव जि समत्तिउ पंच ताहँ ।
वज्जरइ जिणिंदु असण्णियाहँ ॥
छहिं पज्जत्तिहिं पज्जत्तएहिं ।
संकासण-लोयण सोत्तएहिं ॥
मण-वयण-काय-रस-घाणएहिं ।
आणापाणाउ अ प्राणएहिं ॥
दहहिं मि जियंति सण्णिय तिरिक्ख ।
अक्खमि णाणा-विह दु-ण्णिरिक्ख ॥
जलयर छसाइ पंच-प्पयार ।
कच्छव मयरोहर सुंसुयार ॥
गहयर समुग्ग फुड-विय-पक्ख ।
अण्णेक्क चम्म-घण-लोम-पक्ख ॥
थलयर चउपय चउविह अमेय ।
एक्क-खुर दु-खुर करि-सुणह-पाय ॥
उरसप्प महोरय अजगराइ ।
किं ताहँ गइंदु वि कवलु होइ ॥
भुय-सप्प वि चक्खाणिय सभेय ।
सरडुंदुर-गोधा-णामधेय ॥

घत्ता—जलयर जलेसु खग तरु-गिरिसु
थलयर गाम-पुरेसु वणे ।
दीवोयहि-मंडल-मज्झि तहिं
पढमु दीवु भासंति जणे ॥३॥

४

संसारिय जीव चउ-विह चउ-गइ-भिण्ण जिह ।
इंदिय-भेएण पंच-पयार पउत्त तिह ।

इन्द्रियाँ, आनप्राण और भाषा ये पाँच पर्याप्तियाँ होती हैं। इनके दश प्राणोंमेंसे क्रमशः छह, सात और आठ प्राण होते हैं। अर्थात् एकेन्द्रिय जीवोंके एक स्पर्श इन्द्रिय, एक कायबल, आनप्राण और आयु सहित रसना और वाक् मिलकर द्वीन्द्रियोंके छह प्राण हुए। इनमें घ्राण मिलनेसे त्रीन्द्रियके सात, तथा उनमें चक्षु मिलनेसे चतुरिन्द्रियके आठ प्राण हुए। ऐसा निर्मल-ज्ञानी महामुनि कहते हैं।

पंचेन्द्रिय जीवोंके दो भेद हैं, संज्ञी और असंज्ञी। जिनके मन नहीं होता वे निश्चय से असंज्ञी कहलाते हैं। वे अपने पापके फलस्वरूप शिक्षा व आलाप आदि ग्रहण नहीं कर सकते। वे निरन्तर अज्ञानमें गहरे डूबे रहते हैं। अज्ञानी जीवोंके जिनेन्द्र भगवान्ने दश प्राणोंमेंसे मनको छोड़कर शेष नौ प्राण तथा छह पर्याप्तियोंमेंसे मनपर्याप्तिको छोड़कर शेष पाँच पर्याप्तियाँ कही हैं। संज्ञी तिर्यंच जीव छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त होते हैं। वे स्पर्श, रस, घ्राण, नेत्र और श्रोत्र ये पाँचों इन्द्रियोंको धारण करते हैं तथा पाँच इन्द्रियों, मन, वचन और काय इन तीन बलों तथा आनप्राण और आयु इन दो सहित दशों प्राणोंसे युक्त होते हुए जीवित रहते हैं। अब मैं इनके नाना प्रकारोंका वर्णन करता हूँ जो सामान्यतया देखनेमें नहीं आते। जलचर झस आदि पाँच प्रकारके होते हैं जिनमें कच्छप, मकर और मकरापहर्ता शुंशुमार भी हैं। नभचर अनेक प्रकारके होते हैं। कुछ ऐसे होते हैं जिनके पंखे बड़े-बड़े और स्पष्टतया विलग होते हैं, तथा कुछके पंखे चर्मसे लगे हुए, सघन रोमों सहित होते हैं। थलचर चौपाए चार प्रकारके होते हैं। एक-खुर, दो-खुर, हस्तिपद और श्वानपद। इनके असंख्य भेद हैं। उरुसर्पी, महोरग, अजगर आदि इतने विशाल भी होते हैं कि वे हाथी-को भी निगल सकते हैं। भुजसर्पी भी सरड (छिपकली), उन्दुर (मूषक), गोधा (गोह) आदि नामधारी अनेक भेद कहे गये हैं। जलचर जीव जलमें रहते हैं, खग वृक्षों और पर्वतोंपर तथा थलचर ग्राम, पुर और वनमें रहते हैं। द्वीपों और समुद्रोंके वलयाकार मण्डल असंख्य हैं जिनका मध्यवर्ती प्रथमद्वीप जम्बूद्वीप कहा गया है ॥३॥

४

गति, इन्द्रिय आदि चतुर्दश जीव-मार्गणाएँ व गुणस्थान

(१) संसारी जीव मनुष्य, तिर्यंच, नारक और देव, इन चार गतियोंके अनुसार चार प्रकारके होते हैं। (२) स्पर्शादि पाँच इन्द्रियोंके भेदसे वे पाँच प्रकारके कहे गये हैं। (३) कायकी अपेक्षासे जीवोंके छह

काएं छव्विह चवल-थिरेण वि ।
तिविह तिविह-जोएं वेएण वि ॥

जलणिहि-विह वि कसाएं जाया ।
अट्ठ-भेय णाणें विण्णाया ॥

संजम-दंसणेण ति-चउ-विह ।
लेसा-परिमाणेण वि छ-विह ॥

भव्वत्तेण विविह सम्मत्तें ।
सण्णि असण्णी दो सण्णित्तें ॥

आहारें आहारिय जे अं ।
चउसु वि गइसु परिट्ठिय ते ते ॥

केवलि समुहय विग्गह-गइ गय ।
अरुह अजोइ सिद्ध परमप्पय ॥

ते ण लेंति आहारु वियारिय ।
सेस जीव जाणहि आहारिय ॥

मग्गण-ठाणहँ चोद्दह-भेयहँ ।
णिसुणहि गुणठाणाइँ मि एयहँ ॥

मिच्छादिट्ठि पहिल्लउ गीयउ ।
सासणु बीयउ मीसु वि तीयउ ॥

अविरय-सम्माइट्ठि चउत्थउ ।
पंचमु विरयाविरउ पसत्थउ ॥

भेद हैं—बादर और सूक्ष्म—एकेन्द्रिय तथा द्वीन्द्रिय आदि चार त्रस। (४) योगकी अपेक्षा वे तीन प्रकारके हैं—काययोगी, वचनयोगी और मनयोगी। (५) वेदकी अपेक्षा भी उनके तीन भेद हैं, पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसक। (६) कषायकी अपेक्षा वे क्रोधी, मानी, मायावी, और लोही ऐसे चार प्रकारके हैं। (७) ज्ञानकी अपेक्षा उनके आठ भेद हैं—मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी ये पाँच तथा कुमति, कुश्रुत, और कुअवधि ये तीन कुज्ञानी। (८) संयमकी दृष्टिसे जीवोंके तीन भेद हैं—संयमी, संयमासंयमी और असंयमी; अथवा सामायिक छेदोपस्थापना, सूक्ष्म-साम्पराय और यथाख्यात इन चार संयमोंकी दृष्टिसे वे चार प्रकारके हैं। (९) दर्शनकी दृष्टिसे क्षायिक, औपशमिक और क्षायोपशमिक ये तीन भेद हैं; अथवा चक्षु, अचक्षु, अवधि, और केवल ये चार दर्शन-रूप हैं। (१०) लेश्या भावके अनुसार उनके कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म और शुक्ल, ये छह भेद हैं। (११) भव्यत्वकी अपेक्षा जीवोंके दो भेद हैं, भव्य और अभव्य। (१२) सम्यक्त्वकी अपेक्षा भी उनके दो प्रकार हैं, उपशम-सम्यक्त्वी और क्षायिक-सम्यक्त्वी। (१३) संज्ञाकी अपेक्षा वे दो प्रकारके हैं, संज्ञी, और असंज्ञी। (१४) आहारकी अपेक्षा जीव दो प्रकारके होते हैं। संसारकी चारों गतियोंमें जो जीव हैं, वे सब आहारक हैं, किन्तु जो जीव केवलि-समुद्घात कर रहे हैं, विग्रह गतिमें हैं तथा जो अरहन्त, अयोगी व सिद्ध परमात्मा हो चुके हैं, वे आहार नहीं लेते अतएव वे अनाहारक हैं। शेष सभी जीवोंको आहारक जानना चाहिए। ये चौदह मार्गणा-स्थान हैं, क्योंकि इनके द्वारा नाना दृष्टियोंसे जीवोंके भेदोंको खोजा—समझा जाता है।

अब चौदह गुणस्थानों (आध्यात्मिक उन्नतिकी भूमिकाओं) को सुनिए। पहला गुणस्थान मिथ्यादृष्टियोंका है, जिसमें सम्यग्ज्ञानका सर्वथा अभाव होता है। सम्यग्ज्ञान प्राप्त कर वहाँसे मिथ्यात्वकी ओर गिरते हुए जीवोंका स्थान सासादन कहलाता है और वह दूसरा गुणस्थान है। तीसरा गुणस्थान सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके मिश्रणरूप होनेके कारण मिश्र गुणस्थान कहलाता है। चतुर्थ गुणस्थान ऐसे जीवोंका कहा गया है जिन्हें सम्यग्दृष्टि तो प्राप्त हो चुकी है, किन्तु विषयोंसे विरक्तिरूप संयम उत्पन्न नहीं हुआ है; अतएव यह गुणस्थान अविरत सम्यग्दृष्टि कहलाता है। पाँचवाँ गुणस्थान उन जीवोंका है, जो सम्यग्दृष्टि भी हैं और पूर्णरूपसे संयमी न होते हुए भी अणुव्रती अर्थात् श्रावक हैं; इसीलिए यह गुणस्थान

छट्ठउ पुणु पमत्त-संजम-धरु ।
सत्तमु अ-प्पमत्तु गुण-सुंदरु ॥

अट्ठमु होइ अउव्वु अउव्वउ ।
अणियट्टिल्लउ णवमु अ-गव्वउ ।

दहमउ सुहुम-राउ जाणिज्जइ ।
एयारहमुवसंतु भणिज्जइ ॥

बारहमउ पर-खीणकसायउ ।
तेरहमउ स-जोइ-जिणु जायउ ॥

उज्झिय-तिविह-सरीर-भरंतरु ।
उवरिल्लउ अजोइ परु अक्खरु ॥

घत्ता—णारय चत्तारि चत्तारि जि पुणु सुर-पवर ।
तिरियंच वि पंच णीसेसम्मि चउदंति णर ॥४॥

५

कम्म-विहम्ममाण स-सरीरा ।
सासय-करणुज्जय विवरेरा ॥
दंसण-णाण-सहाव-पहट्ठा ।
होंति जीव उक्किट्ठ-णिकिट्ठा ॥

विरताविरत नामसे भी जाना जाता है। छठा गुणस्थान उन संयमी मुनियोंका है, जिनमें महाव्रतोंका पालन होते हुए भी कुछ प्रमाद शेष रहता है; अतएव यह प्रमत्त-संयम गुणस्थान कहलाता है। सातवाँ गुणस्थान, सुन्दर गुणशाली अप्रमत्त-संयमी मुनियोंका है। अष्टम गुणस्थानमें मुनियोंके उत्तरोत्तर, अपूर्व भावशुद्धि होती जाती है; अतएव यह गुणस्थान अपूर्वकरण कहलाता है। नवम गुणस्थान अनिवृत्तिकरण है जहाँ मान कषायका अभाव होनेसे मुनिके नीचे गिरनेकी सम्भावना नहीं रहती। दशवाँ गुणस्थान सूक्ष्म-साम्पराय या सूक्ष्म-राग कहलाता है, क्योंकि यहाँ पहुँचनेपर मुनियोंकी कषायें अत्यन्त मन्द और सूक्ष्म हो जाती हैं। ग्यारहवाँ गुणस्थान उपशान्त-कषाय कहा गया है, क्योंकि यहाँ साधकके सभी कषायोंका उपशमन हो जाता है। बारहवाँ गुणस्थान क्षीण-कषाय है क्योंकि यहाँ कषायोका उपशमन मात्र नहीं, किन्तु आत्मप्रदेशोंमें उनका पूर्णतया क्षय हो जाता है। तेरहवाँ गुणस्थान सयोगि-जिन अथवा सयोगि-केवली कहलाता है, क्योंकि इस स्थानपर आत्माको केवलज्ञान प्राप्त हो जाता है, किन्तु शरीरका विनाश नहीं होता और इसलिए ये सयोगिकेवली धर्मका उपदेश भी करते और तीर्थंकर भी होते हैं। अन्तिम चौदहवाँ गुणस्थान उन अयोगि-केवली जीवोंका होता है जिन्होंने मन, वचन और काय इन तीन योगोंका परित्याग कर दिया है तथा औदारिक, तैजस और कार्मण इन तीनों शरीरोंके भारसे मुक्त होकर अक्षय पद प्राप्त कर लिया है, अर्थात् परमात्मा हो गये हैं।

जीवोंके आध्यात्मिक उत्कर्ष तथा क्रम-विकासकी दृष्टिसे जो ये चौदह गुणस्थान कहे गये हैं इनमेंसे नारकीय जीवोंके प्रथम चार ही गुणस्थान हो सकते हैं, और बड़े-बड़े देव भी वे ही चार गुणस्थान प्राप्त कर सकते हैं। तिर्यंच जीवोंके पाँच गुणस्थान भी हो सकते हैं, किन्तु प्रथमसे लेकर चौदहवें तक समस्त गुणस्थानोंमें तो केवल मनुष्य ही चढ़ सकते हैं ॥४॥

५

कर्मबन्ध व कर्मभेद-प्रभेद

संसारी जीव शरीरधारी होते हैं, और वे निरन्तर अपने कर्मोंसे पीड़ित रहते हैं। इनसे विपरीत जो मुक्तिप्राप्त जीव हैं, वे शाश्वत भावसे युक्त हैं और अपने दर्शन-ज्ञानरूपी स्वाभाविक सुख में तल्लीन रहते हैं। इस

ताहँ चेट्ठ जा होइ समासम ।
सा तदलिय-गहण-भावक्खम ॥
जेम तेल्लु सिहि-सिह-परिणामहु ।
तेम कम्म-पोग्गलु वि णिसामहु ॥
जीवें लइयउ जाइ जियन्तहु ।
तिव्व-कसाय-रसेहिं पमत्तहु ॥
जिह सिहि-भावहु ववइ इंधणु ।
तिह कम्मेण जि कम्महु बंधणु ॥
असुहें असुहु सुहें सुहु संधइ ।
सिद्ध-भडारउ किं पि ण बंधइ ॥
अभव जीव जिणणाहें इच्छिय ।
एक्कु ण ते वि अणंत णियच्छिय ॥
मइ-सु-ओहि-मणपज्जव केवल ।
णाणावरण-विमुक्क सु-णिक्कल ॥
णिद्दाणिद्दा पयलापयला ।
थीणगिद्धि णिद्दा पुणु पयला ॥
चक्खु-अचक्खु-दंसणावरणउ ।
अवहि केवल-दंसणवरणउ ॥
तेहिं विणासिउ णव-संखायउ ।
वेयणीय-दुगु सायासायउ ॥
दंसण-मोहणीउ सम्मत्तु वि ।
मिच्छत्तु वि सम्मा-मिच्छत्तु वि ॥
दुविहु चरित्त-मोहु विक्खायउ ।
णो-कसाउ णामेण कसायउ ॥
तं कसाय-जायउ सोलह-विहु ।
इयरु भणेसमि पच्छइ णव-विहु ॥
पढम-कसाय-चउक्कु सु-भीसणु ।
सत्तम-णरय-गामि दिट्ठि-दूसणु ॥

घत्ता—अइ-कोहु समाणु माया लोहु वि दुत्थयरु ।
उवसमहुँ ण जाइ जइ वि पबोहइ तित्थयरु ॥५॥

प्रकार जीव निकृष्ट और उत्कृष्ट होते हैं। जीवोंकी जैसी चेष्टा अर्थात् मन, वचन और काय की क्रिया सम व असम अर्थात् शुभ और अशुभ होती है, उसी प्रकार उनमें शुभ और अशुभ कर्मोंके ग्रहण करनेके नाना भेद होते हैं। जिस प्रकार दीपकमें जलता हुआ तेल अग्निकी शिखारूप परिवर्तित होता रहता है, उसी प्रकार कर्मरूपी पुद्गल परमाणु भी जीवों द्वारा ग्रहण किये जाते और तीव्र कषायरूपी रसोंके बलसे उस जीवमें प्रमत्तभाव उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार कर्मके द्वारा ही कर्मका बन्धन उसी प्रकार हुआ करता है, जैसे अग्निमें पड़ा हुआ ईंधन अग्नि-भावको प्राप्त हो जाता है। अशुभभावसे अशुभकर्मका तथा शुभभाव-से शुभकर्मका सन्धान होता है। परन्तु सिद्ध भगवान् किसी प्रकारका भी कर्मबन्ध नहीं करते। जिनेन्द्र मतके अनुसार अभव्य जीव एक नहीं हैं, वे अनन्त हैं। कर्म भी अनन्त रूप होते हैं, किन्तु विशेष रूपसे उन्हें आठ प्रकारका बतलाया गया है। पहला ज्ञानावरण कर्म है, जिसके पाँच भेद हैं—मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्यय ज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण। ये अपने-अपने नामानुसार पाँच प्रकारके ज्ञानों-का आवरण करते हैं, अर्थात् उन्हें ढक देते हैं। इन ज्ञानावरणोंसे सर्वथा विमुक्त तो अशरीरी सिद्ध भगवान् ही होते हैं। दर्शनावरणके नव भेद हैं—निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, निद्रा और प्रचला तथा चक्षु-दर्शनावरण, अचक्षु-दर्शनावरण, अवधि-दर्शनावरण और केवलदर्शना-वरण। इनसे स्पष्टतया उक्त निद्रा आदि शारीरिक दोष उत्पन्न होते हैं तथा चक्षु आदि दर्शनोंका आवरण होता है। तीसरा कर्म वेदनीय दो प्रकारका है—सातावेदनीय और असातावेदनीय। ये वेदनीय कर्मके दो प्रकार क्रमशः सुख व दुःखका अनुभवन कराते हैं। चौथा मोहनीय कर्म है और उसके मुख्यतया दो भेद हैं—दर्शन-मोहनीय और चारित्र-मोहनीय। दर्शन-मोहनीयके मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व ये तीन उपभेद हैं। चारित्र-मोहके प्रथमतः कषाय और नोकषाय ये दो भेद हैं। कषायके पहले चार मुख्य भेद और फिर उन चारोंके क्रमशः चार-चार भेद; इस प्रकार सोलह भेद हैं। और नोकषायके नौ भेद हैं जिन्हें आगे बतलाया जायेगा। चार मुख्य कषाय बड़े भीषण होते हैं। वे जीवके भावोंमें दूषण उत्पन्न करके उसे सप्तम नरक तक ले जाते हैं। ये कषाय हैं—क्रोध, मान, माया और लोभ। अपने कठोर रूपमें ये इतने दुष्कर होते हैं कि उनके रहते जीव उपशम भावको प्राप्त नहीं होता, भले ही

६

अवरु अ-पच्चक्खाणु गुरुक्कउ ।
पच्चक्खाणु चउक्कु विमुक्कउ ॥
संजलणु वि जलंतु उल्हाविउ
थी-पुं-संढ राउ उड्डाविउ ॥
भय-रइ-अरइ-दुगुंछउ जित्तउ ।
हासु वि सहुँ सोएण णिहित्तउ ॥
सुर णर णरय तिरिय चउ आउ वि ।
बायालीस-विहेयउ णाउ वि ॥
गइ-णामउ वि जाइ-णामु वि भणु ।
तणु-णामउ पुणु तणुहि णिबंधणु ॥
तणु-संघाउ तणुहि संठाणउ ।
तणु-अंगोवंगु णि णामाणउ ॥
तणु-संबडणु वण्ण-गंधिल्लउ ।
रस-णामउ अवरु वि फासिल्लउ ॥
आणुपुव्वि अगुरुलहु लक्खिउ ।
उवघाउ वि परघाउ वि अक्खिउ ॥
ऊसासु वि आदावुज्जोयउ ।
अण्णु विहायगइ वि तस-कायउ ॥
थावरु थूलु-सुहुमु पज्जत्तउ ।
अण्णु वि मणिउ अ-पज्जत्तउ ॥
पत्तेयंग-णाउ साहारणु ।
थिरु अथिरु वि सुह-णाउ स-कारणु ॥
असुहु सुभगु दुब्भगु सु-सरिल्लउ ।
दुस्सरु आदेज्जउ जगि भल्लउ ॥
णाउ अणादेज्जउ जसकित्ति वि ।
तित्थयरत्तु णिमिणु मलकित्ति वि ॥

स्वयं तीर्थंकर ही उसका सम्बोधन करें। यह कषायोंका अनन्तानुबन्धी स्वरूप है ॥५॥

६

कषायोंका स्वरूप तथा मोहनीय कर्मकी व अन्य कर्मोंकी उत्तर प्रकृतियाँ

कषायोंका दूसरा प्रकार अप्रत्याख्यान कहलाता है, जिसके होते हुए सम्यक्दर्शनकी प्राप्तिमें तो बाधा नहीं पड़ती, किन्तु व्रतोंके ग्रहण करनेकी वृत्ति उत्पन्न नहीं होती। कषायोंका तीसरा प्रकार प्रत्याख्यान है, जिसके सद्भावमें सम्यक्दर्शन तथा अणुव्रतोंका ग्रहण तो हो सकता है, किन्तु महाव्रतोंका पालन नहीं हो सकता। चौथा कषायभेद है संज्वलन, जिसके होते हुए जीव महाव्रती मुनि तो हो जाता है, तथापि वह सूक्ष्म रूपमें कषायोंको लिये हुए रहता है, जिसका स्वरूप दसवें सूक्ष्म-साम्पराय नामक गुणस्थानमें किया गया है। चारों कषायोंके तीव्रतासे उतरते हुए उनके मन्दतम रूपको दिखानेवाले ये चार प्रकार प्रत्येक कषायके होते हैं, और इस प्रकार उक्त चार कषायोंके सोलह भेद हो जाते हैं। ये सब कषाय सिद्ध भगवान्ने त्याग दिये हैं। अब आगे उन नौ नोकषायोंको कहते हैं, जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। ये हैं—स्त्रीवेद, पुंवेद तथा नपुंसकवेद रूप तीनों राग, भय, रति, अरति, जुगुप्सा, हास्य और शोक। इन्हें भी जिनभगवान्ने उड़ा दिया है, जीत लिया है व अपने अन्तरंगसे बाहर फेंक दिया है। इस प्रकार मोहनीय कर्मके समग्ररूपसे ये (४×४+९=२५) पच्चीस भेद हुए।

जीव कभी देवकी आयु बाँधता है, कभी नरक की, कभी मनुष्यकी और कभी तिर्यंच योनि की; इस प्रकार आयुकर्मके चार भेद हैं।

नामकर्मके बयालीस भेद हैं, जिनके नाम हैं १. गति, २. जाति, ३. शरीर, ४. निबन्धन, ५. शरीर-संघात, ६. शरीर-संस्थान, ७. शरीर-अंगोपांग, ८. शरीर-संहनन, ९. वर्ण, १०. गन्ध, ११. रस, १२. स्पर्श, १३. आनुपूर्वी, १४. अगुरुलघु, १५. उपघात, १६. परघात, १७. उच्छ्वास, १८. आताप, १९. उद्योत, २०. विहायोगति, २१. त्रसकाय, २२. स्थावरकाय, २३. बादरकाय, २४. सूक्ष्मकाय, २५. पर्याप्ति, २६. अपर्याप्ति, २७. प्रत्येक-शरीर, २८. साधारण-शरीर, २९. स्थिर, ३०. अस्थिर, ३१. शुभ, ३२. अशुभ, ३३. सुभग, ३४. दुर्भग, ३५. सुस्वर, ३६. दुस्वर,

घत्ता—चउ-गइ-जम्मेण गइ-णामउ अट्ठुद्ध-विहु ।
इंदियइँ गणेवि जाइ-णामु भणु पंच-विहु ॥६॥

७

हणिवि पंच णामइँ पंच-विहइँ ।
एक्कु ति-भेयउ दो दो दु-विहइँ ॥

दो छह पुणु दो चउ अट्ठ-विहइँ ।
उच्चारियइँ जाइँ एक्क-विहइँ ॥

५ समलामलइँ दोण्णि जगि गोत्तइँ ।
ताइँ मि जेहिं दूरि परिचत्तइँ ॥

दाण-भोय-उवभोय-णिवारउ ।
वीरिय-लाहु हेउ-संघारउ ॥

अंतराउ पंचविहु धुणेप्पिणु ।
१० अडयालीसउ सउ विहुणेप्पिणु ॥

३७. आदेय, ३८. अनादेय, ३९. यशस्कीर्ति, ४०. अयशस्कीर्ति, ४१. निर्वाण, और ४२. तीर्थंकरत्व। ये बयालीस प्रकारके नामकर्म हैं, जिनके द्वारा शरीरके, उनके नामानुसार, विविध प्रकारके गुण-धर्म उत्पन्न होते हैं। इनमें-से अनेकके कुछ उपभेद भी हैं, जैसे—गतिनाम कर्म, नरक, तिर्यक्, मनुष्य और देव, इन गतियोंके अनुसार चार प्रकारका है। एकेन्द्रिय आदि पाँच इन्द्रियों तकके भेदानुसार जातिनाम कर्मके पाँच भेद हैं ॥६॥

७

नाम, आयु, गोत्र व अन्तराय कर्मोंके भेद

औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मणके भेदसे शरीर नामकर्म पाँच प्रकारका है। इन पाँचों शरीरोंके अलग-अलग बन्धन होते हैं, जो शरीर-बन्धन नामकर्मसे उत्पन्न होते हैं। उन्हींके अनुसार उन शरीरोंके पाँच संघात होते हैं। शरीर-संस्थानके छह प्रकार हैं—सम-चतुरस्र, न्यग्रोधपरिमण्डल, स्वाति, कुब्ज, वामन और हुण्ड। शरीरांगोपांगके औदारिक, वैक्रियिक और आहारक ये तीन भेद हैं। शरीर-संहननके छह भेद हैं—वज्र-वृषभ-नाराच, नाराच-नाराच, नाराच, अर्ध-नाराच, कीलित और असंप्राप्तासृपाटिका। वर्ण पाँच हैं, कृष्ण, नील, रक्त, हरित और शुक्ल। सुगन्ध और दुर्गन्धके भेदसे गन्ध नामकर्म दो प्रकारका है। रस पाँच हैं—तिक्त, कटु, कषाय, अम्ल और मधुर। स्पर्शनामकर्मके आठ भेद हैं—कठोर, मृदु, गुरु, लघु, स्निग्ध, रूक्ष, शीत और उष्ण। नरक आदि चारों गतियोंके अनुसार आनुपूर्वी नामकर्म चार प्रकारका है। विहायोगतिके दो भेद हैं—प्रशस्त और अप्रशस्त। इन सब उपभेदोंको मिलाकर नामकर्मके तिरानबे भेद हो जाते हैं, जिनके अनुसार समस्त संसारी जीवोंके शरीरमें दिखाई देनेवाले नाना भेदोंका निर्माण होता है।

गोत्रकर्म दो प्रकारका होता है। समल अर्थात् पाप-प्रवृत्ति करानेवाला और अमल अर्थात् शुद्ध प्रवृत्ति करानेवाला। इन दोनोंको भी सिद्धात्माएँ दूर कर देती हैं। अन्तराय कर्मके पाँच भेद हैं—दानान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, वीर्यान्तराय और लाभान्तराय, जो उन-उन गुणोंकी प्राप्तिमें बाधक होते हैं। उक्त आठों कर्मोंकी उत्तर प्रकृतियोंको मिलानेसे वे सब एक सौ अड़तालीस हो जाती हैं। इन सबका

पयडिहिँ भाणवंगु मेल्लेप्पिणु ।
सुद्धसहाउ सुहंमु लहेप्पिणु ॥
जे गय जीव परम-णिव्वाणहु ।
दुक्ख-विमुक्कहु सासय-ठाणहु ॥
चरम-सरीर-भाय-तिहि-ऊणा ।
ववगय-रोय-सोय अविलीणा ॥
णिम्मल णिरुवम णिरहंकारा ।
जीव-दव्व-घण णाण-सरीरा ॥
उड्ढ-गमण-सहावेँ गंपिणु ।
उड्ढ-लोउ सयलु वि लंघेप्पिणु ॥
अट्ठम-पुहई-यहिं णिविट्ठा ।
अभव जीव जिणदेवेँ दिट्ठा ॥

घत्ता—ते साइ अणाइ दुविह अणंत जि विविह-दुहे ।
ते पुणु ण मरंति णउ पडंति संसारमुहे ॥७॥

८

णउ बाल णउ वुड्ढ णउ मुक्ख सुवियड्ढ ।
णीसाव णित्ताव णिग्गाव णिप्पाव ।
णाणंग णिम्मेह णिण्णेह णिद्देह ।
णिक्कोह णिल्लोह णिम्माण णिम्मोह ।
णिव्वेय णिज्जोय णीराय णिब्भोय ।
णिद्धम्म णिक्कम्म णिच्छम्म णिज्जम्म ।
णीराम णिक्काम णिव्वाह णिद्धाम ।
णिव्वेस णिल्लेस णिग्गंध णिप्फास ।
णीरस महाभाव णीसद्द णीरूव ।
अव्वत्त चिम्मेत्त णिच्चिंत णिव्वित्त ।
ण छुहाइ घेप्पंति ण तिसाइ छिप्पंति ।
ण रुयाइ झिज्जंति ण रईइ सिज्जंति ।
णाहारु भुंजंति ओसहु ण जुंजंति ।
ण मलेण लिप्पंति ण जलेण धुप्पंति ।

विनाश करके जीव शुद्ध होता और निर्वाण प्राप्त करता है। इन कर्म-प्रकृतियों सहित अपने मानवशरीरको छोड़ तथा आत्माके स्वयं शुद्ध स्वभावको प्राप्त कर जो जीव दुख-रहित, शाश्वत-स्थान-स्वरूप परम निर्वाणको प्राप्त करते हैं वे अपने अन्तिम मानव शरीरके प्रमाणसे कुछ छोटे होते हैं, उनके शोक-शोक नहीं होता तथा वे कभी मृत्युको प्राप्त नहीं होते। वे सदैव निर्मल, निरुपम, निरहंकार, जीव-द्रव्यसे सघन और ज्ञान-शरीरी होते हैं, वे मध्यलोकसे स्वभावतः ऊर्ध्वगमन करते हैं और समस्त ऊर्ध्वलोकका उल्लंघन कर सर्वोपरि अष्टम पृथ्वीके पृष्ठपर निविष्ट हो जाते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता ऐसा इन मुक्त जीवोंका स्वरूप जिनेन्द्र भगवान्‌ने कहा है। ये मुक्त जीव अपनी इस मुक्तावस्था की दृष्टिसे सादि और अनन्त हैं तथा उनके जीवद्रव्यकी दृष्टिसे अनादि और अनन्त हैं, क्योंकि वे अब पुनः मरण नहीं करते और न विविध दुखोंसे पूर्ण संसारके मुखमें पड़ते ॥७॥

८

सिद्ध जीवोंका स्वरूप

वे सिद्ध जीव न बालक होते न वृद्ध, न मूर्ख और न चतुर। वे न किसीको शाप देते न ताप, न गर्व रखते और न पाप करते। वे ज्ञान-शरीरी होते हैं, किन्तु उनके मेधा अर्थात् मस्तिष्क व इन्द्रिय-जन्य बोध नहीं होता। न उनके स्नेह है और न देह ही है। वे क्रोधरहित, लोभरहित, मानरहित और मोहरहित होते हैं। उनके न स्त्री, पुरुष आदि लिंग-भेद है और न मन, वचन, कायरूप योगोंका भेद है। न उनके राग है, न भोग, न रमण है, न काम। वे इन्द्रिय-सुखसे व जन्म-मरणसे रहित हैं। वे निर्बाध हैं, और निर्धाम हैं। न उनके द्वेष है, न लेश्या है। वे महानुभाव गन्ध, स्पर्श, रस, शब्द और रूप इन इन्द्रिय-विषयोंसे रहित हैं। वे अव्यक्त हैं, चिन्मात्र हैं, निश्चिन्त और निवृत्त है। वे न तो क्षुधाके वशीभूत होते, और न तृषासे आतुर होते; न रोगोंसे क्षीण होते, और न रतिसे पीड़ित होते। न वे आहार—भोजन करते और न औषधिका उपयोग करते। न वे मलसे लिप्त होते और न

णिहं ण गच्छंति अणयण वि पेच्छंति ।
अमणा वि जाणंति सयरायरं झत्ति ।
सिद्धाण जं सोक्खु तं कहइ चम्मक्खु ।
किं माणवो को वि सुरु खयरु देवो वि ।

घत्ता—पंचिंदिय-मुक्कु परमप्पइ हूयउ विमले ।
जं सिद्धहँ सोक्खु तं ण वि कासु वि भुवण-यले ॥८॥

९

एहा दुविह जीव मइँ अक्खिय ।
कहमि अजीव वि जेम णिरिक्खिय ॥
धम्मु अधम्मु दो वि रूवुज्झिय ।
आयासें कालें सहुँ बुज्झिय ॥
गइ-ठाणोग्गह-वत्तण-लक्खण ।
के वि मुणंति सु-णाण वियक्खण ॥
संतु अणाइ समउ वट्टंतउ ।
तीयउ कालु अगामि अणंतउ ॥
तासु ठाणु भण्णइ णर-लोयउ ।
धम्माधम्महँ सव्व-तिलोयउ ॥
तिहिं मि लोय-णाह-माण वियप्पउ ।
आयासु वि अणंतु सुसिरप्पउ ॥
तं जि अलोउ जोइ-पण्णत्तउ ।
पोग्गलु होइ पंच-गुण-वंतउ ॥
सद्दें गंधें रूवें फासें ।
जुत्तउ भिण्ण-वण्ण-विण्णासें ॥
खंधु देसु अद्धद्ध-पएसु वि ।
परमाणुउ अविहाइ असेसु वि ॥

घत्ता—तं सुहुमु वि थूलु थूलु-सुहुमु पुणु थूलु भणु ।
थूलाण वि थूलु चउ-पयारु महु मुणइ मणु ॥९॥

उन्हें जलसे धोनेकी आवश्यकता होती। वे मींद नहीं लेते। नेत्र न होते हुए भी वे सब कुछ देखते हैं। उनके मन नहीं होता तो भी वे निरन्तर सचराचर जगत्को जानते हैं। सिद्धोंका जो सुख है, उसे यह चर्मचक्षु, कोई मानव, सुरदेव, या विद्याधर कैसे वर्णन कर सकता है? पंचेन्द्रियोंसे मुक्त जो सुख शुद्ध परमात्म पदको प्राप्त सिद्धोंके होता है, वह इस भुवन-तलपर किसी अन्य जीवको नहीं मिलता ॥८॥

९

अजीव तत्त्वोंका स्वरूप

इस प्रकार संसारी और सिद्ध इन दोनों प्रकारके जीवोंका व्याख्यान किया गया। अब मैं उस अजीव तत्त्वके विषयमें जो कुछ जाना गया है, उसका वर्णन करूँगा। धर्म और अधर्म ये दोनों तत्त्व तथा आकाश और काल, इस प्रकार ये चारों अजीव तत्त्व रूप-रहित अर्थात् अमूर्तिक जाने गये हैं। इनका स्वरूप विशेष ज्ञानियों और विद्वानोंने इस प्रकार जाना है। धर्मद्रव्यका स्वभाव अन्य जीवादि द्रव्योंके गमन कार्यमें सहायक होता है, और अधर्म द्रव्यका स्वभाव है गमन करते हुए द्रव्योंको ठहरनेमें सहायक होना। आकाशका कार्य शेष सभी द्रव्योंको अवकाश प्रदान करना है, और कालका लक्षण वर्तना अर्थात् भूत, भविष्यत् व वर्तमान समयोंका विभाजन करना है। इस प्रकार काल अनादि और अनन्त समय रूप है। उसका जो युग, वर्ष, मास आदि रूप व्यावहारिक स्वरूप है, उसका प्रचलन नरलोक मात्रमें है, जबकि धर्म और अधर्मकी व्याप्ति समस्त त्रिलोक मात्रमें है। आकाश अनन्त है और शब्द-गुणात्मक है। उसका दो भागोंमें विभाजन पाया जाता है—एक लोकाकाश, दूसरा अलोकाकाश। लोकाकाशमें सभी द्रव्योंका वास तथा गमनागमन है, जो सभीके अनुभवमें आता है। किन्तु उसके परे जो अन्य द्रव्योंसे रहित अलोकाकाश है, उसका वर्णन केवल योगियों द्वारा किया गया है।

पुद्गल द्रव्य पांच गुणोंसे युक्त है—शब्द, गन्ध, रूप, स्पर्श और रस। रूपकी अपेक्षा पुद्गल द्रव्य कृष्णादि नाना वर्णोंसे युक्त है। प्रमाणकी अपेक्षा वह स्कन्ध, देश, प्रदेश, अर्धप्रदेश, अर्धार्ध प्रदेश आदि रूपसे विभाज्य होता हुआ परमाणु तक पहुँचता है, जहां उसका पुनः विभाजन नहीं हो सकता। इस प्रकार यह पुद्गल सूक्ष्म भी है, स्थूल भी, स्थूल-सूक्ष्म भी, व स्थूल-स्थूल। इस प्रकार पुद्गल द्रव्य चतुर्भेदरूप जाना जाता है ॥९॥

१०

गंधु वण्णु रसु फासु स-सद्दउ ।
सुहुमु थूलु वज्जरइ स-सद्दउ ॥
थूलु-सुहुमु जोण्हा-छायाइउ ।
थूलु सलिलु वीरेण णिवेइउ ॥
थूलु-थूलु पुणु धरणी-मंडलु ।
सग्ग-विमाण-पडलु मणि-णिम्मलु ॥
सुहुमहँ कम्माइयहँ स-णामहँ ।
मण-भासा-वग्गण-परिणामहँ ॥
वण्णाइयहिं रसेहिं अणेयहिं ।
परिणमंति संजोय-विओयहिं ॥
पूरण-गलण-सहाय-णिउत्तहँ ।
पोग्गलाहँ विविहाहँ पउत्तहँ ॥
भासिज्जंतउ परम-जिणिंदें ।
णिसुणिवि धम्मु सुधम्माणंदें ॥
वसहसेणु सुहभावें लइयउ ।
पुरिमताल-पुरवइ पावइयउ ॥

इय वीर-जिणिंद-चरिए जिण-देसणा णाम
दोदहमो संधि ॥१२॥

इय वीर-जिणिंद-चरिउ संपुण्णउ ।

(पुष्पदन्त-कृत महापुराणु सन्धि १०—१२ से संकलित)

१०

पुद्गल द्रव्यके गुण । उपदेश सुनकर अनेक नरेशोंकी प्रव्रज्या

पुद्गल द्रव्य गन्ध, वर्ण, रस, स्पर्श और शब्द ये पंचगुणात्मक हैं। उसके सूक्ष्म, स्थूल, स्थूलसूक्ष्म और स्थूलस्थूल ये चार प्रकार पाये जाते हैं। प्रकाश और छाया ये पुद्गल द्रव्य स्थूलसूक्ष्मके उदाहरण हैं। स्थूलका उदाहरण जल है, स्थूलस्थूलका यह धरणीमण्डल, एवं मणियोंके समान स्वर्ग-विमानपटल। सूक्ष्मपुद्गल अपने-अपने नामोंवाले नाना कर्मोंके रूप-में पाया जाता है, तथा मन और भाषा रूप वर्गणाएँ भी उसीके परिणमन हैं। ऐसा भगवान्‌ने दयापूर्वक कहा है। यह पुद्गल द्रव्य अनेक वर्णों, अनेक रसों आदि रूप परिणमन करता है और उसका संयोग अर्थात् जोड़ और वियोग अर्थात् विभाजन भी होता है।

इस प्रकार जो नानाविध पुद्गलोंका वर्णन किया गया, वह पुद्गल शब्दकी इस निर्युक्ति अर्थात् व्युत्पत्ति व शब्द-साधनाके अनुरूप है। जिस द्रव्यका स्वभाव पूरण और गलन रूप हो वह पुद्गल है।

जब आदिदेव भगवान् ऋषभदेव तीर्थंकरने धर्मका यह व्याख्यान किया, तब सद्धर्मसे आनन्दित होकर तथा शुभ भावनाओंसे प्रेरित हो पुरिमताल नगरके स्वामी वृषभसेन प्रव्रजित हो गये। सोमप्रभ व श्रेयांस नरेश्वरने भी अपने मानरूपी स्वरका विनाश कर प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। इस प्रकार अपने विषादको छोड़ चौरासी राजा ऋषभ तीर्थंकरके गणधर हो गये ॥१०॥

इति तीर्थंकर धर्मोपदेश विषयक बारहवीं सन्धि समाप्त

॥ सन्धि १२ ॥

इति वीर-जिनेन्द्र-चरित समाप्त